इकाई – 1 शरीर संगठन, कोशिका व ऊतक की रचना व क्रिया

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शरीर संगठन : एक परिचय

1.4 शरीर के आठ मुख्य संस्थान

1.5 कोशिका : रचना एवं क्रिया

1.5.1 कोशिका भित्ती

1.5.2 जीव द्रव्य

1.5.3 नाभिक

1.5.4 आकर्षण गोलक

1.6 ऊतक का सामान्य परिचय

1.6.1 तंत्रिका तंत्र ऊतक

1.6.2 मांसपेशी तंत्र ऊतक

1.6.3 अस्थि तंत्र ऊतक

1.6.4 उपकला तंत्र ऊतक

1.6.5 फुफ्फुसीय ऊतक

1.6.6 संयोजक ऊतक

1.6.7 ग्रन्थि ऊतक

1.6.8 रूधिरीय ऊतक

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अनेक छोटी-छोटी इकाइयों से मिलकर बना यह मानव शरीर उत्कृष्ठता का एक प्रत्यक्ष नमूना है व प्रारम्भिक कक्षाओं में आपने मानव शरीर के विषय में सुना अथवा पढ़ा होगा तथा इस इकाई में आप मानव शरीर के विषय में जानेंगे कि मानव शरीर कितने भागों में बटा होता है, व कैसे कार्य करता है तथा इसके विभिन्न अवयव कौंन से होते हैं तथा किस प्रकार ये आपस में मिलकर एक शरीर के लिए कार्य करते हैं, प्रस्तुत ईकाई में शरीर की सबसे छोटी ईकाई कोशिका तथा कोशिकाओं के समूह ऊतकों का वर्णन किया जा रहा है कुछ प्रश्न जिज्ञासु पाठकों के अवश्य होते है। जैसे कोशिका क्या है? इसके कौन – कौन से भेद होते है? ऊतकों के कितने प्रकार होते हैं ? और इनके क्या कार्य होते है।

प्रस्तुत इकाई का जब आप विधिवत् अध्ययन करेंगे तो निश्चित रूप से आपकी शंकाओं का समाधान हो जायेगा।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- शरीर संगठन के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- शरीर के आठ मुख्य संस्थानों के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शरीर की प्राथमिक इकाई कोशिका के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कोशिका की रचना व क्रियाविधि का वर्णन कर सकेंगे।
- ऊतक का एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ऊतकों के विभिन्न प्रकारों के विषय में विस्तार से समझ सकेंगे।
- ऊतकों के विभिन्न प्रकारों के विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यो के आधार पर उनकी विवेचना कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

1.3 शरीर-संगठन : एक परिचय

जिस प्रकार किसी मशीन का आधार अनेक कल पुर्जे होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी अनेक अवयवों का सम्मिलित स्वरूप है। मशीन और मनुष्य में मुख्य अन्तर यही है कि मशीन निष्प्राण होती है और उसका संचालन किसी मनुष्य के ऊपर ही निर्भर करता है, जबकि मनुष्य सप्राण होता है और उसका अंग-संचालन स्वयं उसी की इच्छा पर निर्भर रहता है।

मानव शरीर के निम्न 4 मुख्य भाग होते है जिनका विवरण इस प्रकार है -

1. सिर - इसे 1. खोपड़ी तथा 2. चेहरा - इन दो भागों में बाँटा जा सकता है। खोपड़ी - सिर के ऊपरी तथा पिछले भाग की हड्डियों का वह कोष्ठ (आवरण) है, जिसमें 'मस्तिष्क' सुरक्षित रहता है। इस भाग को कपाल भी कहते हैं। चेहरे के अन्तर्गत कान, नाक, आँख, ललाट, मुख तथा दोनों जबड़ों की गणना की जाती है।

2. ग्रीवा - यह सिर को धड़ से जोड़ती है अतः यह सिर और धड़ के मध्य का भाग है। इसके पीछे की ओर रीढ़ की हड्डी, आगे की ओर टैंटुआ तथा मध्य में ग्रास-नली रहती है। इस प्रकार शरीर के इस छोटे से भाग में श्वास तथा भोजन - प्रणाली के कुछ अंग स्थित रहते हैं।

3. धड़ - गर्दन से नीचे के भाग को 'धड़' कहा जाता है व इसके दो उप-भाग होते हैं- 1. ऊपरी भाग को **'**वक्षस्थल**'** तथा निचले भाग को **'**पेट**'** कहा जाता है। धड़ के इन दोनों भागों को विभाजित करने वाली एक पेशी है, जिसे 'डायाफ्राम**'** कहा जाता है। यह पेशी धड़ के मध्य में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई होती है व वक्षः स्थल के अन्तर्गत पसलियाँ, फुफ्फुस अर्थात् फेफड़े तथा हृदय मुख्य हैं। उदर में आमाशय, यकृत, प्लीहा, वृक्क अर्थात् गुर्दे, अग्नाशय, छोटी और बड़ी आँत तथा श्रोणि मेखला स्थित रहती है।

4. शाखाएँ - ऊपरी शाखाएँ अर्थात् हाथ धड़ के ऊपरी भाग में कन्धों की हड्डियों से जुड़े रहते हैं। इसके भी दो उप-भाग हैं, दाँया तथा बाँया। शाखाओं अर्थात् टाँगों के भी दाँयें तथा बाँयें दो भाग होते हैं व ये दोनों धड़ के निम्न भाग में श्रोणि मेखला से जुड़े रहते हैं।

1.4 शरीर के आठ मुख्य संस्थान

शरीर के उन भागों को जो किसी कार्य विशेष को करते हैं, अंग अथवा अवयव कहा जाता है। प्रत्येक अंग की अलग-अलग क्रियाएँ होती हैं। जैसे- पाँव का चलना, हाथ का पकड़ना, आँख का देखना, आमाशय का भोजन को पचाना इत्यादि।

जब अनेक अंग मिलकर किसी एक विशेष काम को करते हैं, तब उन क्रियाओं के कार्य समूह को 'संस्थान' कहा जाता है।

मनुष्य - शरीर में निम्न आठ संस्थान मुख्य माने गए हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है -

(क) अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र **(The Bony or skeletal System)** इस संस्थान में शरीर की सभी छोटी-बड़ी हड्डियाँ सम्मिलित होती हैं तथा यह शरीर के विभिन्न अंगों को आकार, आधार एवं दृढ़ता प्रदान करता है।

(ख) माँस-संस्थान अथवा पेशी तंत्र **(The Muscular System)** इसके अन्तर्गत पेशियाँ आती हैं। यह संस्थान शरीर के विभिन्न अंगों को गति प्रदान करता है अर्थात् उन्हें गतिशील बनाता है।

(ग) रक्तवाहक संस्थान अथवा परिवहन तंत्र **(The circulatory System)** इसमें हृदय तथा रक्त-वाहिनियाँ सम्मिलित हैं। यह संस्थान शरीर के विभिन्न भागों में रक्त-संचरण (Blood Circulation) का कार्य करता है।

(घ) श्वासोच्छास संस्थान अथवा श्वसन तंत्र **(The Respiratory System)** इसमें नाक, टैंटुआ तथा फेफड़े सम्मिलित होती है तथा यह संस्थान श्वासोच्छास का कार्य करता है।

(ड़) पोषण या पाचन संस्थान अथवा आहार तंत्र **(The Digestive System)** इसमें मुख, ग्रास-नली, आमाशय तथा छोटी-बड़ी आँतें सम्मिलित होती हैं। यह संस्थान भोजन को पचाकर शरीर के पोषण का कार्य करता है।

(च) उत्पादक संस्थान अथवा प्रजनन तंत्र **(The Reproductive System)** & इसमें शिश्न, अण्ड कोष, योनि आदि प्रजनन अंग सम्मिलित होती हैं। यह संस्थान सन्तानोत्पत्ति को कार्य को करता है।

(छ) मूत्रवाहक एवं मल-त्याग संस्थान अथवा उत्सर्जन तंत्र **(The excretory or The Urinary System)** & इसमें शिश्न, वृक्क, गुदा आदि अंग सम्मिलित होते हैं। यह संस्थान मल-मूत्र आदि (त्याज्य) पदार्थों को बाहर निकाल कर, शरीर को शुद्ध करने का कार्य करता है।

(ज) वातनाड़ी संस्थान अथवा तन्त्रिका तंत्र **(The Nervous System)** - इसके अंतर्गत मस्तिष्क, रीढ़, रज्जु तथा तंत्रिकाएँ सम्मिलित होती हैं। यह संस्थान बाह्य वस्तुओं का ज्ञान कराता है तथा शरीर के कार्यों पर नियन्त्रण रखता है।

1.5 कोशिका (Cell) की रचना एवं क्रिया

मानव शरीर निर्माण का आधारभूत अवयव 'कोशा' अथवा 'कोशिका' (Cell) है। जिस प्रकार एक-एक ईंट से मकान, एक-एक रजःकण से पृथ्वी तथा एक-एक बूँद जल से सागर का निर्माण होता है, ठीक उसी प्रकार शरीर की रचना भी एक-एक कोशा (Cell) के द्वारा होती है। ये कोशा आकार में बहुत ही छोटी होती हैं तथा आँखों से दिखाई नहीं देती। केवल सुक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) की सहायता से ही इन्हें देखा जा सकता है। 'कोशा' को शरीर की 'इकाई' भी कहा जाता है।

जिस प्रकार पानी की बूँदें अथवा रज-कण विभिन्न आकार के होते हैं, उसी प्रकार कोशिकाऐं भी भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार की होती हैं, परन्तु बड़ी-से-बड़ी कोशिका की

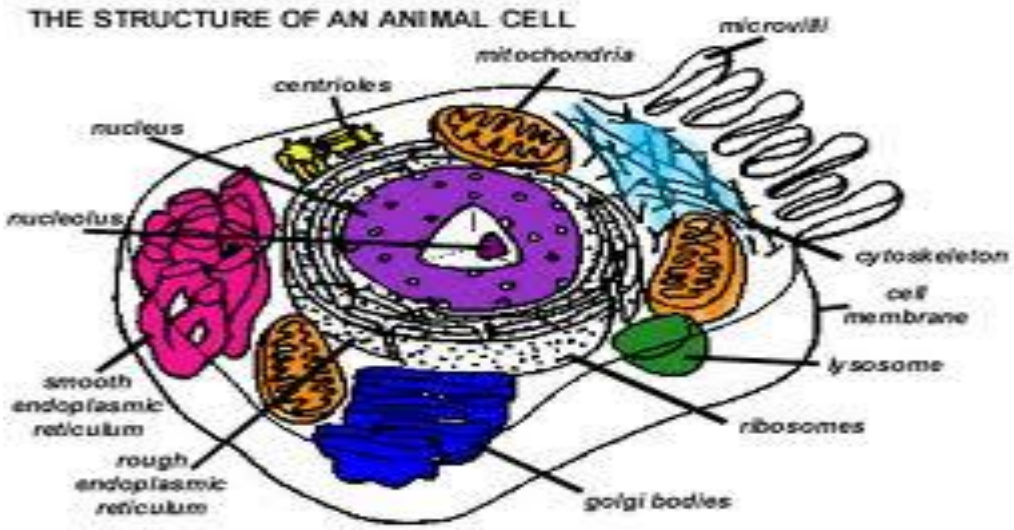

लम्बाई भी 1/100 इंच से अधिक नहीं होती। छोटी-बड़ी सभी कोशिकाओं में लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई - ये तीनों बातें पाई जाती हैं। प्रत्येक कोशिका के निम्न भाग हैं -

1.5.1 कोशिका भित्ति (Cell Wall) प्रत्येक कोशिका के चारों ओर एक झिल्ली की दीवार होती है, जो बहुत स्पष्ट नहीं होती तथा यह जीव-द्रव्य से ही निर्मित होती है। इसमें छोटे-छोटे अनेक छिद्र होते हैं, जिनके द्वारा आवश्यक वस्तु के ग्रहण तथा अनावश्यक वस्तु के परित्याग की क्रिया सम्पन्न होती रहती है। कोशिका (Cell) के भीतर श्वास-क्रिया भी इसी कोशिका भित्ति (Cell Wall) के माध्यम से होती है।

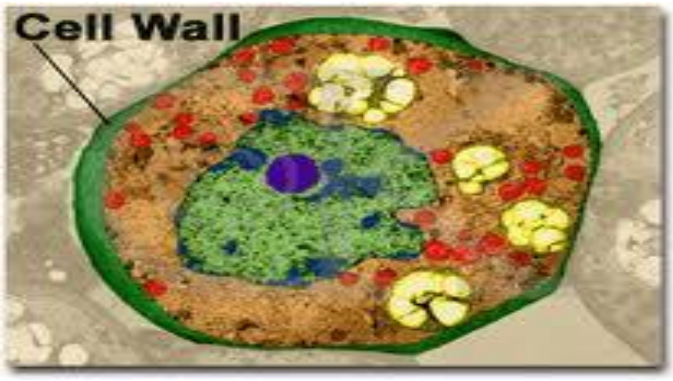

कोशिका भित्ति के कार्य –

1. कोशिका को कोमल संरचनाओं की रक्षा करती है।

2. बाह्य उत्तेजनाओं को ग्रहण करती है।

3. इसमें छिद्रों के माध्यम से ही पोषण तत्व एवं आक्सीजन भीतर जाते है व त्याज्य पदार्थ कोशिका से बाहर निकलते है।

4. यह जीव द्रव्य की रासायनिक संरचना को बनाए रखती है।

1.5.2 जीवद्रव्य (Protoplasm) & प्रत्येक कोशिका के भीतर एक प्रकार का स्वच्छ गाढ़ा सा रस भरा रहता है- जिसे जीवद्रव्य (Protoplasm) कहते हैं। कोशिका इसी से अपनी खुराक लेती और बढ़ती है। जीवन का वास्तविक आधार यह जीव-द्रव्य ही है। सामान्यतः इसमें 3/4 भाग पानी होता है तथा 1/4 भाग में कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, नमक तथा प्रोटीन पाये जाते हैं। इसका विशेष गुण उत्तेजनशीलता है। इसमें प्रत्येक बात को अनुभव करने की शक्ति होती है, जिसके कारण विभिन्न प्रभावों के अनुसार यह प्रतिक्रिया करता रहता है। इस जीवन-द्रव्य के ही कारण ही जीवों में जीवन होता है। इसका नष्ट हो जाना ही जीव की मृत्यु है।

कोशिका के जीवद्रव्य में कार्बनिक पदार्थ के रूप में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, (घुलनशील व अधुलनशील कार्बोहाइड्रेड) विद्यमान रहते है। इसमें वसा एवं फॉस्फेट, कैल्शियम, सोडियम, पौटेशियम इत्यादि भी पाये जाते है।

जीवद्रव्य के सक्रिय अंगक –

(A) अन्तर्द्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum) – यह खुरदरी और चिकनी होती है। खुरदरी में राइबोसोम के कण चिपके रहते है तथा चिकनी में राइबोसोम नहीं होते है।

कार्य –

1. यह कोशिका को यान्त्रिक सहारा प्रदान करती हैं।

2. खुरदुरी अन्तर्द्रव्यी कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण का कार्य सम्पन्न होता है।

3. ये पेशीय कोशिकाओं में आवेगो को आगे अथवा पीछे ले जाने का कार्य करती हैं।

4. स्मूथ/चिकनी में लिपिड्स एवं स्टेरॉयड का संश्लेषण होता है।

(B) माइटोकाँण्ड्रिया (Mitochondria) यह कोशिका का विघुताग्रह कहलाता है ।

जीवद्रव्य में यत्र-तत्र बिखरे हुई ये रचनाएँ आकार में छड़ अथवा अण्डे जैसी होती हैं। तथा यह गतिशील रचनाएँ अपना विभाजन कर सकती हैं।

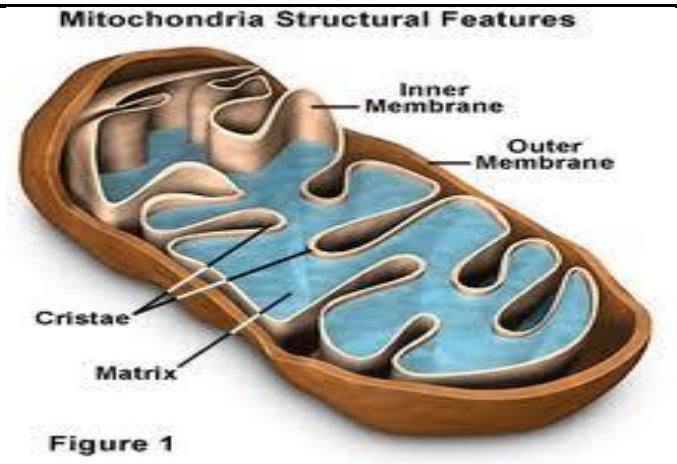

Figure 1

कार्य

1. ये कोशिका के पचे हुए भोजन का आक्सीकरण करके उसकी ऊर्जा को विमुक्त कर ATP में संग्रहित करते है, जिसकी सहायता से कोशिका विभिन्न क्रियाएँ, सम्पन्न कर पाती है एवं यह जीवन सम्भव हो पाता है।

2. प्रोटीन संश्लेषण तथा लिपिड उपापचय से भी सम्बन्धित है।

(C) लाइसोसोम (Lysosomes) –

थैली के समान संरचना वाली ये कणिकाएँ 'आन्तरकोशिकीय पाचन' का महत्वपूर्ण कार्य करती है। और इस लिए इसे 'पाचन उपकरण' (Difestive apparatus) भी कहा जाता है।

कार्य – 1. आन्तरकोशिकीय पाचन का महत्वपूर्ण कार्य करती है।

2. क्षतिग्रस्त कोशिका को भी लाइसोसोम पचा जाता है। (necrosis)

3. जीवाणु भक्षण का कार्य भी करता है। (phagoctosis)

4. किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लाइसोसोम अपने अंतह: पदार्थ को भी पचा जाते हैं इस कारण इसे 'आत्महत्या की थैली' भी कहा जाता है।

(D) राइबोसोम (Ribosomes)

प्रोटीन युक्त ये अंगक समस्त कोशिका का 60% प्रोटीन भाग बनाते हैं।

कार्य –

1. राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण (protein synthesis) का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इसलिए इसे प्रोटीन फैक्टरी भी कहा जाता है।

2. ये अर्न्तद्रव्यी जालिका के सम्बद्ध रहकर भी कार्य करती हैं।

(E) सेन्ट्रोसोम (Centrosome)

सेन्ट्रोसोम केन्द्रक के समीप रहते है और छड़ के समान होते हैं।

कार्य –

1. सेन्ट्रोसोम के चारों ओर धागे के समान संरचनाएं होती है जिन्हें स्पिन्डल्स कहा जाता है। जो कोशिका विभाजन के समय महत्वपूर्ण कार्य करता है।

2. इसमें कुछ अधिक गहरे रंग की दो गोलाकार रचनाएँ और होती हैं, जिन्हें सैन्ट्रियोल्स (Centrioles) कहते हैं। यही से सेन्ट्रियोल कोशिका विभाजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

(F) गॉल्जी उपकरण (Golgi Apparatus)

यह कलाओं का एक समूह कोशिका के केन्द्रक के समीप स्थित होता है व यह भौतिक एवं क्रियात्मक रूप से अर्न्तद्रव्यी जालिका से सम्बन्धित रहता है। इसकी रासायनिक संरचना में लाइपोप्रोटीन की मात्रा अधिक होती है।

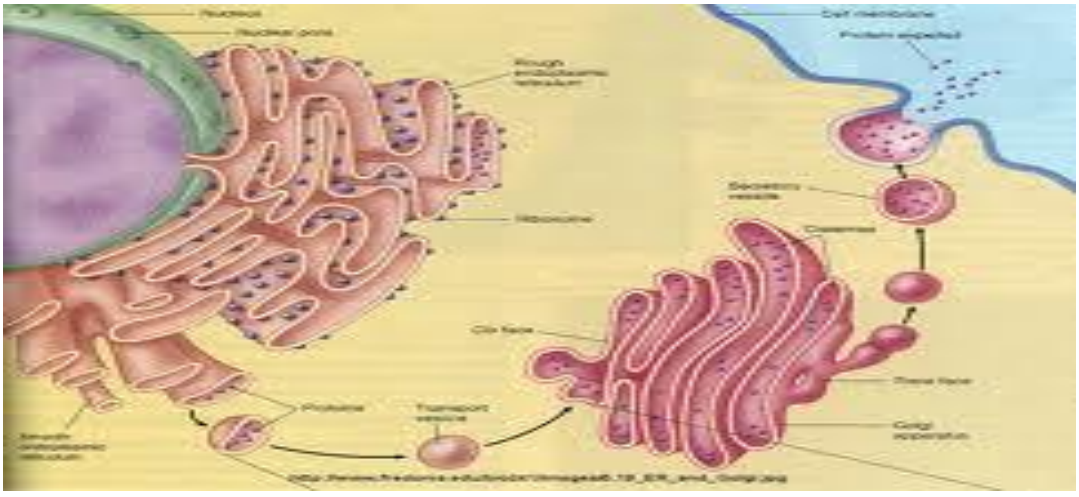

कार्य

1. गॉल्जी उपकरण का सम्बन्ध कोशिका की रासायनिक क्रियाओं, विशेषकर स्रावण की क्रिया से होता है।

2. यह ग्लाइकोप्रोटीन स्राव के पॉलीसैकेराइड अंश का संश्लेषण करता है व कोशिका में उत्पन्न स्रावी उत्पाद गौल्जी उपकरण में एकत्रित होते है तथा कोशिका कला तक ले जाकर इन्हें बाहर छोड़ दिया जाता है।

(G) रिक्तिकाए (Nacuoles)

यह जन्तु और पादप कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य में पायी जाने वाली रचना है। ये जलनुमा तरह पदार्थ से भरी होती है तथा टोगेप्लाप्ट गमन आवरण से घिरी रहती है। इनमें भोज्य पदार्थ संचित रहते हैं। जलीय पौधों में पाई जाने वाली रिक्तिकाओं में गैस भरी होने से ये पौधों को तैरने में सहायता देती हैं।

ये परिवर्तनशील रचनाएँ है। इनके चारों ओर कुछ मात्रा में लिपिड पदार्थ रहता है।

(H) कणिकाएँ (Granules)

कोशिका द्रव्य में उपस्थित ये रचनाएँ अथवा पिगमेंट किसी पिगियोबाँगिनल अवस्था में जैसे धूप में तपने के पश्चात् त्वचा की कोशिकाओं में प्रकट हो जाते हैं।

(I) प्लाज्मोसिन एवं अन्य संरचनाएँ

1. प्लाज्मोसिन जीवद्रव्य का एक विशिष्ट संगठन है जो सदैव जीवद्रव्य में विद्यमान रहता है।

2. आन्तरकोशिक तन्तुक जीवद्रव्य में स्थित प्रोटीन युक्त कण होते हैं ये पेशी कोशिकाओं के पेशी तन्तुक तथा तंत्रिका कोशिकाओं के तंत्रिका तन्तुक आदि का निर्माण करते हैं।

1.5.3 नाभिक (Nucleus) प्रत्येक कोशिका के लगभग मध्यभाग में एक गोलाकार रचना होता है, जिसे नाभिक (Nucleus) कहते हैं। यह भी जीवद्रव्य (Protoplasm) से ही बना होता है। यह कोशिका का शासक और उसके मुख्य कार्यों का कर्ता है। कोशिका का जीवित रहना, कोशिका में गति तथा कोशिका के विभाजन द्वारा उस जैसी ही अन्य कोशिकाओं की उत्पत्ति, कोशिका की गति तथा वृद्धि-ये सभी कार्य नाभिक द्वारा ही नियंत्रित होते हैं।

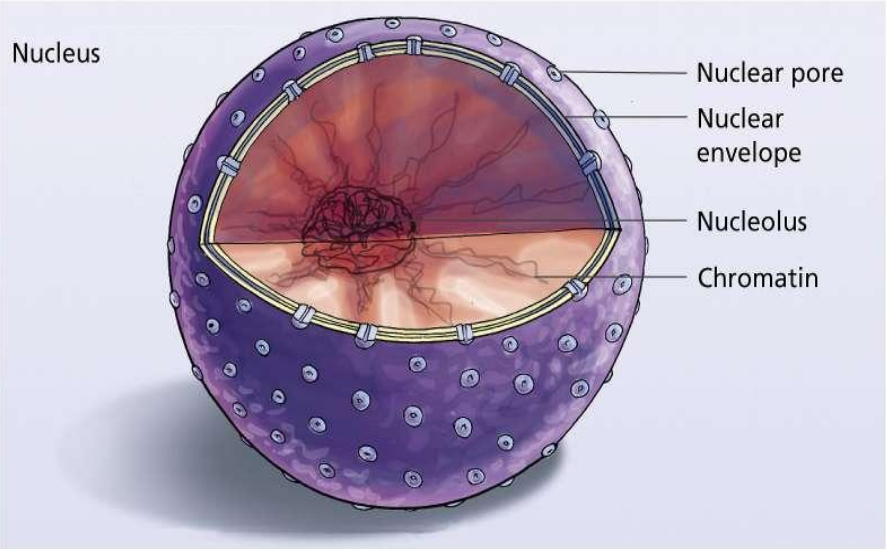

Copyright © 2004 Pearson Prentice Hall, Inc.

1.5.4 आकर्षण गोलक (Attraction Sphere) - सभी कोशिकाओं में नाभिक के समीप ही एक गोल सा आकार भी पाया जाता है, जिसे आकर्षण गोलक (Attraction Sphere) कहते हैं। यह प्रत्येक अनुभूति को अपनी ओर आकर्षित कर उससे कोशिका को अवगत कराता है।

जीवन के प्रारंभ से ही जीव जो भी कार्य करता है, वह सब इन कोशिकाओं के द्वारा और इन्हीं के कारण संभव हो पाता है। खाना, पीना, सोना, जागना, उठना-बैठना, बोलना-सुनना, देखना, श्वासोच्छवास, मल-मूत्र का त्याग, सन्तानोत्पत्ति, नियन्त्रण, मरम्मत, गति तथा अन्य सभी कार्य इन्हीं के द्वारा होता है।

शरीर के विभिन्न संस्थानों की कोशिकाओं की बनावट तथा कार्य-विधि में भी अन्तर होता है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति –

(क) खुरदुरी अन्त प्रद्रव्यी जालिका में.....चिपके रहते हैं।

(ख) कोशिका का ऊर्जा गृह.....है।

(ग) राइबोसोम .....का महत्वपूर्ण कार्य करते है।

(घ) क्षतिग्रस्त कोशिका का पाचन.....कहलाता है।

(ड.) कोशिका के स्रावी उत्पाद.....में एकत्रित होकर कोशिका कला से बाहर छोड़ दिये जाते है।

1.6 ऊतक (Tissues) का सामान्य परिचय

समान आकार तथा समान उद्देश्य के लिए कार्य करने वाली कोशिकाओं के समूह को **'ऊतक'** (Tissues) कहा जाता है।

जिस प्रकार कोशिकाओं का एक समूह मिलकर 'ऊतक' की रचना करता है, उसी प्रकार ऊतकों का एक समूह मिलकर शरीर के एक अंग अर्थात् अवयव की रचना करता है।

ऊतकों के निम्नलिखित भाग किये जा सकते हैं-

1.6.1 तन्त्रिका तन्त्र ऊतक (Nervous Tissues) इन ऊतकों द्वारा संपूर्ण 'तन्त्रिका-तन्त्र' का निर्माण होता है व इसमें मस्तिष्क (Brain), तन्त्रिका (Nerves) तथा सुषुम्ना तन्त्रिका (Spinal Cord) दोनों सम्मिलित होते है।

इन ऊतकों की इकाई को 'न्यूरॉन' (Neurone) कहा जाता है। 'न्यूरॉन' दो प्रकार के होते हैं-

(1) बाइपोलर नर्व सैल्स (Bipolar Nerve Cells)

(2) मल्टीपोलर नर्व सैल्स (Multipolar Nerve Cells)

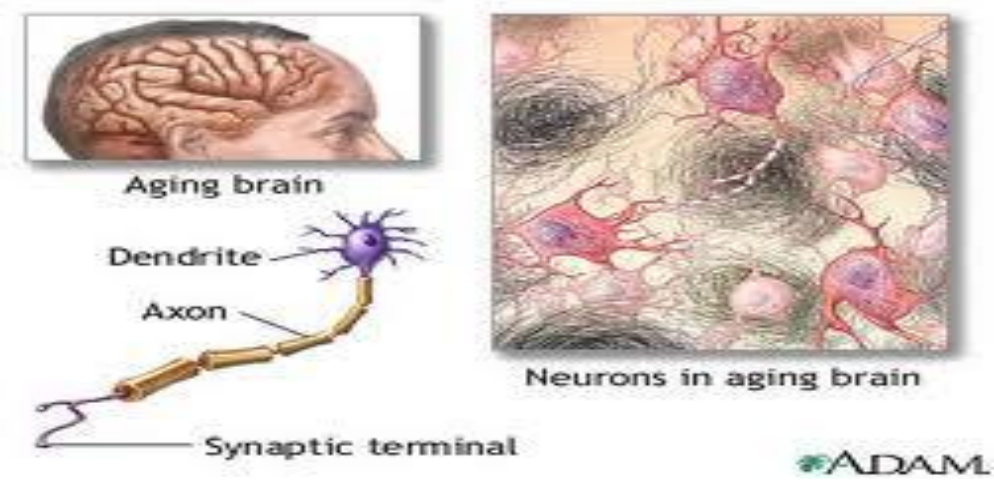

इन ऊतकों के निम्नलिखित तीन मुख्य कार्य हैं-

(क) संवेदनाओं की सूचनाओं को ग्रहण करना (Sensory Impulse)A

(ख) प्रेरक आज्ञा की सूचनाओं को भेजना (Motor Impulse)A

(ग) संवेदनाओं को आज्ञाओं में बदलना (Transformation of Sensory Impulses in motor impulses)

1.6.2 मांसपेशी ऊतक (Muscular Tissues) मनुष्य-शरीर का अधिकांश भाग मांसपेशियों से ही निर्मित होता है। ये पेशियाँ सम्पूर्ण शरीर में फैली रहती हैं। शरीर के भीतर तथा बाहर जितनी भी गतियाँ होती हैं, वे सब इन पेशियों द्वारा ही होती हैं। ये पेशियाँ एक ओर बाह्य भागों से लगी रहती हैं तो दूसरी ओर पाचन-नली, श्वांसनली, गर्भाशय, मूत्राशय आदि में फैली रहती हैं। ये लाल रंग की तथा पारदर्शक होती हैं व कार्य के अनुसार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(1) ऐच्छिक मांसपेशियाँ (Striped or Voluntary Muscles)A

(2) अनैच्छिक मांसपेशिया¡ (Non-Striped or Involuntary Muscles)A

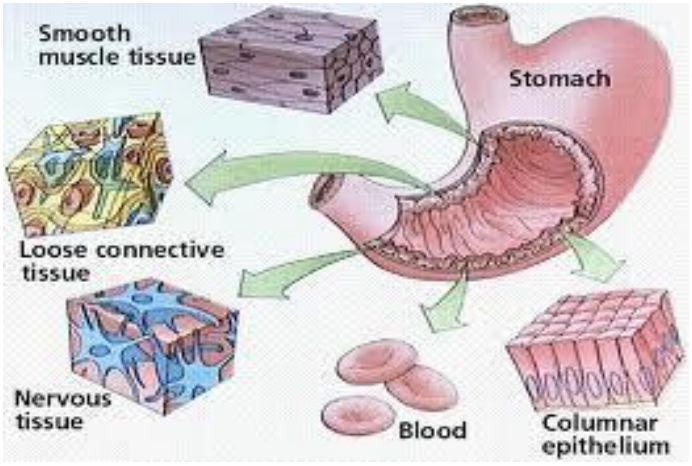

Muscular Tissues

1.6.3 अस्थि ऊतक (Bony Tissues) हड्डियाँ दो प्रकार की होती हैं-

(1) ठोस और कड़ी (Compact Bone) तथा (2) पतली और मुलायम (Cartilage) पतली तथा मुलायम हड्डियाँ अर्थात् 'कार्टिलेज' को 'उपास्थि' भी कहा जाता है। शरीर में इनकी संख्या बहुत कम होती हैं। जैसे-नाक के नीचे की हड्डी, कान की बाहरी हड्डियाँ और नाखून आदि।

कड़ी हड्डियाँ दो प्रकार की होती हैं-(1) पतली तथा लम्बी हड्डियाँ। इन हड्डियों की भीतरी नाली अर्थात् 'पोल' को मज्जानाल (Marrow Cavity) कहा जाता है। (2) ठोस तथा चपटी हड्डियाँ, जैसे-सिर की तथा श्रोणी की हड्डियाँ आदि। इन दोनों प्रकार की हड्डियों के ऊतकों को क्रमशः कठोर अस्थि ऊतक (Hard Bony Tissues) तथा कोमल अस्थि ऊतक (Soft Bony Tissues) कहा जाता है।

1.6.4 उपकला ऊतक (Epithelial Tissues) कुछ ऊतक ऐसे होते हैं जो शरीर की प्रत्येक नली के भीतरी भाग में रहते हैं तथा शरीर के बाह्य भाग को भी ढँके रहते हैं। ये ऊतक एक स्तर की भाँति फैले रहते हैं। इन्हें 'एपीथीलियम' (Epithelium) कहा जाता है। प्रत्येक स्थान के कार्य के अनुसार इनकी रचना विभिन्न प्रकार की होती है। ये ऊतक निम्नलिखित 5 प्रकार के होते हैं-

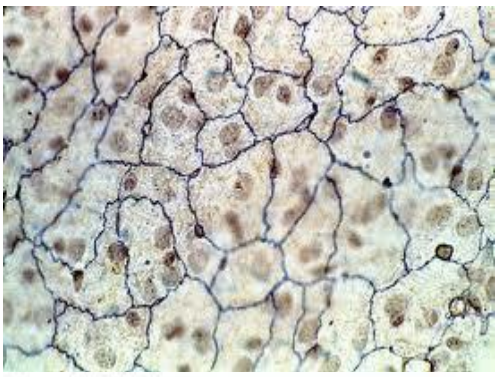

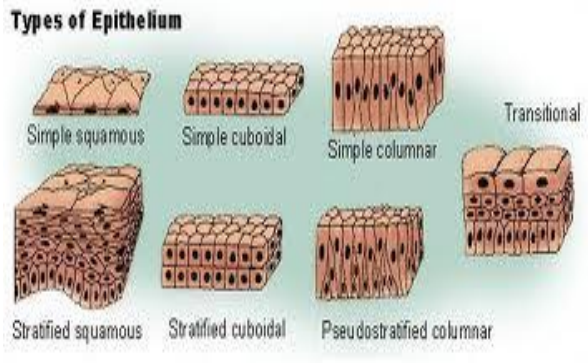

स्तरित उपकला ऊतक (Stratified Epithelium Tissues)

- एकस्तरीय उपकला ऊतक (Pavement Epithelium Tissues)
- स्तम्भाकार उपकला ऊतक (Columnar Epithelium Tissues)
- रोमक उपकला ऊतक (Epithelium Diliated Tissues)
- परिवर्ती उपकला ऊतक (Transitional Epithelium Tissues)

1.6.5 फुफ्फुसीय ऊतक (Alveolar Tissues) इन ऊतकों के कोशा हल्के गुलाबी रंग के होते हैं। इनकी दीवार बहुत पतली होती है। ये लचीले भी होते हैं। ये फेफड़ों का निर्माण करते हैं। इनमें वायु का प्रवेश सरलता से हो जाता है। वायु से भर जाने पर ये दब जाते तथा उसके निकल जाने पर सिकुड़ जाते हैं। इन ऊतकों के कोशा महीन वायु-नली में खुलते हैं। ये अंगूर के गुच्छे की भाँति बिखरे रहते हैं, परन्तु इनकी दीवारें एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं तथा इनके चारों ओर शिरायें (Veins) फैली रहती हैं।

1.6.6 संयोजक ऊतक (Areolar or Connective Tissues) ये ऊतक अत्यन्त साधारण प्रकार के होते हैं। ये सफेद तथा पीली जाली जैसे होते हैं। ये सम्पूर्ण शरीर में फैले रहते हैं। इनका कार्य विभिन्न ऊतकों को आपस में जोड़ना तथा खाली स्थानों को भरना है। ये शरीर को गर्मी देते, सर्दी से बचाते तथा उपवास के दिनों में शरीर को भोजन देने के काम आते हैं।

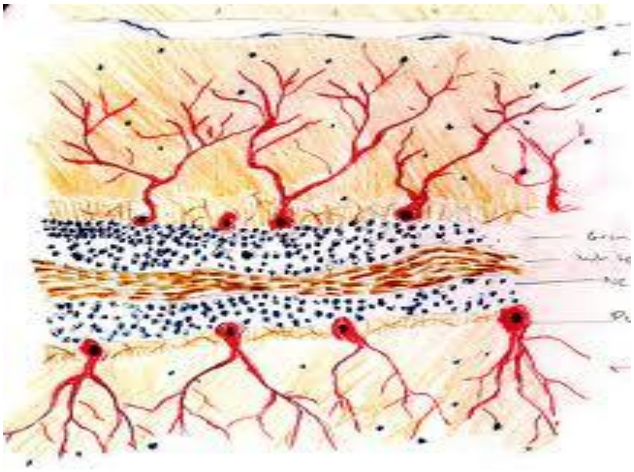

1.6.7 ग्रन्थि ऊतक (Glandular Tissues) इन ऊतकों द्वारा विभिन्न प्रकार की ग्रंथियों (Glands) का निर्माण होता है। इनसे एक प्रकार का स्राव निकलता है, जो शरीर के लिए अत्यधिक उपयोगी होता है। विभिन्न प्रकार के ऊतक विभिन्न प्रकार के स्राव निकालते हैं।

शरीर के भीतर निम्नलिखित तीन प्रकार की ग्रंथियाँ होती हैं-

(1) जिनके द्वारा स्राव निकलकर नलिकाओं द्वारा आंतों में पहुँचता तथा पाचन क्रिया में सहायक बनता है, जैसे- यकृत~ (Liver)] पैन्क्रियाज (Pancreas) तथा सैलाइवरी ग्लैण्ड्स (Salivary Glands)

(2) बिना नलिकाओं वाली ग्रंथियाँ, जिनके द्वारा स्राव निकल कर सीधे रक्त में मिल जाते हैं। इनके स्राव को 'हार्मोन' (Hormone) कहा जाता है तथा इन ग्रंथियों को अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ (Endocrine Glands) भी कहते हैं।

(3) वे ग्रंथियाँ, जिनसे निकलने वाला स्राव चिकनाहट (Lubrication) का कार्य करता है, ताकि रगड़ उत्पन्न होने पर त्वचा छिलने न पाये। ये ग्रंथियाँ मुँह तथा आंतों की भीतरी झिल्लियों में पायी जाती हैं। इन्हें म्यूकस ग्लैण्ड (Mucus Glands) कहा जाता है।

1.6.8 रूधिरीय ऊतक (Blood Tissues or Blood Cells) यह संयोजक ऊतक (Connective Tissues) का ही एक प्रकार है, जो कि अन्य प्रकार के ऊतकों से भिन्न होता है। इसमें दो प्रकार के कोशा (Cell) होते हैं, जिन्हें 'रक्तकोशिकाऐं' (Blood Corpuscles) कहा जाता है-

(1) लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles or Erythrocytes)A

(1) श्वेत रक्त कण (Red Blood Corpuscles or Leucocytes)A

उक्त ऊतकों का माध्यम इनमें उपस्थित द्रव पदार्थ होता है, जो कि आकर्षण तथा प्रवहन का मुख्य साधन है। रक्त में पाये जाने वाले इस द्रव पदार्थ को 'प्लाज्मा' (Plasma) कहते हैं। 'प्लाज्मा' एक रंगहीन द्रव है, जो संयोजक-ऊतक के (Matrix) की भांति होता है तथा रक्त कोशिकाऐं इसी में तैरते हुए एक से दूसरे स्थान में पहुँचती रहती हैं।

अभ्यास प्रश्न

(2) सही/असत्य बताइए

(क) सामान आकार तथा समान कार्य को करने वाले बल कोशा समूह को ऊतक कहते है।

(ख) रक्त एक संयोजी उत्तक है।

(ग) श्वास प्रणाली एवं पाचन संस्थान की पेशियां अनैच्छिक पेशियां होती है।

(घ) श्वेत रक्त कोशिकाऐं लाल रक्त कोशिकाओं से अधिक होते है।

1.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे, कि मानव शरीर संगठन में शरीर के आठ मुख्य संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं व शरीर को आधार और दृढ़ता प्राप्त करने, गति प्रदान करने, रक्त संचरण पोषक, सन्तानोत्पत्ति, एवं शरीर की प्राथमिक इकाई कोशिका अपने आप में पूर्ण है। एक शरीर में जितने आवश्यक संस्थान होते हैं इसी प्रकार एक छोटी कोशिका में इन्हीं बढ़े संस्थान की छोटी प्रतिकृति होती है। कोशिका में पाचन, उत्सर्जन, पोषण अंग विद्यमान होते हैं। कोशिका आपस में मिलकर ऊतकों का निर्माण करती हैं। इन्हीं एक समान अवतरण एवं कार्य करने वाली कोशिकाओं का समूह ऊतक कहलाता है जो पूरे शरीर का निर्माण करता है। इस इकाई के अध्ययन से आप सहज ही शरीर का महत्व एवं उसकी उपयोगिता को समझ गये होंगे।

1.8 शब्दावली

निष्प्राण – जिसमें प्राण न हो, मृतप्राय

नाभिक – केन्द्र

न्यूरॉन – तंत्रिका तंत्र की प्राथमिक इकाई/ कोशिका

ऐच्छिक – अपनी इच्छा से

प्लाज्मा – एक प्रकार का विशिष्ट तरल पदार्थ।

अनेच्छिक – जिस पर अपनी इच्छा ना हो

ऊतक – कोशिकाओं का समूह

माइट्रोकाण्ड्रिया : कोशिका का विद्युताग्रह

संस्थान – तन्त्र

कोष्ठ – आवरण

फुफ्फुस – फेफड़े

उदर – पेट

वृक्क - गुर्दा, किडनी

कोशा – कोशिका, शरीर की इकाई

भित्ति – दिवार

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) राइबोसोम

(ख) माइटोकोन्ड्रिया

(ग) प्रोटीन संश्लेषण

(घ) नेक्रोसिस

(ड.) गॉल्जी बाँडी

2. (क) सत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(घ) असत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

6. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कोशिका की रचना एवं क्रिया समझाइये।

2. ऊतक से क्या तात्पर्य है। इसके प्रकारों के विषय में विस्तार से समझाइये।

इकाई 2 - अस्थि तन्त्र की रचना व कार्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अस्थि संस्थान : एक परिचय

2.4 कंकाल के कार्य

2.5 अस्थियों का आकार

2.6 अस्थि पंजर और उसके मुख्य कार्य

2.7 अस्थियों का संगठन

2.8 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या

2.9 महत्वपूर्ण संधियां

2.10 सारांश

2.11 शब्दावली

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने शरीर संगठन के विविध आयामों के साथ-साथ कोशिका व ऊतकों के बारे में अध्ययन किया। मानव शरीर विविध तन्त्रों से मिलकर बना है। शरीर एक महत्वपूर्ण संस्थान कंकाल तन्त्र है। मानव शरीर का ढॉचा अस्थियों से मिलकर बना होता है। अस्थियों के इस ढॉचे को अस्थिपंजर या कंकाल कहते है। यह कंकाल शरीर के कोमल अंगों की सुरक्षा करता है। प्रस्तुत इकाई में कंकाल तन्त्र की विवेचना आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत की जा रही है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र के विषय में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कंकाल के विभिन्न कार्यो की भली-भॉति विवेचना कर सकेंगे।

- अस्थियों के आधार से संबंधित जानकारी की विवेचना कर सकेंगे।
- अस्थि पंजर व उसके मुख्य कार्यो के विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अस्थियों के संगठन से संबंधित जानकारी विस्तारपूर्वक प्राप्त कर सकेंगे।
- अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या के विषय में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

2.3 अस्थि संस्थान : एक परिचय

मानव शरीर को एक सुव्यवस्थित आकार एवं सहारा देने के लिए एक विशिष्ट तंत्र को आवश्यता होती है व कोमल अंगों को सहारा प्रदान करने, शरीर को आकार देने, गति देने का कार्य जो विशिष्ट संस्थान करता है, वह कंकाल तंत्र अथवा अस्थि संस्थान कहलाता है। यह मानव शरीर निर्माण का आधार हैं।

मनुष्य शरीर का ढाँचा अस्थियों (हड्डियों) से बना होता है व हड्डियों के इस ढाँचे को अस्थि पंजर अथवा कंकाल (Skeleton) कहा जाता है। यह अस्थि-पंजर ही मांस, चर्म, शिराऐं, धमनियाँ, स्नायु आदि कोमल अंगों को शरीर के भीतरी भाग में सुरक्षित रखने का आधार है। मांस, पेशी, पेशीबन्धन, बन्धनी, तन्तु आदि इसी से लिपटे रहते हैं। मानव-शरीर का बाह्य स्वरूप इसी ढाँचे के अनुरूप होता है। विभिन्न हड्डियाँ ही आपस में मिलकर सन्धियाँ बनाती हैं तथा उन्हें गति प्रदान करने में सहायता देती हैं। लम्बी अस्थियों द्वारा रक्त के लाल कण भी तैयार किये जाते हैं। जिनका निर्माण अस्थि मज्जा में होता है।

अस्थि-पंजर में कुछ हड्डियाँ लम्बी, कुछ गोल, कुछ चपटी, कुछ टेढ़ी-मेढ़ी और कुछ बेलनाकार होती हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई भी अलग-अलग पायी जाती है। सम्पूर्ण शरीर में छोटी-बड़ी हड्डियों की कुल संख्या 206 होती है। इनका भार शरीर के भार का प्रायः 16वां हिस्सा होता है।

हड्डियों के भीतर पायी जाने वाली मज्जा दो प्रकार की होती है-(1) लाल और (2) पीली। लाल रंग की मज्जा हड्डी के जालमय भाग में तथा पीले रंग की मज्जा हड्डी के सिरों पर दिखाई देती है।

अस्थियों का निर्माण सजीव पदार्थ (Organic matter) तथा खनिज पदार्थ (Mineral matter) के मेल से होता है। इनमें सजीव पदार्थ का प्रतिशत 33.30 तथा खनिज पदार्थ 66.70 प्रतिशत पाया जाता है।

2.4 कंकाल के कार्य

कंकाल के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

- शरीर को आकार प्रदान करना।
- शरीर को दृढ़ता प्रदान करना।

- भीतरी कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करना।
- पेशियों के लिए मुड़ने का स्थान प्रदान करना।
- शरीर की सन्धियों को सुव्यवस्थित करना और शरीर को कार्य करने तथा चलने-फिरने इत्यादि के योग्य बनाना।

2.5 अस्थियों का आकार

रचना एवं आकृति के आधार पर निम्न प्रकार की अस्थियां होती है –

1. लम्बी अस्थियां – ये चौड़ाई की अपेक्षा लम्बाई में अधिक होती हैं। उदाहरण के लिए, भुजाओं, जांघ, तंत्र आदि की लम्बी अस्थियां। इसका विस्तृत विवेचन आगामी पृष्ठों में है।

2. छोटी अस्थियां – इस प्रकार की अस्थियां दीर्घ अस्थियों के समान लम्बी नहीं होती बल्कि लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई में लगभग बराबर होती है, लेकिन इनकी आकृति असान होती है।

ये अधिकतर स्पंजी अस्थि ऊतक की बनी होती हैं व छोटी अस्थियां कलाई तथा टखननों में पाई जाती है। ये अधिक गति के लिए उपयोगी नहीं होती अत: ऐसी जगह पाई जाती हैं जहां अधिक गति की आवश्यकता नहीं होती है।

3. चपटी अस्थियां – इस प्रकार की अस्थियां श्रिब्स, कंधे की अस्थियां, वक्ष की अस्थि तथा खोपड़ी की अस्थि होती है।

4. असमाकृति अस्थियां – ये आकार में एक जैसी नहीं होती ये अनियमित व विशिष्ट होती हैं जैसे कशेरूक दण्ड की अस्थियां, चेहरे की अस्थियां, कूल्हे की अस्थियां। ये अस्थियां भी छोटी अस्थियों के समान स्पंजी अस्थि ऊतक की बनी होती हैं।

5. कण्डरास्थियॉ – इस प्रकार की अस्थियॉ कुछ विशेष कण्डराओं में विकसित होती है, जो किसी जोड़ के निकट पाई जाती हैं जैसे घुटने की अस्थि, कलाई की विशेष अस्थि इत्यादि तथा इस प्रकार की अस्थियॉ घोड़ों की कार्यक्षमता को बढ़ाती है।

2.6 अस्थि पंजर और उसके मुख्य कार्य

अस्थि पंजर का मुख्य कार्य क्रियात्मक कार्य है।

1. अस्थि पंजर शरीर में समस्थिति बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. शरीर की जो भी गतियां होती हैं वे अस्थियों के कारण ही सम्भव हो पाती है।

3. अस्थियों की मज्जा में (bone marrow) रक्त का निर्माण होता है तथा इस कार्य के कारण अस्थियों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

4. यह भण्डारण का कार्य भी करती हैं और अस्थियों में कैल्शियम पूरे शरीर का लगभग 99% तक पाया जाता है।

2.7 अस्थियों का संगठन

एक वयस्क मनुष्य की अस्थि में जल एवं गेरू पदार्थें का संगठन 25% और 75% तक पाया जाता है। गेरू पदार्थ में मुख्य रूप से कैल्शियम और फॉस्फोरस अकार्बनिक पदार्थ के रूप में एवं कार्बनिक ठोस (मुख्यतया प्रोटीन) 30% के आसपास होता है।

2.8 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या

मनुष्य-शरीर में पाई जाने वाली कुल 206 हड्डियों में से विभिन्न अंगों में निम्नलिखित संख्या में हड्डियाँ पायी जाती हैं –

(1) कपाल (Cravium) में		8
(2) चेहरा (Face) में		14
(3) कान (Ear) में		6
(4) रीढ़ (Spinal Column) में		26
(5) पसलियों (Ribs) में दोनों ओर 12$12		24
(6) छाती (Sternum) में		1
(7) गले (Hyoid Bone) में		1
(8) उर्ध्व शाखाओं अर्थात दोनों हाथों में 32+32	कुल	64
(9) निम्न शाखाओं अर्थात् दोनों पावों में 31+31	कुल	62
	कुल योग	206

पुरूष शरीर की भाँति स्त्रियों के शरीर में भी कुल 206 हड्डियाँ ही होती हैं। उक्त हड्डियों की संख्या के सम्बन्ध में विशेष विवरण निम्नानुसार है-

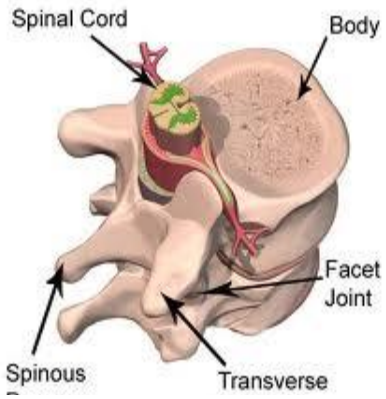

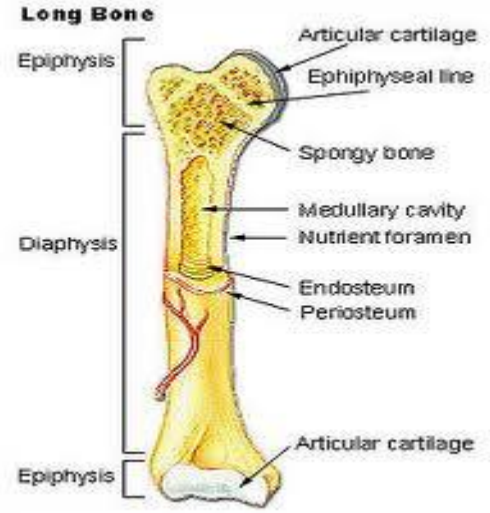

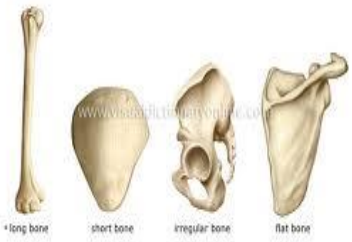

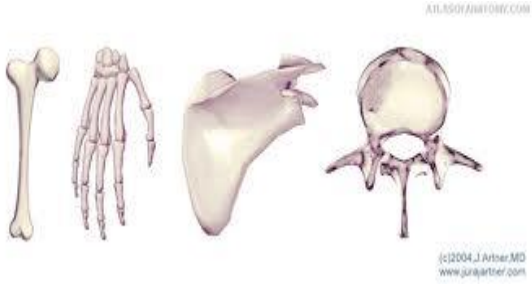

TYPES OF BONE

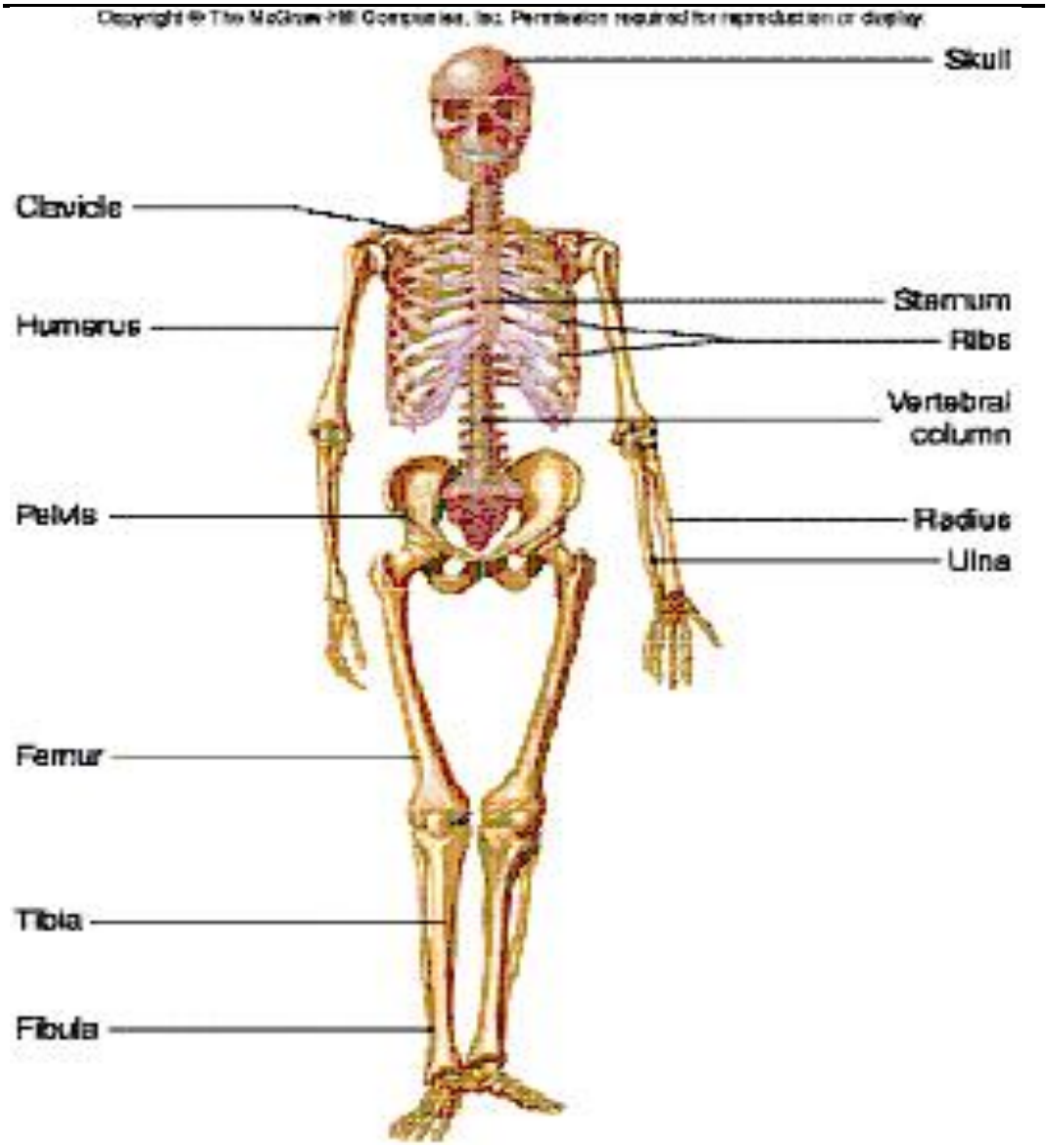

(v) खोपड़ी की अस्थियों में-

(1) मस्तिष्क (Cravium) भाग में 8

(2)चेहरे (Face) में 14

(c) धड़ की हड्डियों में

(1)दोनोंओरकीपसलियोमें 24

(2) छाती (Sternum) में		1
(3) अक्षकास्थियाँ अथवा हंसली की हड्डियाँ (Clavicle)		2
(4) स्कन्धास्थि अथवा कंधे की हड्डी (Shoulder Blade or Scapulla)		2
(5) श्रोणी मेखला (Hip Girdle)		2
(6)कशेरूकाऐं(Vertebra)	33	

(l) भुजाओं की हड्डियों में-

(1) प्रगण्डास्थिया¡ (Humerus)		2
(2) अन्तः प्रकोष्ठास्थियाँ (Ulna)		2
(3) बहिःप्रकोष्ठास्थिया (Radius)		2
(4)मणिबन्धकीअस्थियाँ(CorpalBones)	16	
(5)शलाकास्थियाँ(Metacarpals)	10	
(6)अंगुलास्थियाँ(Phalanges)	28	

(n) टाँगों की हड्डियों में-

(1) उर्ध्वविकास्थियाँ (Femur)		2
(2) जानुवस्थियाँ (Knee Cap, Patella)		2
(3) अन्तर्जघि (Tibia)		2
(4) वहिर्जघि (Fibula)		2
(5)गुल्फास्थियाँ(Tarsals)	14	
(6)अनुगुल्फास्थियाँ(Metatarsals)	10	
(7)अंगुलास्थियाँ(Phalanges)	28	
कुलयोग	**206**	

2.9 महत्वपूर्ण संधियां

मानव शरीर की महत्वपूर्ण सन्धियॉ इस प्रकार हैं।

(अ) तन्तुमय संधियॉ (**Fibrous joints**)

(ब) उपस्थिमय संधियॉ (**Cartilaginous joints**)

(स) साइनोवियल संधियाँ (**Synovial joints**)

(अ) तन्तुमय संधियां – सामान्यत: तन्तुमय संधियॉ तीन प्रकार की होती है - स्यूचर्स, सिण्डेस्मोसिस एवं गोम्फोसिस

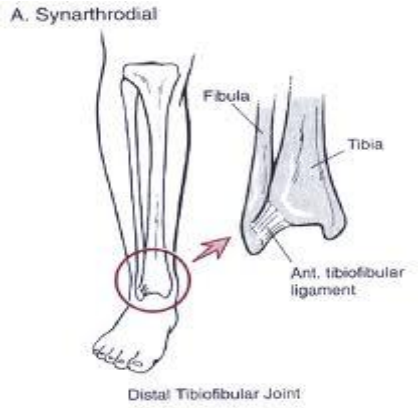

स्यूचर्स कपाल में पाई जाने वाली अचल संधि है सीमित गति वाली सिण्डेस्मोसिस सन्धियां एवं गोम्फोसिस संधियां कील या खूंटी और गर्त की बनी होती है उदाहरण के लिए दन्तमूल के दन्तबोटर में उसकी अस्थियॉ सॉकेट में अवस्थित होने पर बनती है।

(ब) उपस्थिमय संधियॉ – इस प्रकार की सन्धियॉ में अल्पगति होती है अथवा बिल्कुल भी गति नहीं होती है। वर्टिब्री काय, मेन्यूब्रियम के मध्य और स्टर्नम काय आदि में उपस्थिजन्य संधियां पाई जाती है।

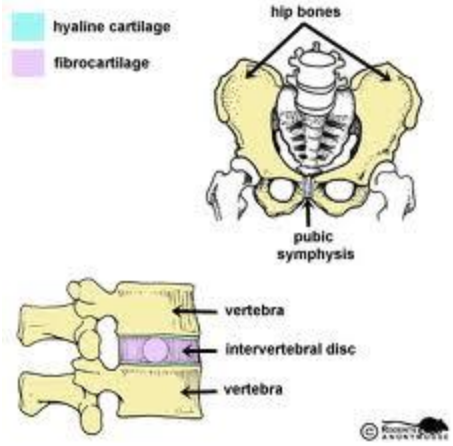

(स) साइनोवियल संधियां –

शरीर की अधिकांश स्थायी सन्धियॉ साइनोवियल होती है।

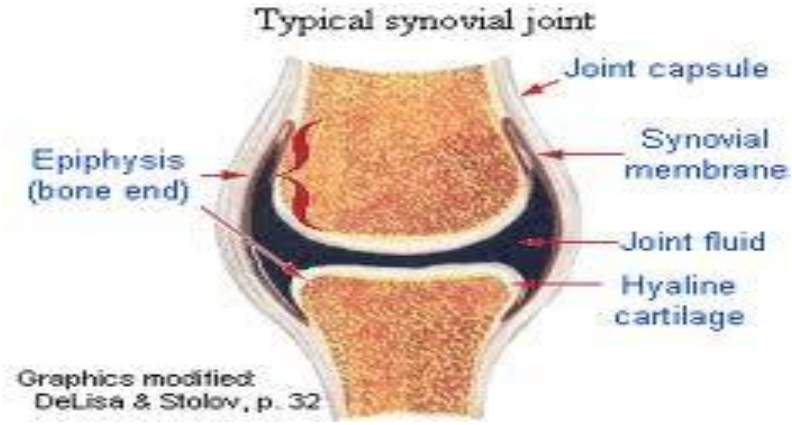

अस्थियों के सिरे एक पतली चिकनी सन्धि बनाने वाली उपस्थि से ढके रहते हैं। इनकी संधि गुहा में साफ, गाढ़ा लसलसा तैलीय द्रव पदार्थ भरा रहता हैं। इस द्रव के कारण सन्धि चिकनी बनी रहती है। ये सन्धियां शरीर की अधिकतर स्थायी सन्धियों का निर्माण करते हैं। इनके उदाहरण कोहनी, घुटने, टखने, जबोड़, अंगुलि आदि की सन्धियां है।

अभ्यास प्रश्न –

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति –

(क) सम्पूर्ण शरीर में छोटी-बड़ी अस्थियों की कुल संख्या.....हैं।

(ख) अस्थियों का निर्माण में.....प्रतिशत सजीव पदार्थ एवं.....प्रतिशत खनिज पदार्थ पाया जाता है।

(ग) पसलियॉं .....जोड़ी होती है।

(घ) छाती की अस्थि.....कहलाती है।

(ड.) सन्धियॉं.....प्रकार की होती है।

2. सत्य/असत्य बताइये -

(क) रक्त का निर्माण अस्थि मज्जा में होता है।

(ख) साइनोवियल संधियां सम्पूर्ण शरीर की अविनाशत: स्थायी संधि का निर्माण करती हैं।

(ग) तन्तुमय संधियां चल संधियां हैं।

2.10 सारांश

आपने पढ़ा कि अस्थि संस्थान न केवल गति प्रदान करने, ढांचा देने अथवा स्थिरता देने का कार्य करता है बल्कि यह कोमल अंगों को जैसे मस्तिष्क, हृदय, आंते आदि को सहारा एवं संरक्षण प्रदान करता है। अस्थि संस्थान शरीर को आधार होने के साथ जीवन का भी आधार होता है। अस्थियों का निर्माण सजीव पदार्थो तथा खनिज पदार्थों के मेल से होता है। अस्थियों के जोड़ों में ही रक्त का निर्माण सम्भव हो पाता है। अत: कंकाल तंत्र अन्य तंत्रों को सहारा देता है एवं मांसपेशीय संस्थान एवं रक्त से सीधा इसका सम्बन्ध होता है।

2.11 शब्दावली

समस्थिति – एक समान स्थिति
कार्बनिक पदार्थ – कार्बन युक्त पदार्थ
अस्थि – हड्डी
पंजर – पिजड़ा
संस्थान – तन्त्र
ऊतक – कोशिकाओं का समूह
सन्धि – मिलना, मिलाना, दो हड्डियों को जुड़ने का स्थान
जानु – घुटना

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) 206

(ख) 33.30%, 66.70%

(ग) 12

(घ) वक्षोस्थि

(ड.) तीन

2. सत्य/असत्य

(क) सत्य

(ख) सत्य

(ग) असत्य

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा
8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा
9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद
10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. कंकाल तंत्र के कार्य एवं अस्थियों के आकार की चर्चा कीजिए।

2. अस्थियों के संगठनात्मक विवरण के साथ मुख्य संधियों की चर्चा कीजिए।

इकाई- 3 पेशीय तन्त्र की रचना व कार्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मांस-संस्थान अथवा पेशीय तंत्र-एक परिचय

3.3.1 पेशियों का नामकरण

3.3.2 पेशियों का उद्गम एवं निवेशन

3.3.3 पेशियों की बनावट

3.4 मांसपेशियों के भेद

3.4.1 ऐच्छिक पेशियां

3.4.2 अनैच्छिक पेशियां

3.5 पेशियों के कार्य एवं गतियां

3.6 शरीर की मुख्य पेशियां

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मानव शरीर का ढॉचा अस्थियों से बना होता है, जो कि अलग-अलग आवृति की होने के कारण शरीर के अलग-अलग हिस्सों को सहारा, सुरक्षा एवं गति प्रदान करती हैं। अस्थि मज्जा में रक्त कोशिकाओं का निर्माण होता है। उपरोक्त सभी जानकारी आपने पिछली इकाई में अर्जित की है।

इस इकाई में आप पेशीय संस्थान के विषय में पढ़ेगे। मानव ढॉचा अस्थियों से बना होता है, जिसमें अस्थियॉ लीवर की भांति कार्य करती है, परन्तु पेशियां उन्हें गति करने की शक्ति प्रदान करती हैं। पेशियों के सिकुड़ने एवं फैलने की क्रिया अस्थि संस्थान पर सीधे प्रभाव डालती है।

आगे आप जान पायेंगे कि किस प्रकार पेशियां शरीर में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- मांस संस्थान अथवा पेशी तन्त्र के विषय में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पेशियों का नामकरण कर सकेंगे।
- पेशियों के उद्भव एवं निवेशन के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पेशियों की बनावट के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मांसपेशियों के भेदों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पेशियों के विभिन्न कार्यो एवं गतियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शरीर की मुख्य पेशियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ऐच्छिक पेशियों की संरचना एवं कार्यों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अनेच्छिक पेशियों की संरचना एवं कार्यों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

3.3 मांस-संस्थान अथवा पेशीय तन्त्र (Muscular System) – एक परिचय

कोशिकाओं (Cells) तथा उनके समूह-ऊतकों (Tissues) द्वारा ही शरीर के विभिन्न अवयवों का निर्माण होता है। मांसपेशियों की रचना भी उन्हीं की देन है। मांसपेशी के प्रत्येक तन्तु में कितनी ही कोशिकाऐं होती हैं।

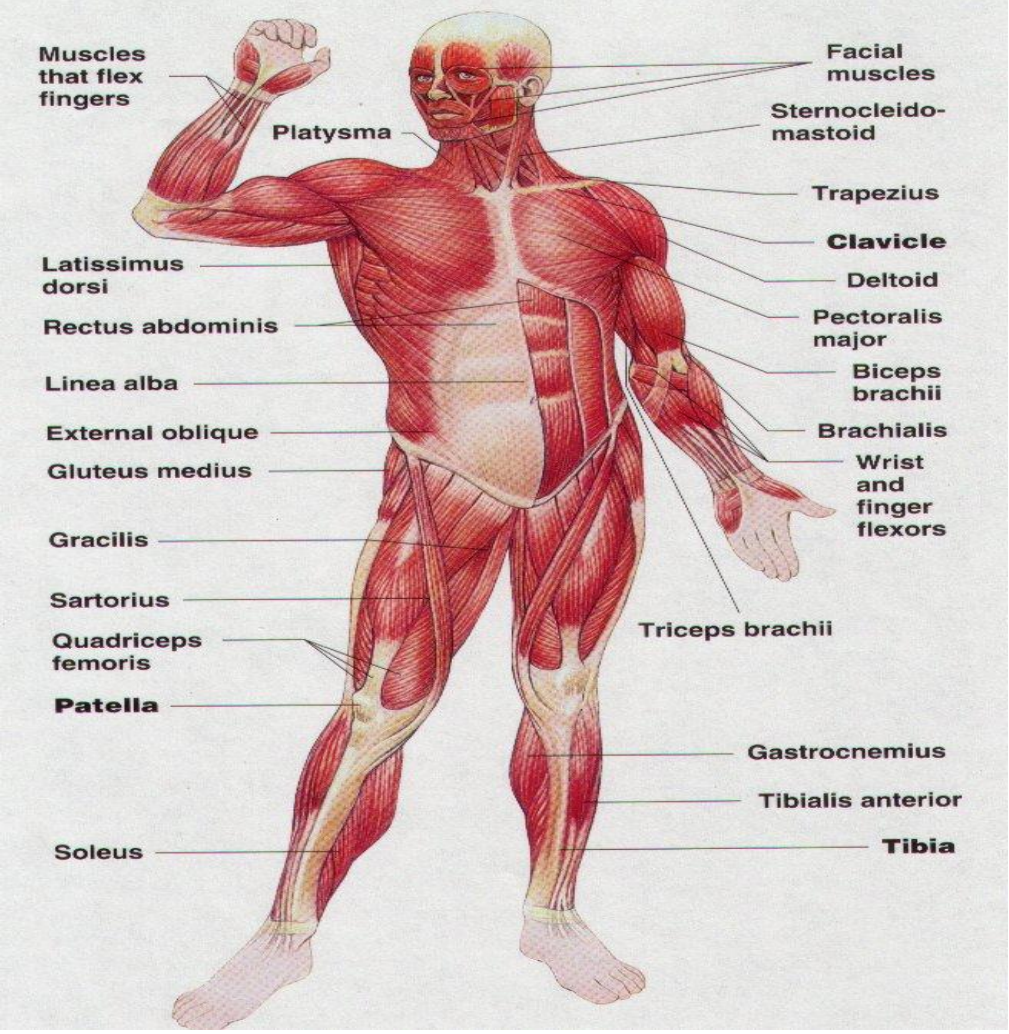

मनुष्य शरीर का अधिकांश बाह्यान्तर भाग मांसपेशियों से ढँका रहता है। शरीर का ऊपरी ढाँचा तो पूर्णतः ही मांसाच्छादित होता है। इसी आच्छादन के कारण शरीर सुन्दर तथा सुडौल दिखाई देता है।

'मांसपेशियां' अथवा 'मांस' एक लसदार समूह का नाम है। मांसपेशियां या तो मांस का गुच्छा होती हैं अथवा एक-एक मांस-सूत्र होती हैं। इन पेशियों में 'संकोचन' का विशेष गुण होता है] जिसके कारण हम अपने हाथ-पाँव] सिर आदि शारीरिक अवयवों को विभिन्न दिशाओं में सरलतापूर्वक घुमा सकते हैं तथा उनसे विभिन्न काम भी लेते हैं। जैसे-मुँह को खोलना और बन्द करना हाथों से लिखना पाँवों से चलना आदि। हृदय का धड़कना आँखों की पुतलियों का सिकुड़ना और फैलना तथा भोजन को चलाकर गले से नीचे उतरना आदि कार्य भी इन्हीं के कारण सम्पन्न होते हैं।

3.3.1 पेशियों का नामकरण – पेशियों के नाम उनके कार्य के आधार पर, बनावट के आधार पर, शरीर में उनकी स्थिति एवं उनके तन्तुओं की दिशा के आधार पर रखा जाता है। उदाहरण के लिये स्थिति के आधार पर External

intercostals and Internal intercostals पेशियों के नाम रखे गये हैं, आकृति के आधार डेल्टाइड (Deltoid muscle) जो कि डेल्टा (लिलोगाकार) आकार की है। कार्य के अनुसार पेशियों के नामकरण का उदाहरण बांह की पेशी Flexor Pollicis longus नामक पेशी है।

3.3.2 उद्गम एवं निवेशन

(अ) उद्गम – उद्गम का अर्थ है पेशी का वह सिरा जो पेशीय संकुचन के होने पर स्थिर अवस्था में होता है। यह सिरा अस्थि के जिस हिस्से पर जुड़ा रहता है उस स्थल अथवा सम्बन्धित स्थान को उद्गम स्थल कहते हैं। पेशी का उद्गम सामान्यत: अक्षीय कंकाल के अधिक समीप रहता है। पेशियों के कार्य के अनुसार उनके उद्गम स्थल परिवर्तित होते है।

(ब) निवेशन – पेशी का निवेशन से तात्पर्य पेशी के गतिशील हिस्से से है। अस्थि के सम्बन्ध में बात करें तो निवेशन अक्षीय कंकाल के दूरस्थ जुड़ाव से सम्बन्धित है।

3.3.3 पेशियों की बनावट – पेशियों की बनावट उनके तन्तुओं के विभिन्न आकारों में व्यवस्थित होने के कारण होती हैं पेशियों की शक्ति, गतिशीलता, स्थिरता, लचीलापन आदि तन्तुओं के विभिन्न व्यवस्थाओं के फलस्वरूप होता हैं। पेशी का मध्य भाग अधिक लम्बा होने से गति भी अधिक होगी। पेशियां मोटी होने से शक्ति भी अधिक होगी। पेशियां विभिन्न आकार प्रकार की होती है जैसे गोलाकार पेशी मुख की ओखीक्यूलस ओरिस ऑखों की ओखक्यिूलेरिस ओक्यूलाइ, स्ट्रेप देशी का उदाहरण गर्दन की स्टर्नोहाइयौइड पेशी, फ्यूजीफॉर्म पेशी तकले के आकार की होती है जिसका उदाहरण बाइसेप्स पेशी है, पीनेट पेशी पंख के आकार की होती है। इसका उदाहरण अंगूठे की पेशियां, टांग की रेक्टरस फीमोरिस पेशी आदि।

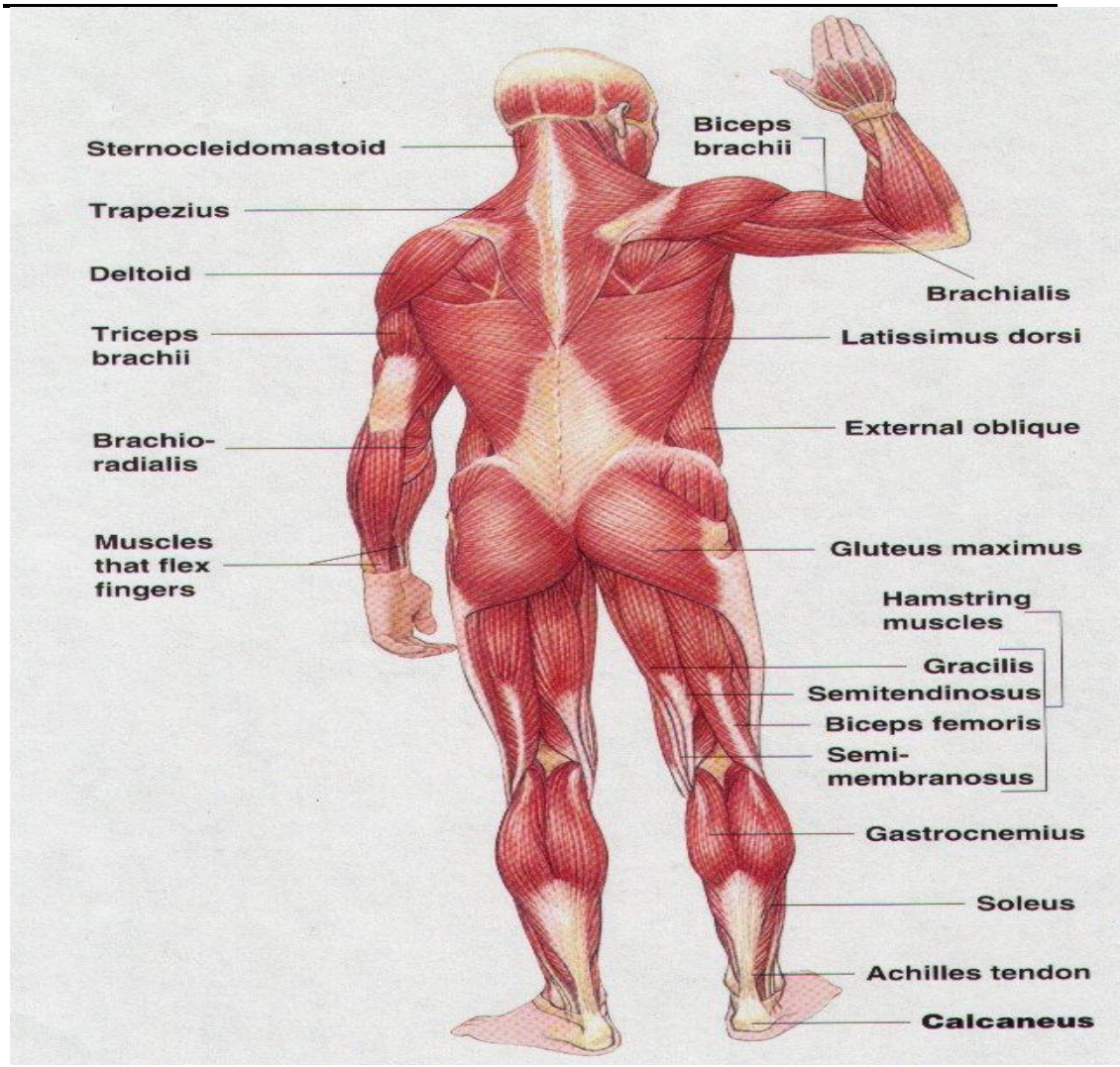

3.4 मांसपेशियों के भेद

मनुष्य शरीर में छोटी-छोटी कुल 519 मांसपेशियाँ पाई जाती हैं। इनके निम्नलिखित दो भेद माने गये हैं-

(1) ऐच्छिक (Voluntary)

(2) अनैच्छिक (Non-voluntary)

3.4.1 'ऐच्छिक' अथवा 'पराधीन' मांसपेशिया वे होती हैं, जो मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती हैं। उनका प्रयोग करना अथवा न करना मनुष्य की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है। जैसे- हाथ-पाँव आदि की मांसपेशियाँ।

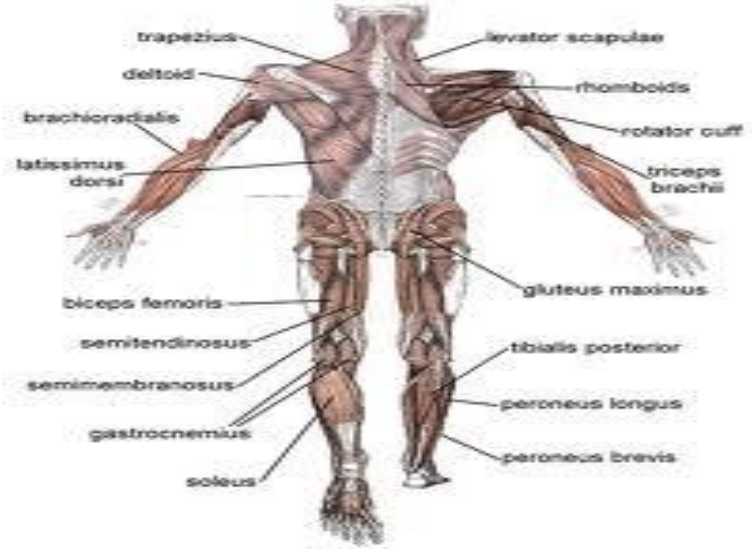

3.4.2 'अनैच्छिक' अथवा 'स्वाधीन' मांसपेशियाँ होती हैं, जो स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती रहती हैं तथा मनुष्य उन्हें अपनी इच्छानुसार नहीं चला सकता।

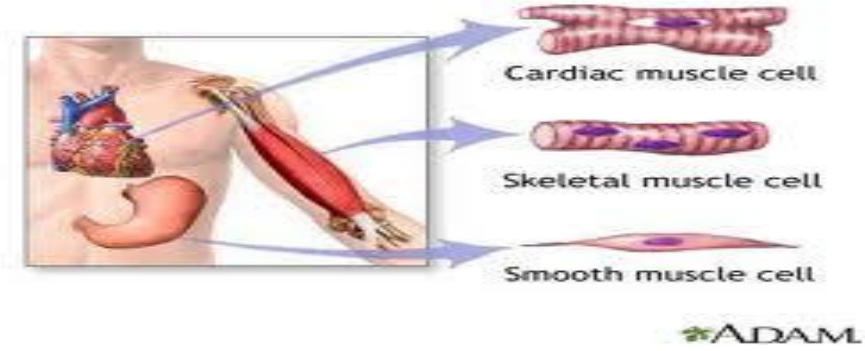

ये पेशिया अपना कार्य दिन-रात निरंतर करती ही रहती हैं। जैसे-हृदय, श्वसन-संस्थान, अग्न्याशय, आँत, अन्ननली तथा तिल्ली आदि की मांसपेशियों के कार्य।

मांसपेशियाँ जितनी सुदृढ़ होती हैं मनुष्य का शरीर भी उतना ही सुगठित, सुन्दर तथा शक्तिशाली होता है। इनके द्वारा शरीर को उष्णता भी प्राप्त होती है।

3.5 पेशियों के कार्य एवं गतियां

पेशियों के क्रियात्मक होने के कारण ही शरीर में गति सम्भव हो पाती है। कंकालीय पेशियां शरीर के विभिन्न भागों में गति लाने के लिये अकेले कार्य न करके समूहों में कार्यरत रहती है।

पेशी की क्रिया के अन्तर्गत पेशियों का संकुचन महत्वपूर्ण घटना है।

पेशी का संकुचन पेशी का विशेष गुण है। स्नायु आवेगों के कारण पेशीय संकुचन होता है। पेशीय तन्तुओं के संकुचन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ये ऊर्जा आहार के पाचन के फलस्वरूप उत्पन्न ऊर्जा से प्राप्त होती है। प्रतिवर्ष क्रिया भी पेशियों की विशेष गति है। संवेदनाएं अथवा उद्दीपन पेशियों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचते हैं एवं उसके पश्चात् मस्तिष्क से पेशियों तक प्रेरणा से आकार कार्य हेतु पेशियों को उत्प्रेरित करते हैं। कभी-कभी संवेग मस्तिष्क में न जाकर मेरूरज्जु में जाते है एवं वहीं से प्रेरणा पाकर कार्य करते है इस क्रिया को प्रतिवर्ती क्रिया कहते है।

3.6 शरीर की मुख्य पेशियां

अब आप शरीर की मुख्य पेशियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे –

(A) सिर की पेशियां (Muscles of the head)

हाव भाव की पेशियां – गोलाकार पेशियों ऑर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ और ऑबिकुलेरिस ऑरिस क्रमश: ऑखों की पेशियों एवं मुख की पेशियां हैं।

भौहों और पलकों, मुँह के कोणों की हिलाने वाली छोटी पेशियां हैं।

(B) चेहरे की पेशियां (Facial Muscles) –

1. ऑक्सीपिटोफ्रन्टैलिस पेशी – यह ललाट एवं ऑखों के उपरी भाग का निर्माण करती है।

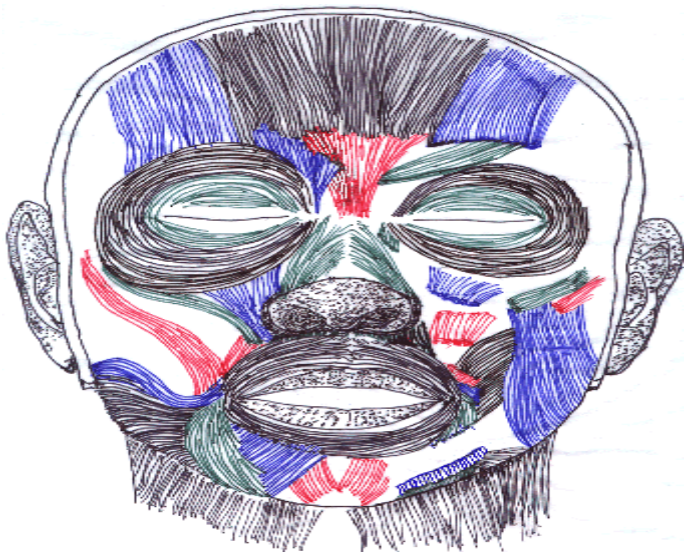

2. ऑर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ (Orbicularis oculi) पेशी – यह गोलाकार पेशी ऑखों को खोलने और बन्द करने का कार्य करती है, एवं ऑखों को गोल-गोल घुमाते है।

3. आर्म्बिकुलेरिस ऑरिस (Orbicularis oris) – यह भी गोलाकार पेशी हैं एवं मुख के चारों ओर स्थित होती हैं।

4. बाक्सीनेटर पेशी (Buccinator muscle) – यह चपटी पेशी है एवं दोनों जालों का निर्माण करती है।

5. मैसेटर पेशी (Master muscle) – यह जबड़े की पेशी है। यह चबाते समय जबड़े को उपर उठाने का कार्य करती है। इसी प्रकार टेम्पोरेलिस पेशी (Temporalis) एवं टैरिगॉयड पेशी (Pterygoid) की भोजन चबाते समय विभिन्न क्षेणों से जबड़े को सहायता देते है।

(C) गर्दन की पेशियॉं (Neck muscles) - गर्दन की पेशियों में स्टर्नोहायाइड पेशी (sternohyoid muscle) हाऑइड अस्थि को नीचे करने का कार्य करती है। प्लेटिज्मा पेशी के संकेचन के फलस्वरूप गर्दन में झुर्रियां पड़ जाती है एवं मुख कोणनुमा हो जाता है। ट्रेपीजियस पेशी जोकि पीठ को पेशी है, ग्रीवा के निर्माण में भाग लेती है।

(D) वक्ष भाग की पेशियॉं (Trunk muscles) – इसमें बाहों की पेशी पेक्टोरेलिस मेजर (Pectoralis major) तथा इसी पेशी के नीचे स्थित पेक्टोरेलिस माइनर (pectoralis minor) जो स्कैपुला अस्थि को नीचे की ओर खींचती है। स्कैपुला को आगे और बाहर की ओर खींचने

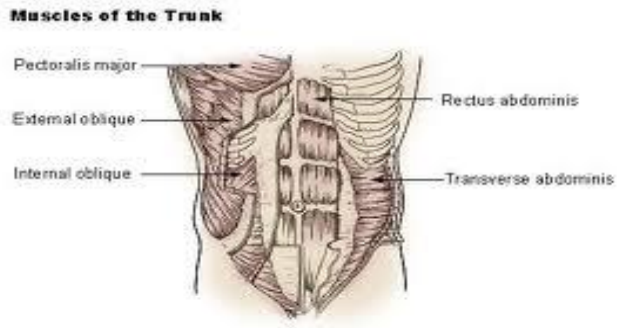

का कार्य सिरेटस एनटीरियर (Serratus anterior) नामक पेशी करती है। वक्ष स्थल की पेशियों में बहुत महत्वपूर्ण पेशी डायफ्राम पेशी हैं। यह वक्ष स्थल और उदर क्षेत्र को अलग करती है। इसी पेशी के कारण फेफड़ों में वायु भर पाती है। इनमें बाहय इन्टरकॉस्टल पेशी व आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशी सम्मिलित होती है।

(E) पीठ की पेशियॉं (Back muscles) - पीठ के उपरी भाग एवं निचले भाग की चौड़ी और सपाट पेशी क्रमश: ट्रेपीजियस (Trapezius muscles) एवं लेटिसीमस डासीई (Latissimus dorsi muscle) पी की पेशी में रोहम्बॉपडियस और लीवेटर स्कैपुली पेशियां प्रमुख हैं जिनका निवेशन उपरी भुजा की अस्थियों पर होता है। पीठ की पेशियों में कुछ अति प्रमुख पेशियों के अन्तर्गत श्वसन में भाग लेने वाली पेशी सीरेटस पोस्टीरियर सुपीरियर पेशी है एवं सलेनियस पेशी सिर के प्रसार एवं सैक्रोस्पाइनैलिस पेशी का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है यह वर्टिबल कॉलम को प्रसारित करती है, दूसरा नाम रेक्टस स्पाइनैलिस (Rectus spinalis) भी है।

(F) भुजा की पेशियां – इसके अन्तर्गत बाइसेप्स ब्रैकिएलिस पेशी (Biceps branchi muscles), डेल्टाइड पेशी (Deltoid muscles) सुप्रास्पाइनेटस पेशी, सबल्कैपुसेरिस पेशी, टिमीण मेजर पेशी, टेरीसमाइनर पेशी, ब्रैकियोरेडिएलिस पेशी, कोरेकोब्रैकिएलिस पेशी आती है।

(G) श्रोणिगत पेशियां (Pelvic muscles) – इसमें लीवेटर एनाई पेशियां (levator ani muscles), कौक्सिजाई पेशियां (Coccygeimusles) सम्मिलित हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) मानव शरीर में छोटी-बड़ी कुल.....पेशियां पाई जाती है।

(ख) पेशियों का.....पेशी का विशेष गुण है।

(ग) पेशियों का.....भाग लम्बा होने से गति भी अधिक होगी।

(घ) तक्षीय गुहा और रूदर गुहा को अलग करने वाली पेशी का नाम.....है।

2. सत्य/असत्य बताइए

(क) पेशियों का उद्गम स्थल अक्षीय के नाल के अधिक समीप रहता है।

(ख) पेशियों के कार्य के अनुसार उनके उद्गम स्थल परिवर्तित होते हैं।

(ग) मैसेटर पेशी कंधे की पेशी है।

3.7 सारांश

मानव का मॉसपेशीय संस्थान शरीर की समस्त क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है। मानव शरीर का कोई भी अंग मॉसपेशियों का समूह है। शरीर में कुछ पेशीयां ऐसी होती है जिन पर हमारा नियंत्रण होता है उन्हें हम इच्छानुसार नियंत्रित तथा संवर्धन कर सकते है कुछ ऐसी पेशियॉ है जिन पर हमारा नियंत्रण नहीं होता वह स्वत: ही अपना कार्य करती है। शरीर की समस्त गतियों के लिए इस संस्थान का महत्व है। पेशियॉ शरीर को गति ही प्रदान नहीं करती अपितु शरीर को एक सुन्दर आकार भी प्रदान करती है। पेशियों में जब संकुचन होता है तो प्रतिवर्ती क्रिया द्वारा हमारा शरीर कार्य करता है। प्रतिवर्ती क्रिया के फलस्वरूप किसी गम्भीर परिणाम से बचा जा सकता है।

3.8 शब्दावली

- अस्थि मज्जा – अस्थि की केन्द्रीय मेड्यूलरी नलिका में तथा सुसिर अस्थि के बीच-बीच के रिक्त स्थानों में कोशिकामय वाहिकामय ऊतक विद्यमान रहते हैं। इन सभी को संयुक्त रूप से अस्थि मज्जा कहते हैं।
- डायफ्राम – यह वक्षीय गुहा एवं उदरीय गुहा के बीच उन्हें पृथक करने वाली गुम्बद के आकार की चौड़ी पेशी है।
- अवयव – तत्व
- आच्छादन – ढकना
- ऐच्छिक पेशी – जिस पेशी को इच्छानुसार गति दी जा सकती है।
- अनैच्छिक पेशी – जिस पेशी को इच्छानुसार गति नहीं दी जा सकती है।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) 519

(ख) संकुचन

(ग) मध्य

(घ) डायक्राम

2. सत्य/असत्य बताइए

(क) सत्य

(ख) सत्य

(ग) असत्य

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पेशियों का भेद सहित वर्णन करते हुए कार्य एवं गति की व्याख्या कीजिए।

2. शरीर की मुख्य पेशियों का वर्णन कीजिए।

इकाई 4 - रक्त परिसंचरण तंत्र की रचना व कार्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र: एक परिचय

4.4 रक्त विश्लेषण

4.4.1 प्लाज्मा

4.4.2 रक्त कणिकाएँ

4.5 रक्त के कार्य

4.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव

4.6.1 हृदय

4.6.2 धमनियॉ

4.6.3 शिराएँ

4.6.4 कोशिकाएं तथा लसिकाएँ

4.6.5 फेफड़े

4.6.6 महाधमनी तथा महा-शिरा

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने मांस संस्थान अथवा पेशी तंत्र के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान अर्जित किया। आपने जाना कि किस प्रकार पेशियॉ शरीर को गति प्रदान करती हैं। किस प्रकार की पेशी कौन सा कार्य सम्पादित करती है यह आपने पढ़ा। इसके साथ ही एच्छिक व अनैच्छिक पेशियों के विषय में आपने विस्तार से समझा और जाना।

इस इकाई में आप रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र के विषय में जानेंगे और पढ़ेंगे। आप जानेंगे कि किस प्रकार रक्त परिसंचरण तंत्र हृदय, धमनियॉ, शिराओं आदि के द्वारा रक्त को पूरे शरीर में प्रवाहित करता है व साथ ही दूषित रक्त को किस प्रकार शुद्धिकरण के लिए भेजता है। रक्त शरीर का एक महत्वपूर्ण अवयव है प्रस्तुत इकाई में रक्त के विविध अवयवों को भी आपके अवलोकनार्थ वर्णन किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- रक्त संचरण अथवा परिवहन तंत्र के विषय में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थो का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थो के उपभागों के मुख्य कार्यो के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- रक्त के प्रमुख कार्यो का भली-भॉति वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयवों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हृदय की संरचना एवं कार्यो का अध्ययन करेंगे।
- धमनियों की संरचना एवं कार्यो की विवेचना कर सकेंगे।
- शिराओं की संरचना एवं कार्यो को जान सकेंगे।
- कोशिकाओं तथा लसिकाओं की संरचना एवं कार्यो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- महाधमनी तथा महाशिरा की कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

4.3 रक्त संचरण अथवा परिवहन-तन्त्र : एक परिचय

शरीर के भीतर जो एक लाल रंग का द्रव-पदार्थ भरा हुआ है, उसी को 'रक्त' (Blood) कहते हैं। इसे जीवन का रस भी कहा जा सकता है। यह संपूर्ण शरीर में निरन्तर भ्रमण करता तथा अंग-प्रत्यंग को पुष्टि प्रदान करता रहता है। जब तक शरीर में इसका संचरण रहता है तभी तक प्राणी जीवित रहता है। इसका संचरण बन्द होते ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

सामान्यतः मनुष्य शरीर में रक्त की मात्रा 5-6 लीटर होती है। एक अन्य मत के अनुसार मनुष्य के शारीरिक भार का 20वाँ भाग रक्त होता है। रक्त पूरे शरीर में दौड़ता रहता है। परिसंचरण तंत्र में मुख्य रूप से हृदय, फेफड़े, धमनी व शिरा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमारा हृदय एक पम्पिंग मशीन की तरह कार्य करता है जो अनवरत अशुद्ध रक्त को फेफड़ों में शुद्ध करने तथा फिर शुद्ध रक्त को पूरे शरीर में भेजता रहता है। प्रिय विद्यार्थियों रक्त परिसंचरण की यह प्रक्रिया जीवन भर चलते रहती है। आपके समक्ष अब कुछ प्रश्न होंगे-

- रक्त क्या है ?
- रक्त के मुख्य अवयव क्या है ?
- रक्त कणिकाऐं कितनी होती है ?
- रक्त की शरीर में क्या जरूरत है और इसके कार्य क्या है ?
- रक्त परिवहन तन्त्र में हृदय की क्या भूमिका है ?
- धमनी व शिरा की क्या उपयोगिता है ?
- महाधमनी व महाशिरा की क्या कार्यप्रणाली है ?

प्रस्तुत इकाई को पढने के उपरान्त उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जावोंगे।

4.4 रक्त-विश्लेषण

रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.065 होता है। मनुष्य शरीर के भीतर इसका तापमान 100 डिग्री फा.हा. रहता है, परन्तु रोग की हालत में इसका तापमान कम अथवा अधिक भी हो सकता है। इसका स्वाद कुछ **'**नमकीन**'** सा होता है। इसका कुछ अंश तरल तथा कुछ गाढ़ा होता है। रक्त में निम्नलिखित पदार्थों का मिश्रण पाया जाता है।**|**

- प्लाज्मा (Plasma)
- रक्त कणिकाएँ (Blood Corpuscles)

इनके विषय में विस्तारपूर्वक विवरण निम्नानुसार है-

4.4.1 प्लाज्मा (Plasma) यह रक्त तरल अंश है। इसे 'रक्त-वारि' भी कहते हैं। यह हल्के पीले रंग की क्षारीय वस्तु है। इसका आपेक्षिक घनत्व 1.026 से 1.029 तक होता है।

100 सी.सी. प्लाज्मा में निम्नलिखित वस्तुएँ अपने नाम के आगे लिखे प्रतिशत में पायी जाती हैं-

(1) पानी	90%
(2) प्रोटीन	7%
(3) फाइब्रीनोजिन	4%

(4) एल्फा ग्लोब्युलिन	0.46%
(5) बीटा ग्लोब्युलिन	0.86%
(6) गामा ग्लोब्युलिन	0.75%
(7) एलब्युमिन	4.00%
(8) रस	1.4%
(9) लवण	0.6%

इसके प्रोटीन तीन प्रकार के होते हैं-(1)एलब्युमिन, (2) ग्लोब्युलिप्स तथा (3)फाइब्रीनोजिन।

'प्लाज्मा' रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर-उधर ले जाने का कार्य करता है तथा उन्हें नष्ट होने से बचाता है। यह रक्त को हानिकर प्रतिक्रियाओं से बचाता है, विशेष कर इसके 'एल्फा ग्लोब्युलिन' सहायक वस्तुओं को उत्पन्न करके रक्त को बाह्य-जीवाणुओं से बचाते हैं। किसी संक्रामक रोग के उत्पन्न होने पर रक्त में इनकी संख्या स्वतः ही बढ़ जाती है। इसका 'फाइब्रोनोजिन' रक्तस्राव के समय रक्त को जमाने का कार्य करता है, जिसके कारण उसका बहना रूक जाता है। प्रदाह तथा रक्तस्राव के समय यह एक स्थान पर एकत्र हो जाता है।

4.4.2 रक्त-कणिकाएँ - ये तीन प्रकार की होती हैं-

(1) लाल रक्त कण

(2) श्वेत

(3) प्लेटलेट्स

इनके विषय में अधिक जानकारी निम्न प्रकार है-

(1) लाल रक्त कण- ये आकार में गोल, मध्य में मोटे तथा चारों किनारों पर पतले होते हैं। इनका व्यास **1/3000** इंच होता है। इनका व्यास-आवरण रंगहीन होता है, परन्तु इनकी भीतर एक प्रकार का तरल द्रव भरा होता है, जिसे **'**हीमोग्लोबिन**'** (Haemoglobin) कहते हैं। हीम (Heam) अर्थात् लोहा तथा 'ग्लोबिन' (Globin) अर्थात् एक प्रकार की प्रोटीन। इन दोनों से मिलकर 'हीमोग्लोबिन' शब्द बना है। ये रक्तकण, जिन्हें रक्त-कोषा (Blood Cell) कहना अधिक उपयुक्त रहेगा, लचीले होते हैं तथा आवश्यकतानुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित करते रहते हैं।

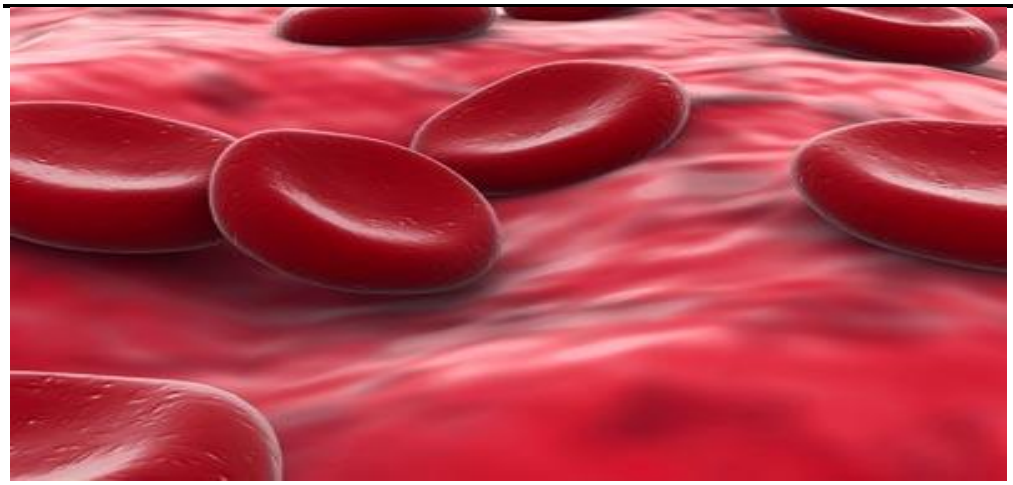

Structure of R.B.C

'हीमोग्लोबिन' की उपस्थिति के कारण ही इन रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है। हीमोग्लोबिन की सहायता से ये रक्त-फेफड़ों से ऑक्सीजन (Oxygen) अर्थात् प्राण वायु प्राप्त करके उसे शुद्ध रक्त के रूप में सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते रहते हैं, जिसके कारण शरीर को कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। ऑक्सीजन युक्त हीमोग्लोबिन को (Oxy Haemoglobin) ऑक्सी हीमोग्लोबन कहा जाता है।

(2) श्वेत रक्त कण- ये रक्त कण प्रोटोप्लाज्म द्वारा निर्मित होते हैं। इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। आवश्यकतानुसार इनके आकार में परिवर्तन भी होता रहता है। इनका कोई रंग नहीं होता अर्थात् ये सफेद रंग के होते हैं। लाल रक्त-कणों की तुलना में, शरीर में इनकी संख्या कम होती है। इनका अनुपात प्रायः **1**:**500** का होता है। एक स्वस्थ मनुष्य के रक्त की **1** बूँद में इनकी संख्या **5000** से **8000** तक पाई जाती है। इनका निर्माण अस्थि मज्जा (Bone Marrow)] लसिका ग्रंथियाँ (Lymph Glands) तथा प्लीहा (Spleen) आदि अंगों में होता है। रक्त के प्रत्येक सहस्रांश मीटर में जहाँ रक्त कणों की संख्या 500000 होती है वहाँ श्वेत कणों की संख्या 6000 ही मिलती है। इनकी लम्बाई लगभग 1/2000 इंच होती है तथा सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता के बिना इन्हें भी नहीं देखा जा सकता। इनका आकार थोड़ी-थोड़ी देर में बदलता रहता है। साथ ही दिन में कई बार इनकी संख्या में घट-बढ़ भी होती रहती है। प्रातः काल सोकर उठने से पूर्व इनकी संख्या 6000 घन मि.मी. होती है।

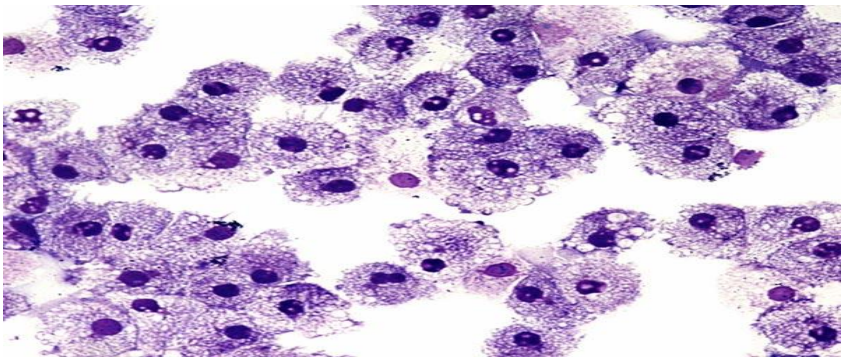

Structure of W.B.C

इन श्वेतकणों का कार्य शरीर की रक्षा करना है। बाहरी वातावरण से शरीर में प्रविष्ट होने वाले विकारों तथा विकारी-जीवाणुओं के आक्रमण के विरूद्ध ये रक्षात्मक ढंग से युद्ध करते हैं और उनके चारों ओर घेरा डालकर, उन्हें नष्ट कर डालते हैं। इसी कारण इन्हें शरीर-रक्षक (Body Guards) भी कहा जाता है। यदि दुर्भाग्यवश कभी इनकी पराजय हो जाती है तो शारीरिक-स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और शरीर बीमारी का शिकार बन जाता है। परन्तु उस स्थिति में भी ये शरीर के भीतर प्रविष्ट होने वाली बीमारी के जीवाणुओं से युद्ध करते ही रहते हैं तथा अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर देते हैं तथा पुनः स्वास्थ्य-लाभ कराते हैं। यदि रक्त में इन श्वेतकणों का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो शरीर की मृत्यु हो जाती है।

काम करते समय, भोजन के पश्चात्, गर्भावस्था में एवं एड्रीनलीन (Adrenaline) के इंजेक्शन के बाद शरीर में इन श्वेताणुओं की संख्या बढ़ जाती है। संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय इनकी संख्या में अत्यधिक वृद्धि होती रहती है। न्यूमोनिया होने पर इनकी संख्या ड्यौढ़ी वृद्धि तक होती हुई पाई गयी है। परन्तु इन्फ्रलुऐंजा में इनकी संख्या कम हो जाती है। रक्त में श्वेतकणों की संख्या में वृद्धि को श्वेतकण बहुलता (Leucocytosis) तथा ह्रास को श्वेतकण अल्पता (Leucopening) कहा जाता है।

संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय ये श्वेतकण विषैले जीवाणुओं से लड़ने के लिए कोशिकाओं की दीवार से भी पार निकलकर बाहर चले जाते हैं, जबकि उस समय लाल रक्तकण नलिकाओं तथा कोशिकाओं में ही बने रहते हैं। इन श्वेतकणों के निम्नलिखित 6 भेद माने जाते हैं-

(1) पालीमार्फ (Polymorph)

(2) लसकायाणु (Lymphocytes)

(3) एक-कायाणु (Monocytes)

(4) उषसि प्रिय (Eosinophil)

(5) उभय प्रिय (Basophil)

(6) परिवर्तनशील (Transitional Leucocytes)

(3) प्लेटलेट्स :- प्लेटलेट्स को (Thrombcytes) थ्रोम्बोसाइट या बिम्बाणु भी कहा जाता है । इनकी उत्पत्ति अस्थि-रक्त मज्जा (Red Bone Marrow) में लोहित कोशिकाओं (MEGAKARYOCYTES) द्वारा होती है। इनका लगभग 2.5 (म्यू) होता है। इनकी संख्या लगभग 250,000 (150,000 से 350000) तक होती है। इनकी लगभग 1/10 संख्या प्रतिदिन बदलती रहती है और रक्त में नवीन आती रहती है1 इनके प्रमुख कार्य है।

(1) रक्त कोशिकाओं के अन्त:स्तर (endothelium) की क्षति की क्षतिपूर्ति।

(2) अवखण्डित होने पर हिस्टेमीन की उत्पत्ति करना।

(3) रक्त वाहिकाओं के अन्त:स्तर में अथवा ऊतकों में क्षति हो जाने पर, यदि रक्तस्राव की सम्भावना हो या स्राव हो रहा हो तो प्लेटलेट्स रक्त स्कन्दन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

4.5 रक्त के कार्य

रक्त के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- आहार- नलिका से भोजन तत्वों को शोषित कर, उन्हें शरीर के सब अंगों में पहुँचाना इस प्रकार उनकी भोजन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करना।
- फेफड़ों की वायु से ऑक्सीजन लेकर, उसे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाना और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।
- शरीर के प्रत्येक भाग से कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया, यूरिक एसिड तथा गन्दा पानी आदि दूषित पदार्थों को अपने साथ लेकर उन अंगों तक पहुँचाना, जो इन दूषित पदार्थों को निकालने का कार्य करते हैं।
- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।
- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों (Horomones) को अपने साथ लेकर शरीर से विभिन्न भागों में पहुँचाना।
- संपूर्ण शरीर के तापमान को सम बनाये रखना।
- बाह्य जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने हेतु श्वेत कणिकाओं को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते रहना।
- रक्त टूटी – फूटी तथा मृत कोशिकाओं को यकृत और प्लीहा में पहुँचाता है, जहॉ वे नष्ट हो जाती है।
- रक्त अपने आयतन एवं विस्कोसिटी में परिवर्तन लाकर ब्लड – प्रेशर पर नियन्त्रण रखता है।
- रक्त जल – संवहन के द्वारा शरीर के ऊतकों को सूखने से बचाता है और उन्हें नम एवं मुलायम रखता है।
- रक्त शरीर के अंगों की कोशिकाओं की मरम्मत करता है तथा कोशिकाओं के नष्ट हो जाने पर उसका नव-निर्माण भी करता है।
- रक्त शरी के विभिन्न भागों से व्यर्थ पदार्थो को उत्सर्जन – अंगों तक ले जाकर उनका निष्कासन करवाता है।

4.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव

शरीर में रक्त संचरण के प्रमुख सहायक अंग निम्नलिखित हैं-

- हृदय (Heart)
- धमनिया (Arteties)
- शिराऐं (Veins)
- कोशिकाऐं तथा लसिकाऐं (Capillaries, Lymphatics)
- फेफड़े (Lungs)
- महाधमनी तथा महाशिरा

इन सबके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नानुसार है-

4.6.1 हृदय - रक्त संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपाती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। हाथ की मुट्ठी बाँधने पर जितनी बड़ी होती है, इसका आकार उतना ही बड़ा होता है। इसका निर्माण धारीदार (Striped) एवं अनैच्छिक मांसपेशी ऊतकों (Involuntary Muscles) द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा बायें हटकर दोनों फेफड़ों के बीच इसकी स्थिति है। यह पांचवी, छठी, सातवी, तथा आठवीं पृष्ठ देशीय-कशेरूका के पीछे रहता है। इसका शिरोभाग बायें क्षेपक कोष्ठ से बनता है। निम्न भाग की अपेक्षा इसका ऊपरी भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। इस पर एक झिल्लीमय आवरण चढ़ा रहता है। जिसे 'हृदयावरण' (Periaerdium) कहते हैं। इस झिल्ली से एक प्रकार का रस निकलता है, जिसके कारण हृत्पिण्ड का उपरी भाग आर्द्र (तरल) बना रहता है।

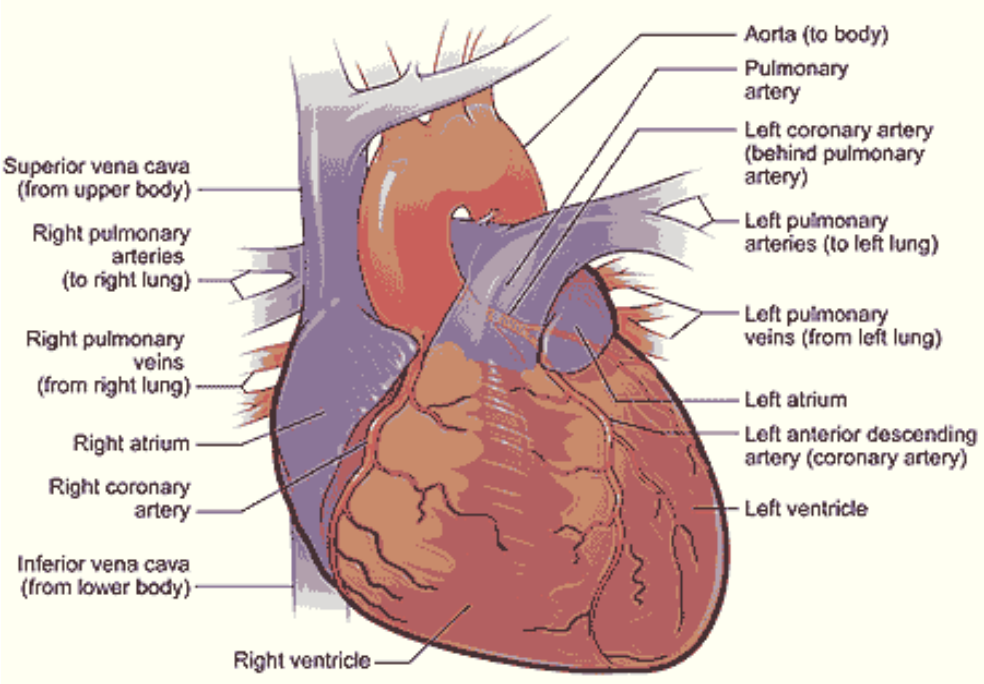

हृत्पिण्ड का भीतरी भाग खोखला रहता है। यह भाग एक सूक्ष्म मांसपेशी की झिल्ली से ढ़का तथा चार भागों में विभक्त रहता है। इस भाग में क्रमशः ऊपर-नीचे तथा दायें-बायें 4 प्रकोष्ठ (Chambers) रहते हैं। ऊपर के दायें-बायें हृदकोषों को 'उर्ध्व हृदकोष्ठ' अथवा 'ग्राहक-कोष्ठ' (Auricle) कहा जाता है तथा नीचे के दायें-बायें दोनों हृदकोष्ठों को 'क्षेपक कोष्ठ' (Ventricle) कहते हैं। इस प्रकार हृत्पिण्ड दोनों ओर दायें तथा बायें ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठों को अलग करने वाली पेशी से बना हुआ है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में रक्त आने के लिए हर ओर एक-एक छेद रहता है तथा इन छेदों में एक-एक कपाट (Valve) रहता है। ये कपाट एक ही ओर इस प्रकार से खुलते हैं कि ग्राहक कोष्ठ से रक्त क्षेपक कोष्ठ में ही आ सकता है, परन्तु उसमें लौटकर जा नहीं सकता, क्योंकि उस समय यह कपाट अपने आप बन्द हो जाता है। दायीं ओर के द्वार में तीन कपाट है। अतः इसे 'त्रिकपाट' कहते हैं। बायीं ओर के द्वार में केवल दो ही कपाट हैं, अतः इसे 'द्विकपाट' कहा जाता है।

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

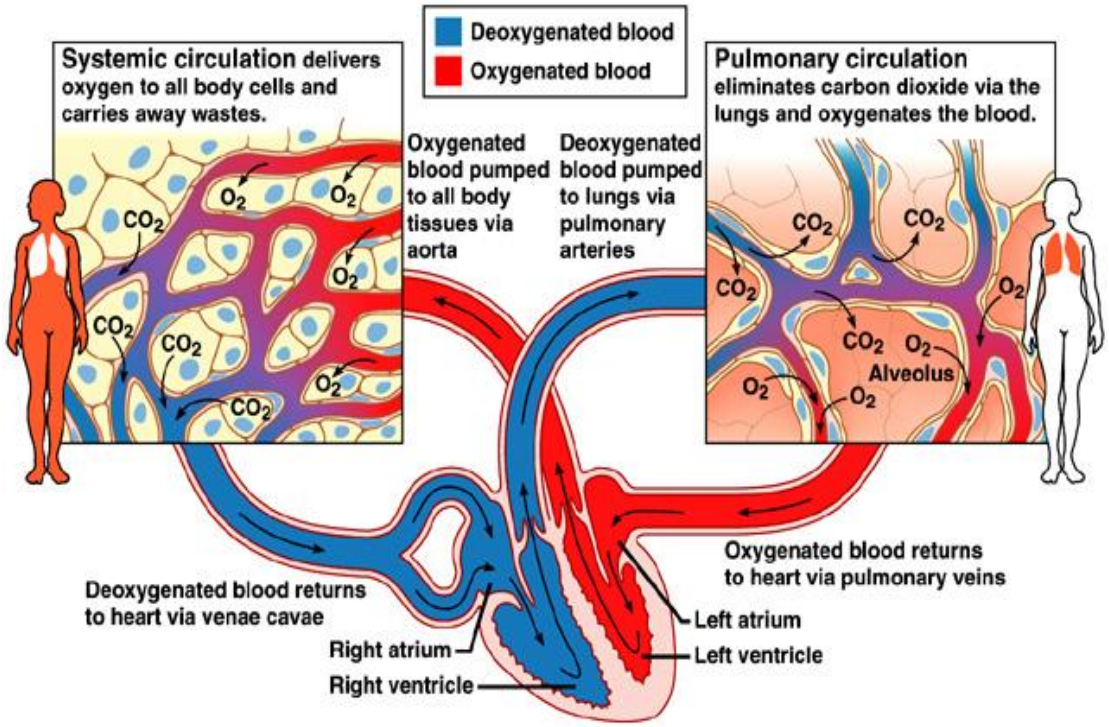

The double pump

इसके ग्राहक कोष्ठों का काम 'रक्त को ग्रहण करना' तथा क्षेपक कोष्ठों का काम 'रक्त को निकालना' है। दायीं ओर हमेशा अशुद्ध रक्त तथा बायीं ओर शुद्ध रक्त भरा रहता है। इन दोनों कोष्ठों का आपस में कोई संबंध नहीं होता।

हृदय को शरीर का 'पम्पिंग स्टेशन' कहा जा सकता है। हृदय की मांसपेशियों द्वारा ही रक्त संचार की शुरूआत होती है। हृदय के संकोच के कारण ही उसके भीतर भरा हुआ रक्त महाधमनी (Aorta) तथा अन्य धमनियों में होकर शरीर के अंग-प्रत्यंग तथा उनकी कोषाओं (Cells) में पहुँचकर, उन्हें पुष्टि प्रदान करता है तथा उनके भीतर स्थित विकारों को अपने साथ लाकर, उत्सर्जन अंगों को सौंप देता है, ताकि वे शरीर से बाहर निकल जायें।

शरीर में रक्त-संचरण धमनी, शिराओं तथा कोशिकाओं द्वारा होता रहता है। ये सभी शुद्ध रक्त को हृदय से ले जाकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती हैं तथा वहाँ से विकार मिश्रित अशुद्ध रक्त को लाकर हृदय को देती रहती हैं। शुद्ध रक्त का रंग चमकदार लाल होता है तथा अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का होता है। हृदय से निकलकर शुद्ध रक्त जिन नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाता है उन्हें क्रमशः धमनी (Artery) तथा केशिकाऐं (Capillaries) कहते हैं तथा अशुद्ध रक्त लौटता हुआ जिन नलिकाओं में होकर हृदय में पहुँचता है, उन्हें 'शिरा' (Veins) कहते हैं।

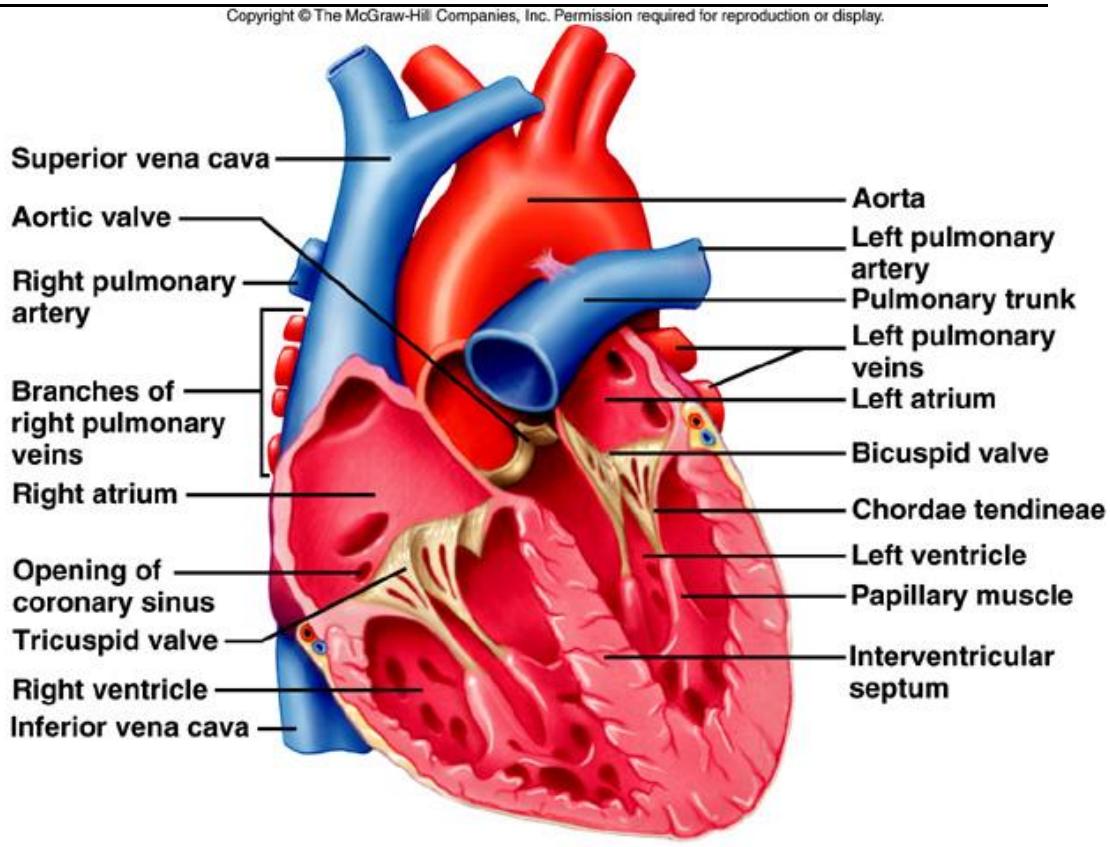

Chambers of the heart; valves

शिराओं द्वारा लाए गए अशुद्ध रक्त को हृदय शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। वहाँ पर अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का अपने विकारों (Carbon-di-Oxide) की फेफड़ों से बाहर जाने वाली हवा (निःश्वास) के साथ मिलकर, मुँह अथवा नाक के मार्ग से बाह्य-वातावरण में भेज देता है तथा श्वास के साथ भीतर आई हुई शुद्ध वायु से मिलकर पुनः हृदय में लौट आता है और वहाँ से फिर सम्पूर्ण शरीर में चक्कर लगाने के लिए भेज दिया जाता है। इस क्रम की निरंतर पुनरावृत्ति होती रहती है इसी को 'रक्त परिभ्रमण क्रिया' (Blood Circulation) कहा जाता है।

4.6.2 धमनियाँ (Arteries) ये रक्त नलिकाऐं लम्बी मांसपेशियों द्वारा निर्मित होती हैं। ये हृदय से आरम्भ होकर कोशिकाओं में समाप्त होती हैं। इनका संचालन अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा होता है। ये आवश्यकतानुसार फैलती तथा सिकुड़ती रहती हैं। इनके संकुचन से रक्त-परिभ्रमण में सरलता आती है। 'पल्मोनरी धमनी' तथा 'रक्त धमनी' के अतिरिक्त शेष सभी धमनियाँ 'शुद्ध रक्त' का वहन करती हैं। इनकी दीवारें मोटी तथा लचीली होती हैं। छोटी धमनियों को 'धमनिका' कहते हैं।

4.6.3 शिराऐं (Veins) ये नलिकाऐं पतली होती हैं। इनकी दीवारें पतली तथा कमजोर होती हैं, जो झिल्ली की बनी होती हैं। इनकी दीवारों में स्थान-स्थान पर प्यालियों जैसे चन्द्र कपाट बने रहते हैं। इनकी सहायता से रक्त उछलकर नीचे से

ऊपर की ओर जाता है। इन पर मांस का आवरण नहीं रहता। अतः ये कट भी जाती हैं। जब ये ऊतकों में पहुँचती हैं, तब बहुत महीन हो जाती हैं तथा इनकी दीवारें भी पतली पड़ जाती हैं। 'फुफ्फुसी शिरा' एवं 'वृक्क शिरा' के अतिरिक्त अन्य सभी धमनियों में अशुद्ध रक्त बहता है। ये सब अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचाने का कार्य करती हैं।

4.6.4 केशिकाऐं तथा लसिकाऐं (Capillaries, Lymphaties) अत्यन्त महीन शिराओं को, जो एक कोशिका (Cells) वाली दीवार में भी प्रविष्ट हो जाये, कोशिका कहा जाता है। इन्हें धमनियों की क्षुद्र शाखाऐं भी कहा जा सकता है। ये शरीर के प्रत्येक कोष (Cells) में शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं तथा वहाँ से अशुद्ध रक्त को एकत्र कर शिराओं के द्वारा हृदय में पहुँचा देती हैं।

जब रक्त कोशिकाओं में बहता है, तो उनकी पतली दीवारों से उसका कुछ लाल भाग होता है। इस तरल पदार्थ को ही 'लसिका' कहते हैं। इसमें शक्कर, प्रोटीन, लवण आदि पदार्थ पाये जाते हैं। शरीर की कोशाए (Cells) 'लसिका' में भीगी रहती हैं तथा इन्हीं लसिकाओं द्वारा कोशिकाओं (Cells) का पोषण भी होता है।

4.6.5 फेफड़े – फेफड़े परिसंचरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। फुफ्फुसो में रक्त शुद्ध होता है –

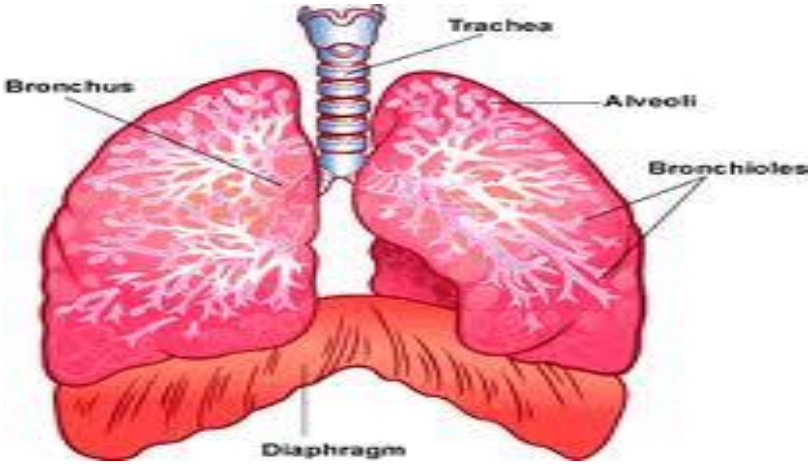

फुफ्फुसो को रक्त पहुॅचाने का कार्य फुफ्फुसीय परिसंचरण के द्वारा सम्पन्न होता है। वाहिकाऍं अशुद्ध रक्त को हृदय से फुफ्फुसो तक ले जाती है वहॉ रक्त शुद्ध होकर उसे पुन: हृदय में ले जाती है यहॉ से आक्सीजन युक्त रक्त शेष शरीर में वितरित होता है। फुफ्फुसीय परिसंचरण में 4 से 8 सेकण्ड का समय लगता है। हृदय के दाऍं निलय से फुफ्फुसीय धमनी के द्वारा फुफ फुफ्फुसीय रक्त परिसंचरण का आरम्भ होता है।

4.6.6 महाधमनी (Aorta) **तथा महाशिरा** (Venacava) **की कार्य प्रणाली -** यह सबसे बड़ी धमनी है। इसके द्वारा शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में फैलता है। इसकी कार्य प्रणाली निम्नानुसार है-

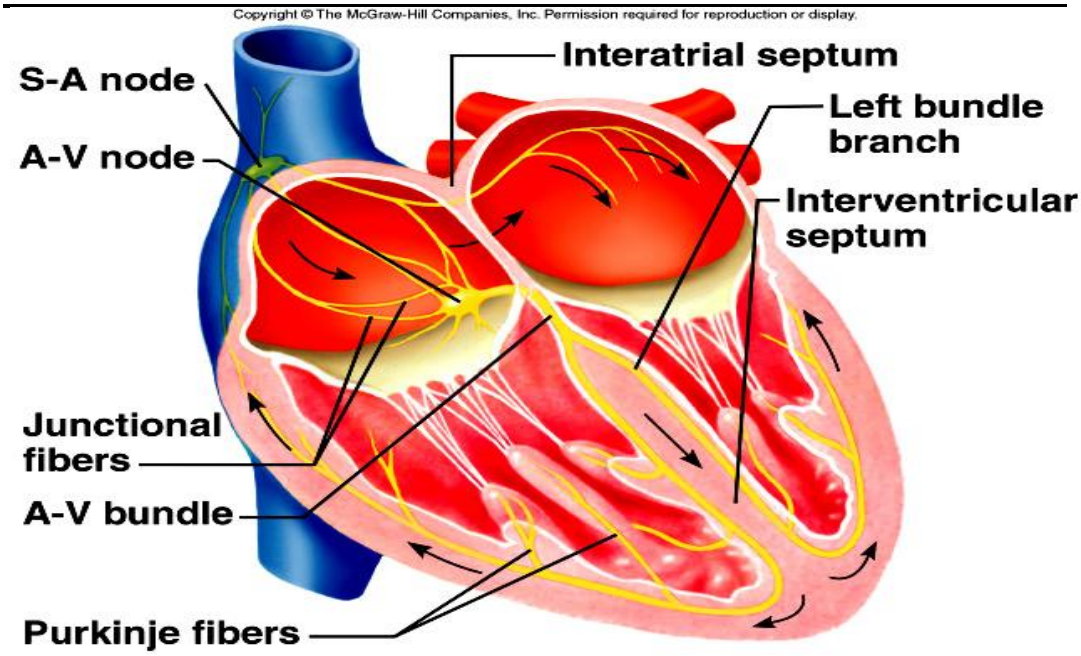

यकृत के भीतर से जाकर हृत्पिण्ड के दायें 'ग्राहक कोष्ठ' में खुलने वाली 'अधोगा महाशिरा' (Inferior Venacava) में शरीर के संपूर्ण निम्न भाग के अंगों का रक्त एकत्र होकर ऊपर को जाता है। शरीर के सभी भागों से अशुद्ध रक्त 'उर्ध्व महाशिरा' (Superior Venacava) में आता है। यह महाशिरा उस रक्त को हृदय के दायें ग्राहक कोष्ठ को दे देती है। रक्त से भरते ही वह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तथा एक दबाव के साथ उसे दायें क्षेपक कोष्ठ में फेंक देता है। दायां त्रिकपाट (Tricuspid Valve) इसके बाद ही बन्द हो जाता है और वह रक्त को पीछे नहीं जाने देता अर्थात् दायें क्षेपक कोष्ठ से दायें ग्राहक कोष्ठ में नहीं पहुँच सकता। फिर, ज्यों ही दायां क्षेपक कोष्ठ भरता है, त्यों ही वह रक्त को वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। फेफड़ों में शुद्ध हो जाने पर, शुद्ध रक्त दायें तथा बायें फेफड़े द्वारा वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा दायें ग्राहक कोष्ठ में भेज दिया जाता है। इसके पश्चात् यह रक्त दायें ग्राहक कोष्ठ से दबाव के साथ बायें क्षेपक कोष्ठ में आता है, जिसे यहाँ स्थित एक द्वि-कपाट (Bi-cuspid valve) उसको पीछे नहीं लौटने देता। फिर, जब वह दायां क्षेपक कोष्ठ भरकर सिकुड़ने लगता है, तब शुद्ध रक्त महाधमनी (Aorta) में चला जाता है और वहाँ से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है।

'महाधमनी' से अनेक छोटी-छोटी धमनियाँ तथा महाशिरा से अनेक छोटी-छोटी शिराऐं निकली होती हैं, जो निरंतर क्रमशः रक्त को ले जाने तथा लाने का कार्य करती हैं।

रक्त का संचरण दो घेरों में होता है- (1) छोटा घेरा तथा (2) बड़ा घेरा। छोटा घेरा, हृदय, पल्मोनरी धमनी, फेफडों तथा पल्मोनरी के सिरे से मिलकर बनता है तथा बड़ा घेरा महाधमनी एवं शरीर भर की कोशिकाओं तथा ऊतकों से मिलकर तैयार हुआ है। ग्राहक कोष्ठों (Atrium) को 'अलिन्द' तथा क्षेपक कोष्ठों (Ventricle) को 'निलय'

कहा जाता है।

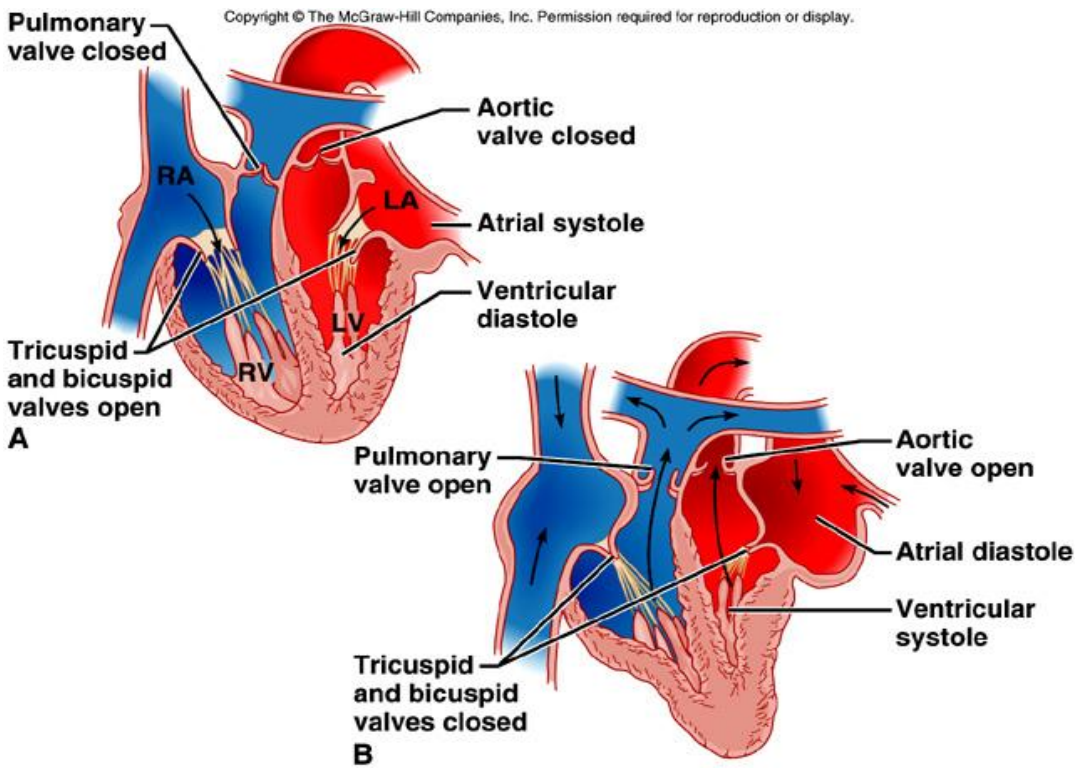

Coordination of chamber contraction, relaxation

जब अशुद्ध रक्त उर्ध्व तथा अधःमहाशिरा द्वारा हृदय के दक्षिण अलिन्द में प्रविष्ट होता है तब वह धीरे-धीरे फैलना आरम्भ कर देता है तथा पूर्ण रूप से भर जाने पर सिकुड़ना शुरू करता है फलस्वरूप अलिन्द के भीतर के दबाव में वृद्धि होकर, महाशिरा का मुख बन्द हो जाता है तथा 'त्रिकपाट' खुलकर, रक्त दक्षिण निलय में प्रविष्ट हो जाता है। दक्षिण निलय भी भर जाने पर जब सिकुड़ना आरम्भ करता है तब द्विकपाट बन्द हो जाता है तथा पल्मोनरी धमनी कपाट (Pulmonary Valve) खुल जाता है। उस समय शुद्ध रक्त के दक्षिण निलय से निकल कर पल्मोनरी धमनी (Pulmonary Artery) द्वारा वाम अलिन्द में गिरता है। इस क्रिया को 'छोटे घेरे में रक्त संचरण' (Circulation of Blood through Pulmonary circuit) नाम दिया गया है।

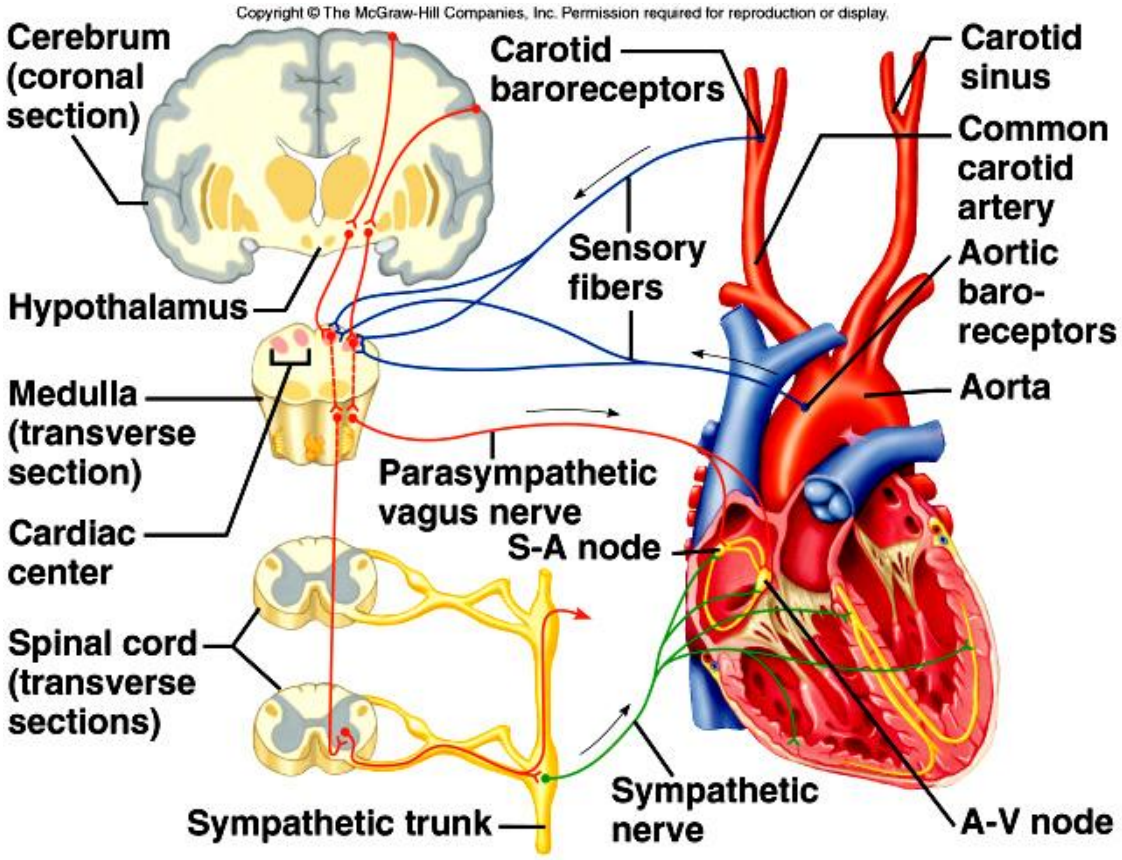

पल्मोनरी धमनी द्वारा वाम अलिन्द में रक्त के भर जाने पर वह सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है और उसके भीतर दबाव बढ़ जाता है, फलस्वरूप द्विकपर्दी कपाट खुलकर रक्त वाम निलय में पहुँच जाता है। वाम निलय के भर जाने पर वह भी सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है, तब द्विकपर्दी कपाट बन्द हो जाता है तथा महाधमनी कपाट खुल जाता है, फलतः वह शुद्ध रक्त महाधमनी में पहुँच कर सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करने के लिए विभिन्न धमनियों तथा कोशिकाओं में जा पहुँचता है। इस प्रकार रक्त संपूर्ण शरीर में घूम कर शिराओं से होता हुआ अन्त में उर्ध्व महाशिरा तथा अधःमहाशिरा से होकर दक्षिण अलिन्द में पहुँच जाता है। रक्त भ्रमण की इस क्रिया को 'बड़े घेरे का रक्त-संचरण' (Circulation of Blood through Larger Circuit) कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग.....है।

(ख) .....रक्त कणिकाओं को शरीर रक्षक भी कहा जाता है।

(ग) रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर-उधर ले जाने का कार्य.....द्वारा सम्पन्न होता है।

(घ) .....की उपस्थिति के कारण ही रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है।

(ड.) रक्तस्राव होने पर रक्त को जमाने का कार्य.....प्रोटीन करता है।

(च) सबसे बड़ी धमनी.....तथा सबसे बड़ी शिरा.....है।

2. सत्य/असत्य बताइये

(क) पल्मोनरी धमनी तथा रक्त धमनी के अतिरिक्त शेष सभी धमनियॉं 'शुद्ध रक्त' का वहन करती है।

(ख) शिराओं की दीवारें मोटी एवं लचीली होती हैं।

(ग) रक्त में श्वेतकणों की संख्या में वृद्धि को ल्यूकोपीनींग तथा ह्रास को ल्यूकोसाइटोसिस कहते हैं।

(घ) रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.055 होता है।

4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ चुके होंगे। कि रक्त विश्लेषण में मिश्रित प्लाज्मा और रक्त कणिकाएँ शरीर को स्वस्थ रखने में तथा शरीर की संक्रामक रोगों से रक्षा करने में अहम भूमिका निभाते है। लाल रक्त कण हीमोग्लोबिन की सहायता से फेफड़ों से सहायता फेफड़ों से ऑक्सीजन प्राप्त कर शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते हैं। श्वेत रक्त कण संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय विषैले जीवाणुओं से लड़ने में सहायता करते हैं। प्लेटलेट्स शरीर में किसी भी स्थान पर कटने या चोट लगने की स्थिति में उस जगह एकत्रित हो कर अतिरिक्त रक्त बहने से रोकने में सहायता करते हैं। हृदय रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग है। हृदय के संकुचन से उसके भीतर का रक्त महाधमनी तथा अन्य धमनियों से होता हुआ शरीर के विभिन्न अंगों में वितरित होता है तथा अंग विशेष की कोशिकाओं को पुष्टि प्रदान करता है। इसके साथ ही विकारों को कोशिकाओं से लाकर उत्सर्जन तंत्र को सौंप देता है। इस प्रकार शरीर को विकार रहित रखने में हृदय हमारी सम्पूर्ण सहायता करता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रक्त परिसंचरण के विषय में सहज रूप से समझ गये होंगे।

4.8 शब्दावली

प्रोटोप्लाज्म – कोशिका का तरल भाग जिसमें कोशिनांग तैरते हैं। यही कोशिका जीव द्रव्य कहलाता है।

अनैच्छिक ऊतक – अपनी इच्छा से जिन ऊतकों का नियन्त्रण नहीं होता, व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा इन ऊतकों को नियन्त्रित किया जाता है।

धमनी – शुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस

शिरा – अशुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस

हीम – लौह युक्त पदार्थ

ग्लोबीन – एक प्रोटीन

रक्तस्राव – रक्त का निकलना

बहुलता – अधिकता, ज्यादा

दूषित – खराब, गन्दा, दोष युक्त

ब्लड प्रेशर – रक्त चाप, रक्त का दबाब

कपाट – दरवाजे, किवाड़

पल्मोनरी धमनी – एक ऐसी धमनी जिसमें अशुद्ध रक्त बहता है

पल्मोनरी शिरा – एक ऐसी जिसमें शुद्ध रक्त बहता है।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) हृदय

(ख) श्वेत

(ग) प्लाज्मा

(घ) हीमोग्लोबिन

(ड.) फाइब्रोनोजिन

(च) एओटा, बेनाकावा (Alota venacava)

2. सत्य/असत्य बताइये

(क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) असत्य

(घ) सत्य

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. परिवहन तंत्र का परिचय देते हुए रक्त विश्लेषण कीजिए।

2. रक्त संचरण के प्रमुख अवयवों की व्याख्या करते हुए रक्त के कार्य बताइये।

3. हृदय की रचना व कार्यो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

इकाई 5 – पाचन तन्त्र की रचना व कार्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 पाचन तंत्र : एक परिचय

5.4 पाचन तंत्र की रचना

5.5 पाचक अंगों की कार्य विधि

5.6 पाचन संस्थान के मुख्य अंग

5.6.1 मुख

5.6.2 आहार नलिका

5.6.3 आमाशय

5.6.4 पक्वाशय

5.6.5 छोटी आंत

5.6.6 बड़ी आंत

5.6.7 यकृत

5.6.8 पित्ताशय

5.6.9 अग्नयाशय

5.7 पाचन क्रिया

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने रक्त परिसंचरण तंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त की। रक्त परिसंचरण की क्रिया को विस्तार से समझा व उसकी कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवचना की। रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र किस प्रकार अपने प्रमुख अवयवों द्वारा रक्त संचरण की क्रिया को निर्देशित करता है।

प्रस्तुत इकाई में आप पाचन तंत्र जो कि शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है के बारे में पढ़ेंगे। आप पाचन क्रिया का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे। आप जानेंगे कि पाचन तंत्र की कार्य प्रणाली क्या है व शरीर को स्वस्थ रखने में तथा किसी भी कार्य को करने में जिस ऊर्जा की हमें आवश्यकता होती है वह पाचन तंत्र द्वारा किस प्रकार सम्पादित होती है।

इसके अतिरिक्त आप पाचन तंत्र के विभन्न अवयवों जैसे मुख, अन्न प्रणाली, पाकस्थली, पक्वाशय, औते इत्यादि की कार्य प्रणाली व संरचना को समझेंगे। आप इस इकाई का अध्ययन करने के बाद पाचन तंत्र की क्रियाविधि व रचना को सहज रूप से समझ जायेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पाचन तंत्र के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पाचन तंत्र की रचना व क्रिया की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पाचक अंगों की कार्य विधि को भली-भॉति समझ सकेंगे।
- पाचन संस्थान के मुख्य अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- मुख की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- अन्न प्रणाली की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पाकस्थली की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पक्वाशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- छोटी आंत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन सकेंगे।
- बड़ी आंत की संरचना एवं कार्य प्रणाली को जान अर्जित कर सकेंगे।
- यकृत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।
- पित्ताशय की संरचना एवं इसकी कार्य प्रणाली को जान सकेंगे।
- अग्न्याशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पाचन क्रिया की कार्य प्रणाली का विश्लेषण करेंगे।

5.3 पाचन तंत्र – एक परिचय

जो भी भोजन हम ग्रहण करते हैं वह वास्तव में भी तभी हमारे लिये उपयोगी होता है जब वह इस लायक हो जाये कि शरीर के अन्तर्गत रक्त कोशिकाओं एवं अन्य कोशिकाओं तक पहुँच कर शक्ति व ऊर्जा उत्पन्न कर सके। यह कार्य

पाचन प्रणाली के विभिन्न अंग मिलकर करते हैं। पाचन का कार्य पेशियों की गतियों, रासायनिक स्रावों के माध्यम से होता है। पाचन वह रासायनिक व यान्त्रिक क्रिया है, जिसमें ग्रहण किया गया भोजन अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर विभिन्न एन्जाइम्ज व पाचन रसों की क्रिया के फलस्वरूप परिवर्तित होकर, रक्त कणों द्वारा अवशोषित होने योग्य होकर कोशिकाओं के उपयोग में आता है। पाचन की यह सम्पूर्ण क्रिया पाचन अंगों के द्वारा सम्पन्न होती है।

हम भोजन को जिस रूप में लेते हैं वह उसी रूप में शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्रहण नहीं होता है वरन् भोजन में सम्मिलित तत्व जब अपने सरल रूप में आते हैं तभी वह ग्रहण हो पाता है। नीचे एक सारणी दी जा रही है जो कि भोजन के रूप में ग्रहण की गई वस्तुओं की है एवं वह जिस रूप में ग्रहण होती है इसका विवेचन इस प्रकार है।

कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) - ग्लूकोज, फ्रक्टोज, गैलेक्टोज आदि सरल शर्करा में।

प्रोटीन (Proteins) - अमीनो अम्ल में।

वसा (Fat) – वसीय अम्ल में तथा ग्लिसरॉल में।

जल, खनिज लवण विटामिन एवं प्रोटीन जिस रूप में लिये जाते हैं उसी रूप में अवशोषित हो जाते हैं।

5.4 पाचन तन्त्र की रचना

पाचन-संस्थान के निम्नलिखित शारीरिक अवयव पाचन-क्रिया में प्रमुख रूप से भाग लेते हैं-

(a1) मुख (Mouth)

(क) जीभ (Tongue)

(ख) तालुमूल (Tonsils)

(ग) तालु (Palate)

(घ) दाँत (Teeth)

(2) अन्न प्रणाली अथवा गलनली (Oesophagus or Gullet)

(3) पाकस्थली अथवा आमाशय (Stomach or Verticulus)

(4) पक्वाशय (Duodenum)

(5) आँतें (Intestines)

(कa) छोटी आँत (Small Intestine)

(ख) बड़ी आँत (Large Intestine)

(6) यकृत (Liver)

(7) पित्ताशय (Gall Blader)

(8) अग्न्याशय, क्लोम (Pancreas)

5.5 पाचक-अंगों की कार्य-विधि

पाचक अंगों की कार्य विधि का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है-

मुख में पहुँचा हुआ आहार दाँतों तथा जीभ की सहायता से छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में बँटकर, लुगदी जैसा बन जाता है। मुँह में रहने वाला 'टाइलिन' (Ptylin) नामक पाचक तत्व (Enzyme) उस भोजन में मिलकर कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायता करता है। इसी तत्व को अन्य भाषा में 'लार' भी कहा जाता है। भोजन ग्रासनली द्वारा अन्ननली में होता हुआ आमाशय में पहुँचता है। वहाँ भोजन में प्रोटीन के पाचन के हेतु आमाशयिक रस (Gastric Juice) की क्रिया होती है। इस रस में 'हाइड्रोक्लोरिक अम्ल' (Hydro Chloric Acid) तथा 'पेप्सीन' (Pepsin) नामक पाचक तत्व मिले रहते हैं।

आमाशय में भोजन के प्रत्येक अंग पर आमाशयिक रस की क्रिया लगभग 3-4 घण्टे तक होती है, तत्पश्चात् वह अधपका भोजन लेई के रूप में धीरे-धीरे पक्वाशय में पहुँचता है। वहाँ उसे 'पित्त' (Bile) तथा अग्न्याशयिक रस (Pancreatic Juice) मिलता है, जिससे अन्न के अर्द्धपाचित का पाचन होकर आहार-रस (Chyle) का निर्माण हो जाता है, जो आगे छोटी आँतों में जा पहुँचता है। छोटी आँतों में 'आन्तरिक रस' (Succus Entericus) नामक पाचन तत्व बचे हुए भोजन के अंश को पचाता है। भोजन-पाचन की अन्तिम क्रिया इसी रस के द्वारा सम्पन्न होती है। फिर उस रस का सार भाग प्रतिहारिणी-शिराओं (Portal Veins) के द्वारा यकृत में पहुँचा दिया जाता है तथा व्यर्थ-भाग के जलीय अंश को सोखकर शेष भाग को बँधे हुए मल के रूप में मल-द्वार से शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है।

उक्त प्रक्रिया से भोजन को मुँह में रखने के समय से मल-द्वार के बाहर निकलने तक लगभग 20-22 घंटे का समय लग जाता है। भोजन के पाचन में यकृत नामक अंग पित्त-निर्माण करके सहायता पहुँचाता है तथा अग्न्याशय नामक अंग अग्न्याशयिक रस का निर्माण कर, भोजन के कार्बोहाइड्रेट नामक अंश को पचाने में तथा वसा के इमल्सीकरण में सहायता करता है।

भोजन का शोषण दो प्रकार से होता है- रक्त नलियों द्वारा तथा लसिका नलियों द्वारा होता है। भोजन के अवशोषण के बाद बड़ी औत में भोजन मल के रूप में परिवर्तित होकर बाहर निकल जाता है।

पाचन-संस्थान के विभिन्न अवयवों के सम्बन्ध में अलग-अलग निम्नानुसार समझा जा सकता है –

5.6 पाचन संस्थान के मुख्य अंग

5.6.1 मुख (Mouth) मुँह का भीतरी भाग श्लेष्मिक झिल्लियों द्वारा निर्मित है। ये भी त्वचा जैसी होती है, तथा इनका रंग लाली लिए रहता है। इसमें रसस्रावी ग्रंथियाँ (Secreting glands) होती हैं और इसमें पास आने वाले पदार्थ का शोषण करने की शक्ति भी रहती है। जीभ, तालुमूल, तालु तथा दाँत - ये सब मुख के भीतर ही रहने वाले अवयव हैं।

5.6.2 अन्नप्रणाली गलनी अथवा ग्रासनली (Oesophagus or Gullet) जिस नली के द्वारा भोजन अग्न्याशय में पहुँचता है, उसे अन्न-प्रणाली अथवा अन्न मार्ग (Alimentary canal) कहते हैं।

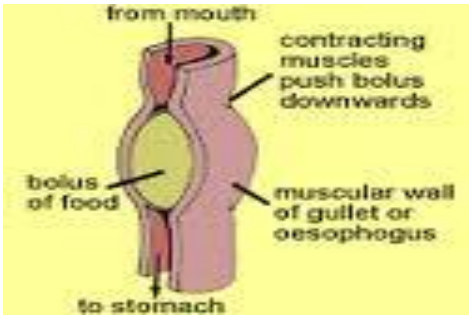

यह नली गले (pharynx) से आरंभ होती है। इसके नीचे ही गलनली अथवा ग्रासनली (Gullet) है, जो लगभग 10-15 इंच तक लंबी होती है तथा भोजन को मुँह से आमाशय तक पहुँचाने का कार्य करती है। इसमें कोई हड्डी नहीं होती। यह मांसपेशियों तथा झिल्लियों से बनी होती है।

5.6.3 पाकस्थली अथवा आमाशय (Stomach) यह नाशपाती के आकार का एक खोखली थैली जैसा अवयव है जो बांई ओर के उदर-गह्वर के ऊपरी भाग में तथा उदर-वक्ष (महाप्राचीरा) के ठीक नीचे की ओर स्थित है। हृत्पिण्ड इसी पर स्थित है। यह गलनली के द्वारा मुँह से संबंधित रहता है।

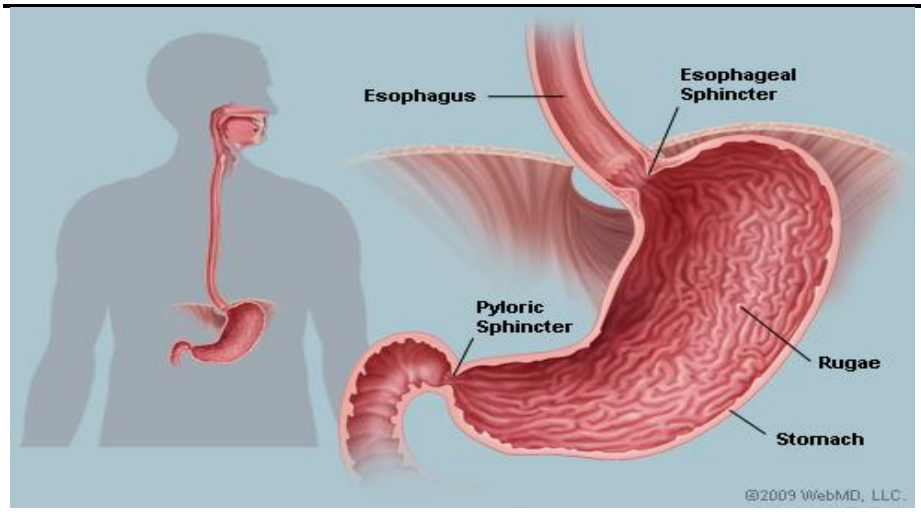

पाकस्थली का भीतरी भाग श्लेष्मिक झिल्ली से भरा रहता है। जब पेट खाली होता है, तब इसकी श्लैष्मिक झिल्ली की तह जैसी बन जाती है। श्लेष्मिक झिल्ली का अधिकांश भाग पाकस्थली के भीतरी भाग को तर बनाये रखने के लिए श्लेष्मिक-स्राव करता है, जिससे कितने ही भागों में रसस्रावी ग्रथियाँ भर जाती हैं। इन ग्रंथियों से 'पेप्सिन' तथा 'हाइड्रोक्लोरिक एसिड' के स्राव होते हैं। इन ग्रंथियों को 'पेप्टिक ग्रथियाँ' कहा जाता है। पानी तथा नमक पर आमाशयिक रस की कोई क्रिया नहीं हो पाती।

पाकस्थली के तीन स्तर होते हैं। इसका बाहरी अथवा ऊपर वाला स्तर 'उदरक' (Perotoneum or Serous Coat) कहा जाता है। इसे पाकस्थली का एक ढक्कन कहना अधिक उपयुक्त रहेगा। यह स्तर एक प्रकार की रस-स्रावी झिल्ली है, जो उदर प्राचीर (Abdominal Wall) के भीतरी ओर रहती है।

पाकस्थली का मध्यस्तर (Middle or Muscular Portion) मांसपेशी द्वारा निर्मित होता है। खाये हुए पदार्थ के मांसपेशी में पहुँचते ही इसकी सब पेशियाँ एक-के-बाद-एक संकुचित होने लगती हैं, जिसके कारण लहरें सी उठकर पाकस्थली को एक छोर से दूसरी छोर तक हिलाती हैं। इस क्रिया के कारण खाया हुआ पदार्थ चूर-चूर होकर लेई जैसा रूप ग्रहण कर लेता है।

पाकस्थली का अन्तिम तीसरा स्तर (Mucous Coat) मधुमक्खी के छत्ते जैसा होता है। इसमें श्लेष्मिक झिल्ली के बहुत से छोटे-छोटे छिद्र रहते हैं। इस झिल्ली की ग्रंथियों में उत्तेजना होते रस स्राव होने लगता है। ये ग्रंथियाँ दानेदार सी होती हैं। इन्हें 'लसिका ग्रंथियाँ' कहा जाता है।

आमाशय 24 घंटे में लगभग 5-6 लीटर रस निकालता है। इसमें भोजन प्रायः 4 घंटे तक रहता है तथा इसके लगभग 1.5 किलोग्राम भोजन समा सकता है। परन्तु कई लोगों में इसकी क्षमता बहुत अधिक पाई जाती है।

5.6.4 पक्वाशय **(Duodenum)** आमाशय के पाइलोरिक छोर से आरंभ होने वाले अंत के भाग को 'पक्वाशय' कहते हैं। यह अर्द्ध-गोलार्द्ध में मुड़ कर अग्न्याशय ग्रंथि के गोल सिर को तीन दिशाओं में लपेटे रहता है। यह

लगभग 19 इंच लम्बा तथा आकार में घोड़े की नाल अथवा अंग्रेजी के 'सी' (C) अक्षर जैसा होता है। यह आमाशय के 'पाइलोरिक' से आरंभ होता है। इसका पहला भाग ऊपर दाईं ओर पित्ताशय के कण्ठ तक जाता है तथा वहाँ से दूसरा भाग नीचे की ओर बढ़ता है।

पक्वाशय के भीतर 'पित्त वाहिनी' तथा अग्न्याशय नली के मुँह एक ही स्थान पर खुलते हैं जिनसे निकले स्राव एक ही छिद्र द्वारा पक्वाशय में गिरते हैं। पक्वाशय का ऊपरी भाग पैरीटोनियम से ढँका रहता है तथा अन्तिम भाग जेजूनम (Jajunum) से मिला रहता है। पक्वाशय में आमाशय से जो आहार रस आता है, उसके ऊपर पित्त रस (Bill Juice) तथा क्लोम रस (Pancreatic Juice) की क्रिया होती है। क्लोम रस पानी जैसा पतला, स्वच्छ, रंगहीन, स्वादरहित तथा क्षारीय-प्रतिक्रिया वाला होता है। इसका आपेक्षिक गुरूत्व लगभग 1.007 होता है। इसमें चार विशेष पाचक तत्व – (1) ट्रिप्सीन (Trypsin)] (2) एमिलौप्सीन (Amylopsin)] (3) स्टीप्सीन (Steapsin) तथा (4) दुग्ध परिवर्तक पाये जाते हैं। ये आहार रस पर अपनी क्रिया करके प्रोटीनों को पेप्टोन्स में श्वेतसार को वसा को ग्लीसरीन तथा अम्ल एवं दूध को दही में परिवर्तित कर देते हैं।

5.6.5 छोटी आँत (Small Intestine) पक्वाशय के बाद छोटी आँत शुरू हो जाती है। ये एक प्रकार की टेढ़ी-मेढ़ी नलियाँ हैं जो कितनी ही बार घूमी हुई स्थिति में उदर-गह्वर की बहुत सी जगह को घेरे रहती हैं। छोटी आँत की लंबाई लगभग 20-22 फुट होती है। इसका व्यास लगभग 1.5 इंच होता है। इसका पहला 10 इंच वाला व लम्बा भाग 'पक्वाशय' कहलाता है तथा इसका निचला सिरा बड़ी आँत से मिला रहता है।

पाकस्थली से गया हुआ वसा युक्त पदार्थ का अनपचा अंश इसी छोटी आँत में पहुँचता है। इस आँत के चार स्तर होते हैं। पाचन के समय इस आँत में एक नली की राह से पित्त-कोष का पित्त रस (Bile) तथा दूसरी नली द्वारा क्लोम ग्रंथि का क्लोम रस आकर मिल जाता है। इस आँत से भी एक प्रकार का रस निकलता है जिसे 'अम्ल रस' कहते हैं। पाकस्थली से आये हुए अपच अंश को इन तीनों रसों द्वारा पीसा जाता है, जिसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थ का सार भाग पचकर रक्त के रूप में बदल जाता है तथा ठोस भाग कुण्डली जैसी आँत में घूमता हुआ मल के रूप में नीचे भेज दिया जाता है।

पक्वाशय के बाद छोटी आँत के दो भाग होते हैं, जिन्हें क्रमशः जेजूनम (Jejunum) तथा इलियम (Illium) कहा जाता है। छोटी आँत पक्वाशय के अंतिम भाग से आरंभ होकर टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई, नीचे दायीं ओर के बड़ी आँत के प्रारंभिक भाग पर समाप्त होती है। इसी जगह 'आन्त्र पुच्छ' (Vermiform Appendix) नामक एक लंबी थैली जुड़ी रहती है, जो अलग-अलग मनुष्यों के शरीर में स्थान बदलकर लटकी रहती है।

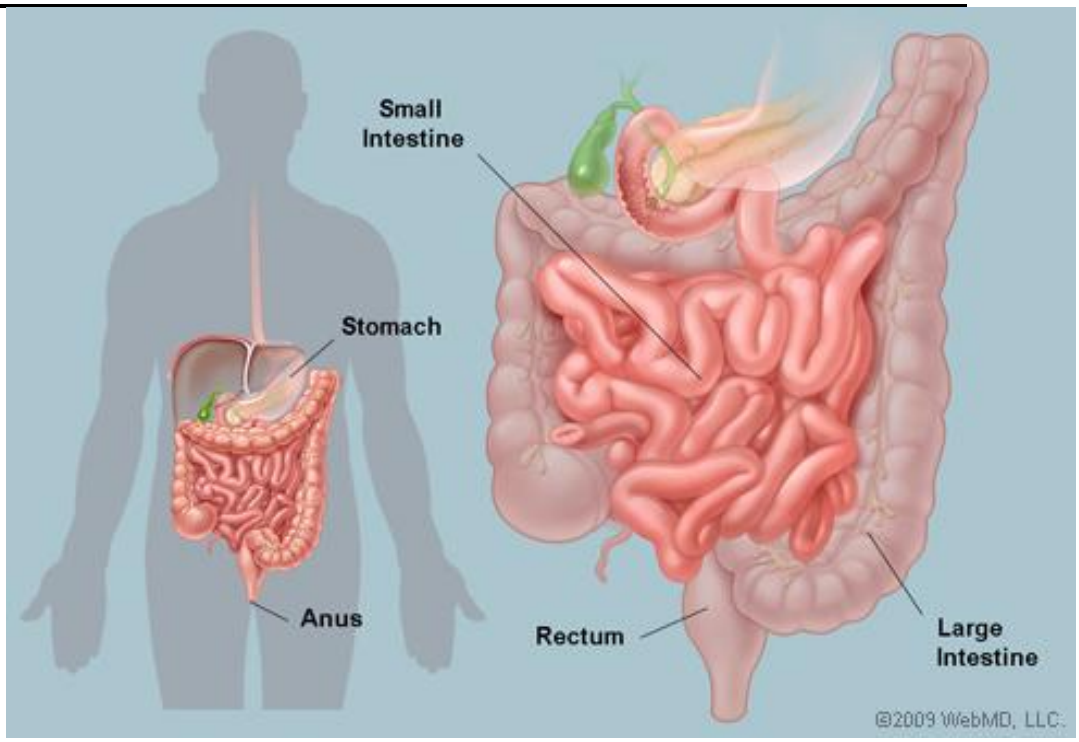

5.6.6 बड़ी आँत (Large Intestine) छोटी आँत जहाँ समाप्त होती है, वहाँ से बड़ी आँत आरंभ होती है। यह उदर के दायें निम्न भाग में, जिसे 'कोख' (Illiac region) कहा जाता है और जिससे अन्न-पुट (Intestinal Caccum) मिली होती है, से निकलती है। यह छोटी आँत से अधिक चौड़ी तथा लगभग 5-6 फुट लंबी होती है। इसका अंतिम डेढ़ अथवा 2 इंच का भाग ही 'मलद्वार' अथवा 'गुदा' कहा जाता है। गुदा के ऊपर वाले 4 इंच लम्बे भाग को 'मलाशय' कहते हैं। यह बड़ी आँत, छोटी आँत के चारों ओर घेरा डाले पड़ी रहती है।

छोटी आँत की तरह ही बड़ी आँत में भी 'कृमिवत्' आकुंचन होता रहता है। इस गति के कारण छोटी आँत से आए हुए 'आहार-रस' (Chyme) के जल भाग का शोषण होता रहता है। छोटी आँत से बचा हुआ आहार रस जब बड़ी आँत में आता है, तब उसमें 95 प्रतिशत जल रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ भाग प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा का भी होता है। बड़ी आँत में इन सबका ऑक्सीकरण होता है तथा जल के बहुत बड़े भाग को सोख लिया जाता है। अनुमानतः 24 घण्टे में बड़ी आँत में 400 c.c. पानी का शोषण होता है। यहाँ से भोजन रस का जलीय भाग रक्त में चला जाता है तथा गाढ़ा भाग मलवे के रूप में 'मलाशय' में होता हुआ 'मलद्वार' से बाहर निकल जाता है।

बड़ी आँत में सड़ाव उत्पन्न करने वाले अनेक कीटाणु होते हैं, जो इण्डोल तथा स्कैटोल नामक अनेक प्रकार के हानिकारक पदार्थ उत्पन्न करके मल में दुर्गन्ध पैदा कर देते हैं।

5.6.7 यकृत (Liver) यह मनुष्य शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि (Gland) है। यह उदर में दायीं ओर वक्षोदरमध्यस्थ-पेशी (Diaphragm) के नीचे स्थित है। इसके निम्न भाग में पित्ताशय रहता है।

यकृत की लम्बाई लगभग 9 इंच, चौड़ाई 10-12 इंच तथा भार लगभग 50 औंस होता है। इसका भार मानव शरीर के संपूर्ण भाग का 1.40 प्रतिशत होता है। इसका आपेक्षिक गुरूत्व 1.005 से 1.006 होता है। इसका रंग कत्थई होता है। यह ऊपर से छूने में मुलायम तथा भीतर से ठोस होता है। यह 24 घण्टे में लगभग 550 ग्राम पित्त (Bile) तैयार करता है। इसका स्वरूप त्रिभुजाकार होता है।

5.6.8 पित्ताशय (Gall Bladder) पित्ताशय अथवा पित्ताकोश का आकार एक नाशपाती के समान खोखली थैली जैसा होता है। यह थैली यकृत की सतह के भीतर रहती है तथा इसका अन्तिम बड़ा शिरा कुछ-कुछ दिखाई देता है। इसके भीतरी भाग से पित्ताशयिक नली (Cystic Duct) बनती है, जो मध्यभाग तथा पीछे की ओर से होती हुई यकृत-नली में जा मिल जाती है। इस प्रकार पित्त-प्रणाली (Bile Duct) का निर्माण होता है।

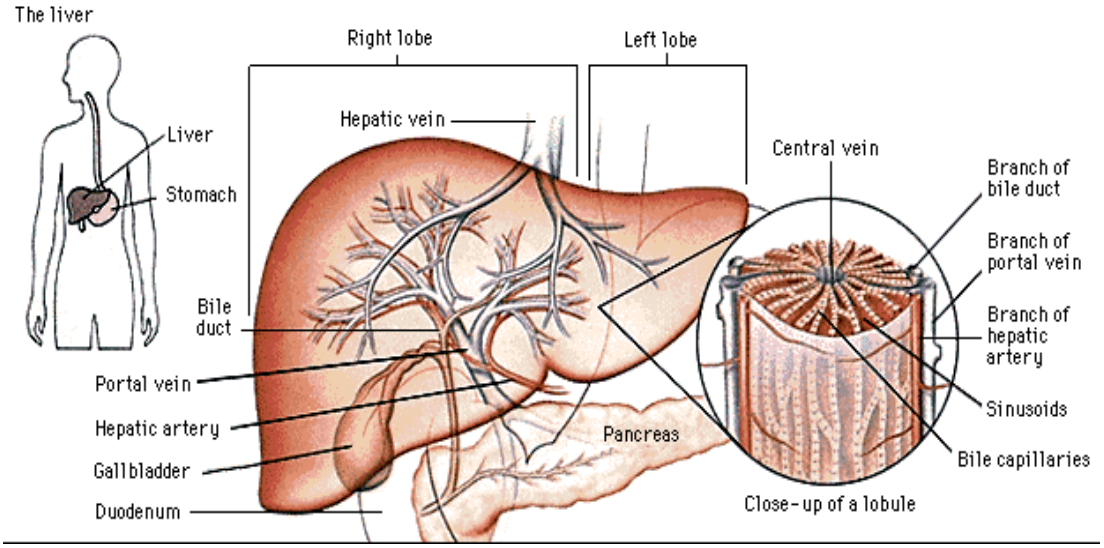

5.6.9 अग्न्याशय अथवा क्लोम (Pancreas) यह भी एक बड़ी ग्रंथि है, परंतु आकार में यकृत से छोटी होती है। यह प्लीहा के पास रहती है। इसके शिर, ग्रीवा, धड़ और पूँछ-ये चार भाग होते हैं। इसमें 'क्लोम रस' (Pancreatic Juice) रहता है, जो क्लोम ग्रंथि से निकल कर आँतों में जाता है। क्लोम रस एक प्रकार का क्षारीय द्रव होता है। क्लोम रस में तीन प्रकार के पाचक पदार्थ पाये जाते हैं-(1) प्रोटीन विश्लेषक, (2) कार्बोहाइड्रेड विश्लेषक तथा (3) वसा विश्लेषक। 'प्रोटीन विश्लेषक' की सहायता से प्रोटीन का विश्लेषण होता है। श्वेतसार विश्लेषक की सहायता से श्वेतसार से शर्करा का निर्माण होता है तथा वसा विश्लेषक की सहायता से वसा (चर्बी) से ग्लिसरीन-अम्ल तैयार होता है।

पित्त से मिलकर क्लोम रस की क्रिया अत्यन्त प्रबल हो जाती है। चर्बी वाले पदार्थों को पचाने के लिए इसकी बहुत आवश्यकता होती है। आँतों में पित्त के रहने से सड़ने की क्रिया कम होती है तथा न रहने पर अधिक होती है।

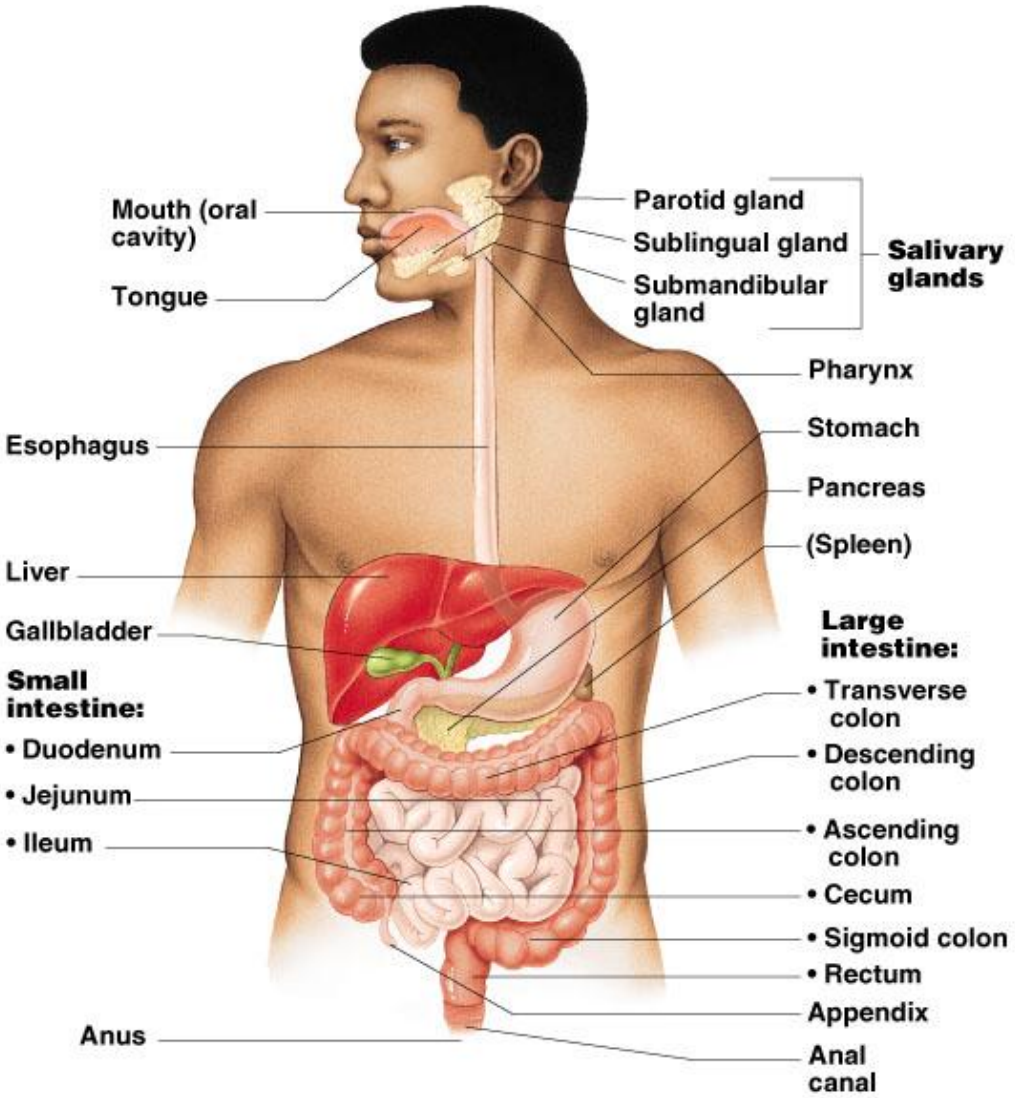

5.7 पाचन क्रिया

पाठकों ध्यान रहे - नवजात शिशु का पाचन-संस्थान भली-भाँति विकसित नहीं होता और उसमें पाचक-रस भी नहीं बनता है, इसी कारण वह माँ के दूध के अतिरिक्त और कुछ नहीं पचा पाता, परन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होने लगता है, त्यों-त्यों उसकी पाचन शक्ति भी बढ़ती चली जाती है। **50** वर्ष की आयु तक पाचन-शक्ति बढ़ती रहती है, तत्पश्चात् वह घटने लगती है। पाचन शक्ति के कमजोर हो जाने पर मनुष्य को ऐसा आहार लेने की आवश्यकता पड़ती है जो आसानी से पच जाये। वृद्धावस्था में सादा तथा हल्का भोजन लेना ठीक रहता है। भारी भोजन लेने से खून का दबाव बढ़ जाया करता है।

हम जो कुछ भी खाते हैं, वह सर्वप्रथम मुँह में पहुँचता है। वहाँ दांतों द्वारा उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में कर दिया जाता है। मुँह की ग्रंथियों से निकलने वाला 'लार' नामक एक स्राव उस कुचले हुए भोजन को चिकना बना देता है, ताकि वह

गले द्वारा आमाशय में आसानी से फिसल कर पहुँच सके। इस लार में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ भी होते हैं जो भोजन को पचाने में सहायता करते हैं। इनमें से एक **'**म्यूसिन**'** है, जो साग अथवा छिलकों पर अपनी क्रिया प्रकट करता है। दूसरा **'**टाइलिन**'** है जिसकी क्रिया कार्बोहाइड्रेट्स पर होती है। जब आहार आमाशय में पहुँचने को होता है, उस समय आमाशय की ग्रंथियों से एक गैस्ट्रिक स्राव (Gastric Juice) निकलता है, जो एक तेजाब की तरह होता है। यह आहार द्वारा आमाशय में पहुँचे हुए जीवाणुओं को नष्ट करता तथा पाचन-क्रिया में सहायता पहुँचाता है। यह आहार को गला कर लेई के रूप (Chyme) में बदल देता है, जिसके कारण वह सुपाच्य हो जाता है। आमाशय का 'पेप्सीन' नामक एन्जाइम अर्थात् पाचक रस प्रोटीन पर मुख्य क्रिया करता है और उसे एक किस्म के रासायनिक योग पेप्टोन (Peptone) में बदल देता है। आमाशय में पहुँचा हुआ आहार एकदम लेई की भांति घुट जाता है। वहाँ से वह पक्वाशय में पहुँचाता है। यकृत से उत्पन्न होने वाला पित्त रस पक्वाशय में पहुँचकर इस आहार में जा मिलता है साथ ही से अग्न्याशय का रस भी जा मिलता है। इन रसों के संयोग से भोजन घुलनशील वस्तु के रूप में परिणत हो जाता है। आहार के पचने का अधिकांश कार्य आमाशय तथा पक्वाशय में ही होता है। तत्पश्चात् वह छोटी आँत में होता हुआ बड़ी आँत में जा पहुँचता है। आँतों की मांसपेशियाँ क्रमशः फैलती तथा सिकुड़ती हुई भोजन को आगे की ओर बढ़ाती रहती हैं। इस क्रिया को 'पेरीस्टालटिक गति' (Peristaltic Movement) कहते हैं। बड़ी आँतों में जल के भाग का शोषण हो जाने के बाद भोजन का सार भाग द्रव के रूप में रक्त में मिल जाता है तथा ठोस भाग मल के रूप में गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है।

भोजन के सार भाग का शोषण दो प्रकार से होता है- (1) रक्त नलिकाओं द्वारा तथा (2) लसिका नलिकाओं द्वारा। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा 40 प्रतिशत चर्बी का शोषण रक्त नलिकाओं द्वारा होता है तथा शेष चर्बी लसिका नलिकाओं द्वारा शोषित कर ली जाती हैं।

प्रोटीन का शोषण मांसपेशियों द्वारा होता है। ये अपनी आवश्यकतानुसार प्रोटीन ग्रहण कर शेष को छोड़ देती है, तब वह शेष प्रोटीन रीनल धमनी द्वारा वृक्क में पहुँचता है और मूत्र के रूप में परिणत होकर मूत्र-नली द्वारा बाहर निकल जाता है।

कार्बोहाइड्रेट का अधिक भाग ग्लूकोज के रूप में रक्त द्वारा शोषित होकर संपूर्ण शरीर में फैलकर उसे शक्ति प्रदान करता है। पित्त की क्रिया द्वारा चर्बी (1) साबुन तथा (2) इमल्शन-इन दो रूपों में बदल जाती है। साबुन वाला चर्म के निम्न भागों, गाल उदर की बाहरी दीवार तथा नितम्बों में एकत्र होता है तथा इमल्शन वाला भाग लसिका नलियों द्वारा संपूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुँचाने का कार्य करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) छोटी आंत के दो भाग होते हैं जिन्हें.....और.....कहते हैं।

(ख) मुँह में रहने वाला.....एन्जाइम भोजन में मिलकर कार्बोहाइड्रेट के पाचन में सहायता करता है।

(ग) मनुष्य शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि.....है।

(घ) आंतों में होने वाली गति को.....गति कहते हैं।

(ड.) भोजन के सार भाग का शोषण.....और.....नलिकाओं द्वारा होता है।

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) यकृत मनुष्य शरीर में उदर से बांयी और वक्षोदरमध्यर पेशी के नीचे स्थित है।

(ख) चर्बी का इमल्शन वाला भाग लसिका नलियों द्वारा संपूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुँचाने का कार्य करता है।

(ग) मल में दुर्गन्ध का कारण बड़ी आंत में उपस्थित इण्डोल व स्कैटोल पदार्थ हैं।

(घ) आमाशय की ग्रन्थियों से पित्त रस और क्लोम रस स्रावित होता है।

5.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप पाचन तंत्र प्रक्रिया को भली-भांति समझ चुके हैं। शरीर के आठ प्रमुख संस्थानों में पाचन तंत्र की अत्यधिक महत्व है। पाचन संस्थान मुख, अन्न प्रणाली, पाकस्थली, पक्वाशय, आंतों, यकृत पित्ताशय और अग्नाशय के माध्यम से पाचन क्रिया को सम्पादित करता है। हम जो भी खाते है वह सर्वप्रथम मुंह में जाता है और दांतों द्वारा छोटे टुकड़ों में बदल जाता है। मुंह में स्थित लार भोजन को अन्नप्रणाली के माध्यम से आमाशय तक पहुँचाती है। आमाशय की ग्रन्थियों से स्रावित गैस्टिक जूस पाचन क्रिया में सहायक होता है फिर भोजन पक्वाशय में पहुँच पित्त रस में मिल जाता है। तत्पश्चात् आंतों के माध्यम से ये शोषित होता है। भोजन का सार भाग शोषण के पश्चात् द्रव के रूप में रक्त में मिल जाता है तथा ठोस भाग गुदा द्वार से मल के रूप में बाहर निकल जाता है। इस प्रकार पाचन क्रिया विभिन्न अंगों के माध्यम से पूरी होती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सहज रूप से पाचक अंगों की संरचना व पाचन क्रिया को समझ गये होंगे।

5.9 शब्दावली

लार – लार मुख में पाया जाने वाला पाचन संगठन हैं।

कायम – आमाशय, छोटी आंत एवं बड़ी आंत की गतियों के फलस्वरूप भोज्य पदार्थ का छोटे-छोटे कणों में विभक्त होकर लुगदी जैसा बनने को कायम कहा जाता है।

पेप्सीन – प्रोटीन पाचक एन्जाइम

टायलिन – लार में पाये जाने वाला एन्जाइम

क्लोम – अग्न्याशय

लिवर – यकृत

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) जेजूनम, इलियम

(ख) टाइलिन

(ग) यकृत

(घ) पेरीस्टालटिक

(ड.) रक्त, लसिका

(च) साबुन, डमल्शन

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(घ) असत्य

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

6. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

7. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाचन क्या है? पाचन संस्थान के मुख्य अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

2. पाचन क्रिया को विस्तारपूर्वक समझाइये।

इकाई 6 - श्वसन तन्त्र की रचना व कार्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 श्वसन तंत्र : एक परिचय

6.4 श्वसन क्रिया के मुख्य अवयव

6.5 श्वसन क्रिया

6.6 श्वसन संस्थान के प्रमुख अंग

6.6.1 नाक

6.6.2 कण्ठ

6.6.3 स्वर यंत्र

6.6.4 श्वास नली

6.6.5 वक्ष गठर

6.6.6 फेफड़े

6.6.7 उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने पढ़ा कि किस प्रकार पाचन तंत्र विभिन्न पाचन अंगों द्वारा पाचन में सहायता करता है तथा शरीर को पुष्ट रखने में योगदान देता है। आपने जाना कि पाचन क्रिया किन-किन अंगों से होती हुई सम्पन्न होती है तथा इन अंगों की क्या संरचना है।

इस इकाई में आप श्वसन तंत्र की प्रक्रिया व इससे संबंधित विभिन्न अंगों की संचना व क्रिया के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। आप जानेंगे कि श्वसन तंत्र की क्या कार्य प्रणाली है तथा सांस लेना हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण है तथा श्वसन संस्थान के अंग क्रमिक रूप से किस प्रकार श्वसन क्रिया में हमारी सहायता करते है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- श्वसन तंत्र का एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- श्वसन क्रिया में निहित मुख्य अवयवों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकेंगे।
- श्वसन क्रिया की कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से स्पष्ट कर सकेंगे।
- श्वसन संस्थान के प्रमुख अंगों के विषय में अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- नाक की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- कण्ठ की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- स्वरयंत्र की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेंगे।
- श्वास नली की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वक्ष गठर की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवेचन कर सकेंगे।
- फेफड़े की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत विवेचन कर सकेंगे।
- उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

6.3 श्वसन-तन्त्र : एक परिचय

भोजन तथा पानी के बिना तो प्राणी कुछ समय तक जीवित भी रह सकता है, परन्तु श्वास के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह पाता। जिस क्रिया द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न हुई 'कार्बन डाई आक्साइड' CO_2 आदि अशुद्धियों को बाहर निकाला जाता है तथा बाहरी वातावरण से शुद्ध प्राण-वायु अर्थात् ऑक्सीजन (Oxygen) को ग्रहण किया जाता है, उसे श्वसन-क्रिया अथवा 'श्वासोच्छवास क्रिया' कहते हैं। प्रत्येक जीवित प्राणी के शरीर में यह क्रिया

स्वाभाविक रूप से निरन्तर होती रहती है। इस क्रिया के बन्द होते ही मृत्यु हो जाती है। आगे आप श्वास क्रिया के मुख्य अवयवों के विषय में पढ़ेंगे।

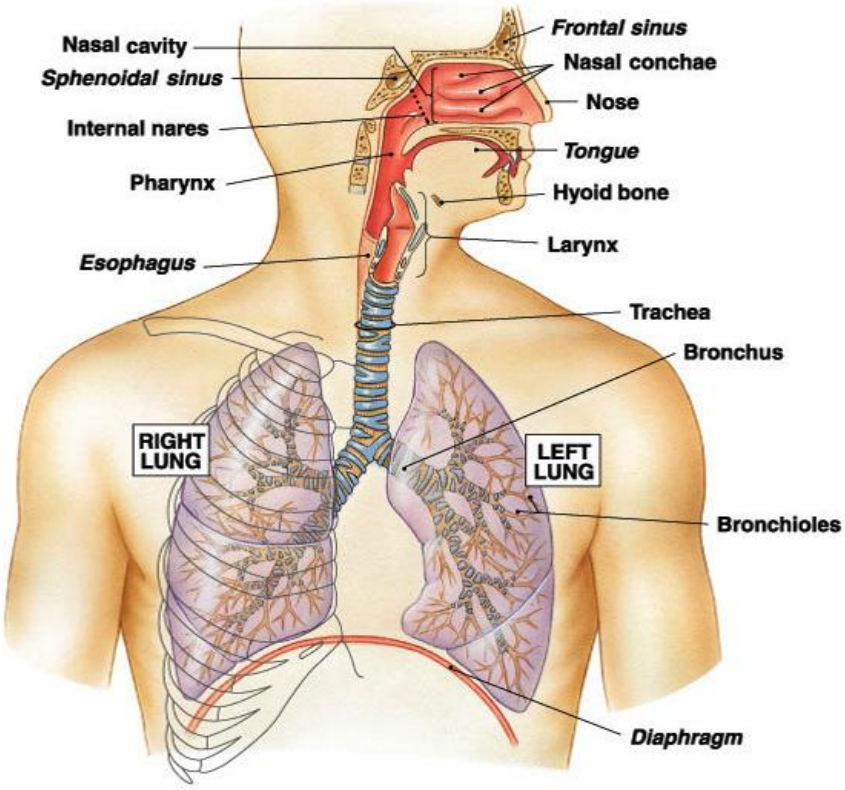

6.4 श्वसन क्रिया के मुख्य अवयव - (Nostrills or Nasal Passage)

- कण्ठ या गला अथवा गल कक्ष (Throat or Pharynx)
- स्वर यन्त्र (Larynx)
- वायुनली अथवा वायुनलिका (Wind-Pipe)
- श्वांस नली अथवा श्वांस नलिका (Branchi)
- फेफड़े (Lungs)
- वायुकोषायें (Air Cells or Alveoli)
- महाप्राचीरा पेशी अथवा वक्षोदर मध्यस्थ पेशी (Diaphragm)

- उदर की मांसपेशियाँ (Abdominal muscles)
- अन्तप्रर्शुकीय मांसपेशियाँ (Inter Costal Muscles)
- वक्षभित्ति (Chest Wall)
- श्वसनपेशियाँ (Respiratory Muscles)

उपरोक्त जानकारी के बाद सहज ही प्रश्न उठता है कि श्वसन क्रिया किस प्रकार संचालित होती है एवं उपरोक्त अंगल क्या-क्या भूमिका निभाते हैं। आगे आप इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो पायेंगे।

6.5 श्वसन क्रिया

सर्वप्रथम वायु नाक के दोनों छिद्रों में होकर गले तथा स्वर-यन्त्र में होती हुई श्वांसनली में पहुँचकर, वायुनलिकाओं द्वारा फेफड़ों की छोटी-छोटी वायुकोषाओं में पहुँचती हैं। वहाँ रक्त तथा आई हुई वायु में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है, जिसके कारण भीतर आई हुई वायु रक्त के कार्बन डाई ऑक्साइड से अशुद्ध होकर बाहर निकल जाती है तथा अशुद्ध रक्त वायु से ऑक्सीजन प्राप्त कर, चमकते हुए लाल रंग का होकर हृदय को लौट जाता है। एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर में श्वासोच्छ्वास की यह क्रिया प्रति मिनट **16** से **24** बार तक होती है।

श्वासोच्छ्वास की क्रिया नाक के अतिरिक्त मुख द्वारा भी उत्पन्न हो सकती है। जुकाम हो जाने पर अथवा नाक में बलगम जमा हो जाने पर लोग मुँह से श्वांस लेते हैं, परन्तु मुंह से श्वांस लेना उचित नहीं है। श्वास हमेशा नाक से ही लेनी चाहिए। नाक के छिद्रों में छोटे-छोटे बाल होते हैं, जिनके द्वारा हवा छन कर ही भीतर प्रवेश कर पाती है, जबकि मुख द्वारा श्वास लेने पर उसके छनने की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं हो पाती। फलतः वायु के साथ ही बाह्य वातावरण के जीवाणु भी भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः श्वासोच्छ्वास की क्रिया हमेशा नासिका द्वारा ही सम्पन्न करनी चाहिए।

श्वसन-क्रिया (Respiration) में श्वास लेने की क्रिया को 'प्रश्वसन' (Inspiration) तथा वायु बाहर निकालने की क्रिया को 'निःश्वसन' (Expiration) कहा जाता है।

छोटे बच्चों की श्वसन-क्रिया व्यस्कों की अपेक्षा अधिक होती है तथा वृद्धों की जवानों से कम होती है। श्वसन क्रिया पर मानसिक स्थिति का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। क्रोध, भय, घबराहट तथा दौड़ने के समय श्वास की गति बढ़ जाती

है तथा सोते समय घट जाती है।

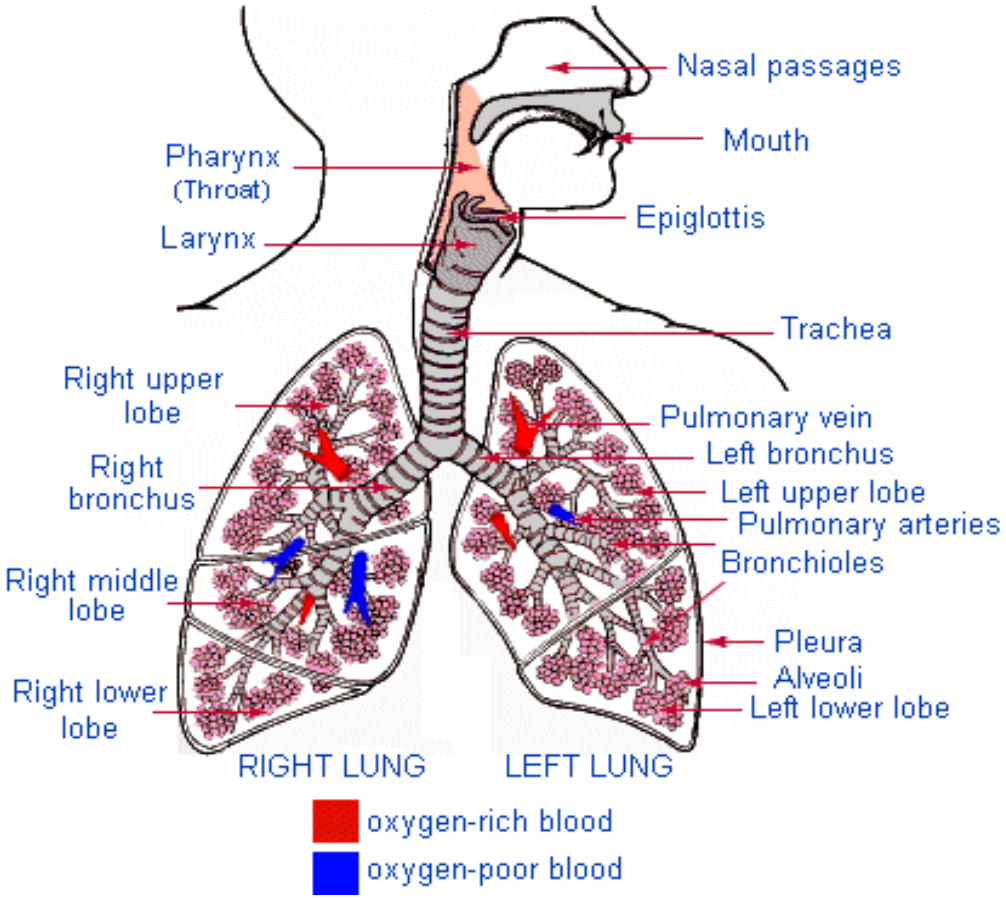

श्वसन क्रिया मुख्यतः फेफड़ों के द्वारा होती है, परन्तु यह चर्म (त्वचा) के द्वारा भी होती है। त्वचा के भीतर जो असंख्य महीन छिद्र होते हैं, वे भी बाह्य वातावरण से शुद्ध वायु को प्राप्त करके शरीर के भीतर पहुँचाते रहते हैं। श्वास क्रिया का मुख्य लाभ रक्त की शुद्धि है। श्वास क्रिया द्वारा जो बाहरी हवा शरीर के भीतर प्रविष्ट होती है, उसमें 79 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 21 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। ऑक्सीजन ही रक्त को शुद्ध करती है तथा शरीर के भीतर होने वाली संकोच-क्रिया (Contraction) में सहायता पहुंचाती है।

जब हम श्वास लेते हैं, तब वायु सर्वप्रथम नाक में प्रविष्ट होकर 'नासाग्रसनी' में होती हुई मुँह के पृष्ठभाग में पहुंचती है। वहाँ से वह स्वरयन्त्र (Larynx) में प्रवेश करती है। स्वर यन्त्र श्वसन संस्थान का वह अंग है, जो गले के मध्य भाग में स्थित होता है। इसके सामने दो चौड़ी तथा नरम हड्डियाँ होती हैं, जिन्हें 'थायराइड कार्टिलेज' (Thyroid Cartilage) कहा जाता है। इसके ऊपरी भाग में एक ढक्कन होता है जिसे 'कण्ठच्छद' (Epiglottis) कहते हैं, लगा रहता है। जैसे ही भोजन गले में पहुँचता है, वैसे ही यह ढक्कन श्वास नली को ढंक देता है, ताकि वह स्वर यन्त्र में न पहुँच सके। श्वास प्रणाली तथा श्वसनी के भीतर एपिथीलियम (Epithelial) नामक कोष (Cells) होते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं- (1) स्तम्भाकार (Columnar) (2) रोमल (Ciliated) (3) श्लेष्मल (Mucus) रोमल

सेल्स श्वसनी तथा श्वास प्रणाली में पाये जाते हैं। ये बाहर की ओर गति बढ़ाने में सहायक होते हैं। 'श्लेष्मल उपकला सेल्स' श्लेष्मिक झिल्लियों में पाये जाते हैं। यह झिल्ली मुँह तथा श्वासनली के भीतर होती है। इसके भीतर ग्रंथि कोशिकाऐं (Glandular Cells) भी होते हैं, जिनसे एक प्रकार का तरल पदार्थ-श्लेष्मा (Mucus) निकलता है। इनमें कुछ झिल्लियाँ मोटी भी होती हैं, जो शरीर के भीतर मुख्य अंगों को ढँके रखती हैं, ऐसी झिल्लियों को मस्तिष्क आवरण, हृदयावरण, फुफ्फुसावरण तथा उदरावरण कहा जाता है।

6.6 श्वसन संस्थान के प्रमुख अंग

6.6.1 नाक तथा नासा छिद्र (Nose and nostril) नाक एक गठर के समान होती है। इसमें भीतर तथा बाहर की ओर दो द्वार होते हैं। बाहर की ओर के दोनों द्वार दायीं तथा बायीं ओर रहते हैं, जिन्हें 'नासा-रन्ध्र' कहा जाता है। इन दोनों रन्ध्रों के मध्य एक दीवार-सी होती है, जिसे नासिकास्थि पर्दा (Septum) कहा जाता है। यह दीवार अस्थि तथा उपास्थि के संयोग से निर्मित है।

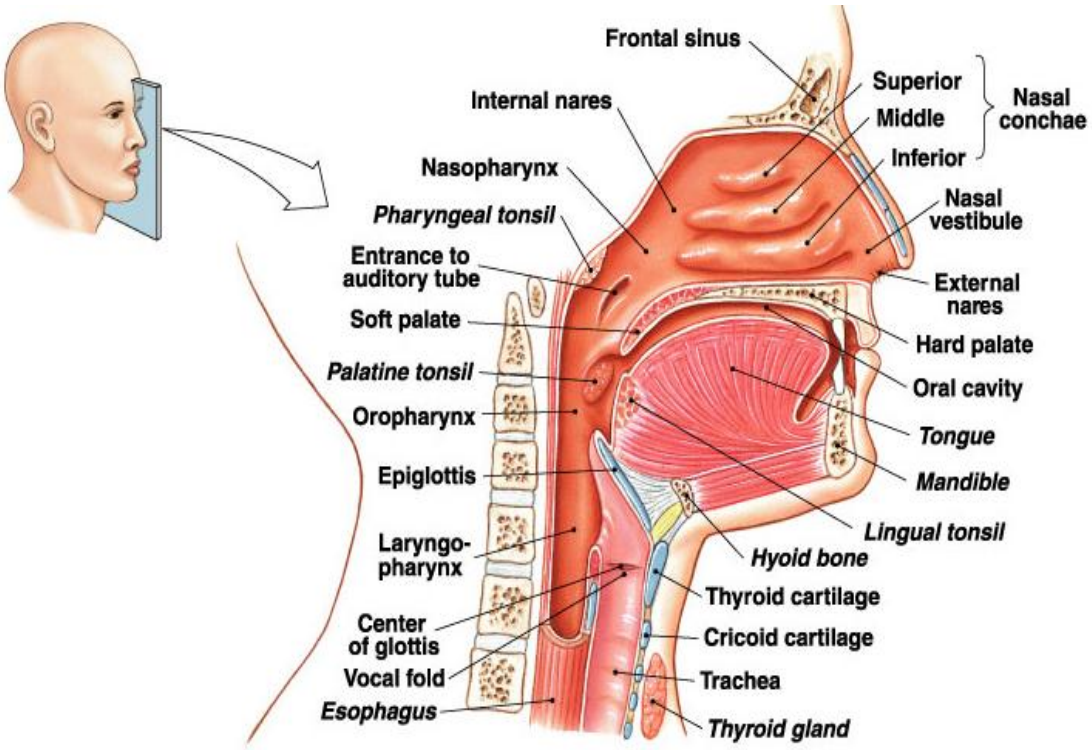

Nasal Cavity and Pharynx

6.6.2 कण्ठ, गल-कक्ष अथवा गल कोष (Pharynx) यह गह्वर मुख तथा नासिका के पृष्ठभाग को बनाता है तथा उससे एकदम मिला रहता है। इसके सामने वाले ऊपरी भाग में दोनों नासा-गठर, पृष्ठभाग में दोनों कण्ठ कर्णी नलियां, मध्य में तथा सामने की ओर मुख, तथा निम्न भाग में सामने की ओर वायुनली तथा पीछे की ओर कण्ठनली रहती है।

गल-कोष के उपरी भाग को नासा-स्वरयन्त्र, मध्यभाग को 'वाक् गलकक्ष' तथा निम्नभाग को 'स्वर यन्त्र' संबंधी गलकक्ष कहा जाता है।

6.6.3 स्वर-यन्त्र (Larynx) यह जीभ के पिछले भाग से अर्थात् जहाँ पर गलकोष की समाप्ति होती है, आरम्भ होती है। इसमें अनेक अस्थियाँ होती हैं, जैसे- चुल्लिका उपास्थि, मुद्रा उपास्थि आदि। स्वर यन्त्र पर सर्वत्र श्लैष्मिक झिल्ली चढ़ी होती है तथा इसके ऊपर की ओर 'गलकोष' तथा नीचे की ओर 'टेंटुआ' रहता है।

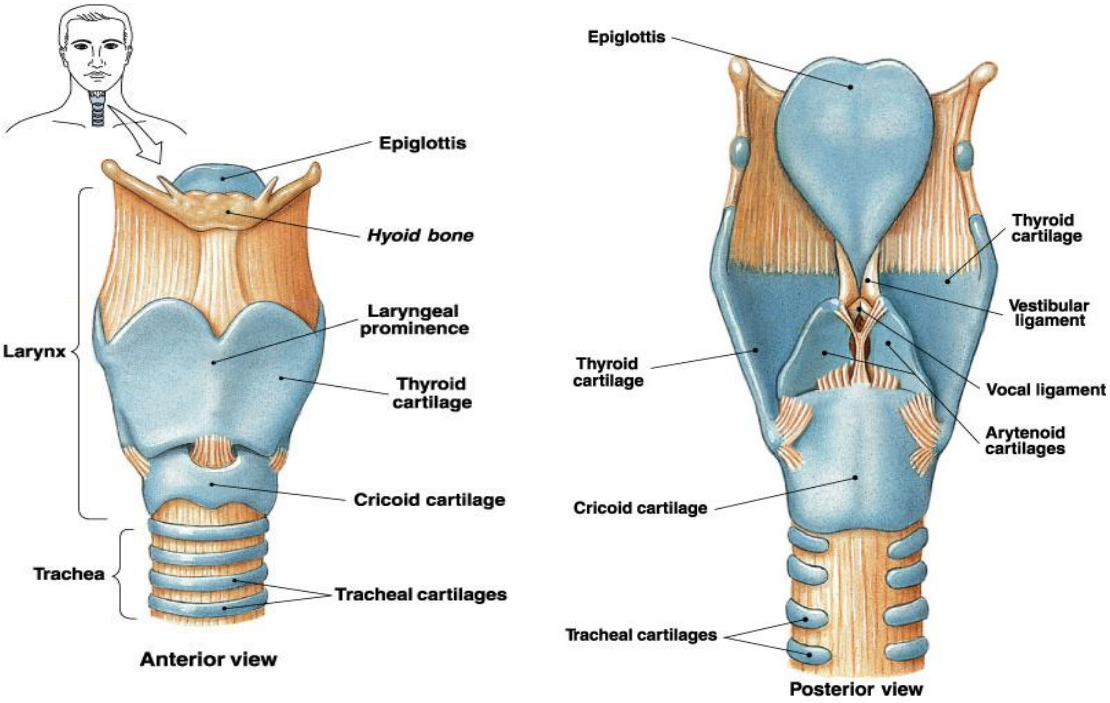

Larynx

भोजन निगलते समय स्वर यन्त्र ऊपर को उठता है, फिर गिरता रहता है। जब इसमें वायु प्रविष्ट होती है तब स्वर उत्पन्न होता है। इसके सिरे पर एक ढक्कन सा होता है, जिसे स्वर यन्त्रच्छद कहते है। यह ढक्कन हर समय खुला रहता है, परन्तु खाना खाते समय बन्द हो जाता है, जिसके कारण भोजन स्वर यन्त्र में न गिरकर, अन्न प्रणाली में गिरता है।

6.6.4 श्वासनली (Trachea) तथा वायुनली (Bronchi) यह नली मुद्रा उपास्थि के निम्न भाग से उत्पन्न होती है। यह लगभग 4.5 इंच लम्बी तथा भीतर से खोखली होती है। यह गले के नीचे वक्ष-गह्वर में पहुँचकर दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। इन दोनों को वायु-नली कहते हैं। इसकी एक शाखा दायें फेफड़े में तथा दूसरी बायें फेफड़े में चली जाती है। ये दोनों शाखाऐं सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर होती हुई असंख्य शाखा-प्रशाखाओं में बँटकर फेफड़ों में फैल जाती हैं। उन प्रशाखाओं को 'श्वासोपनली' (Bronchial tubes) कहा जाता है। प्रत्येक श्वास नली के किनारों पर छोटे-छोटे अंगूर के गुच्छों की भांति कितने ही कोष अथवा थैलियाँ होती हैं, जिन्हें 'अति सूक्ष्म वायु कोष' (Air sacs) अथवा फुफ्फुस कोष (Lung sacs) कहा जाता है।

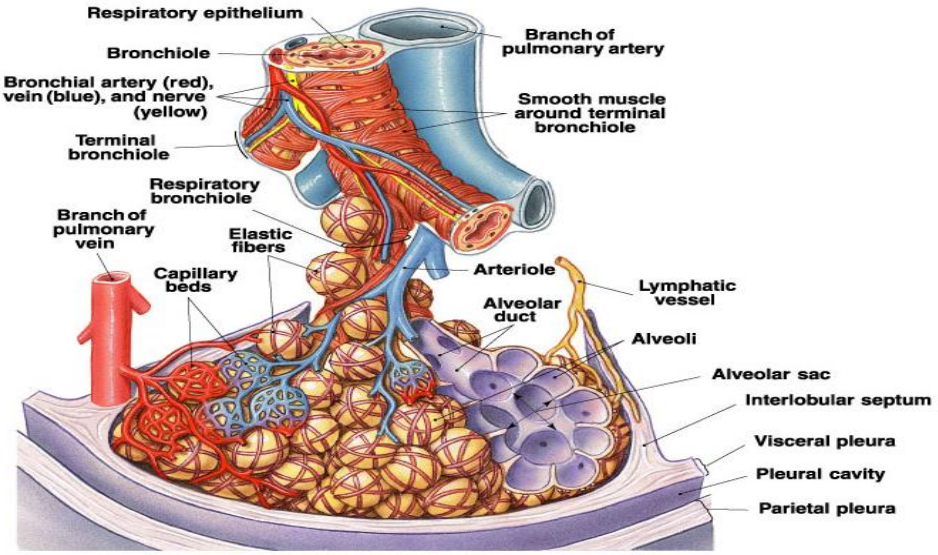

Bronchioles and Alveoli

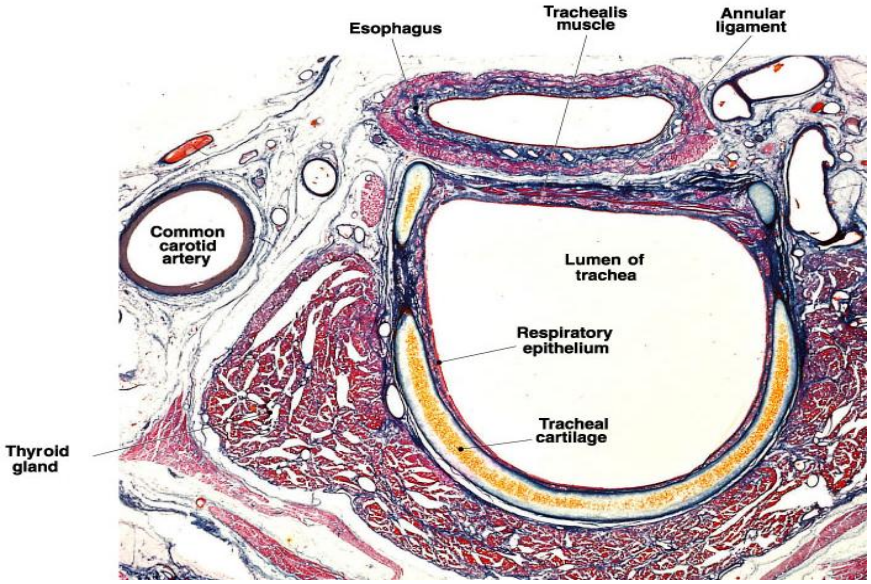

Trachea

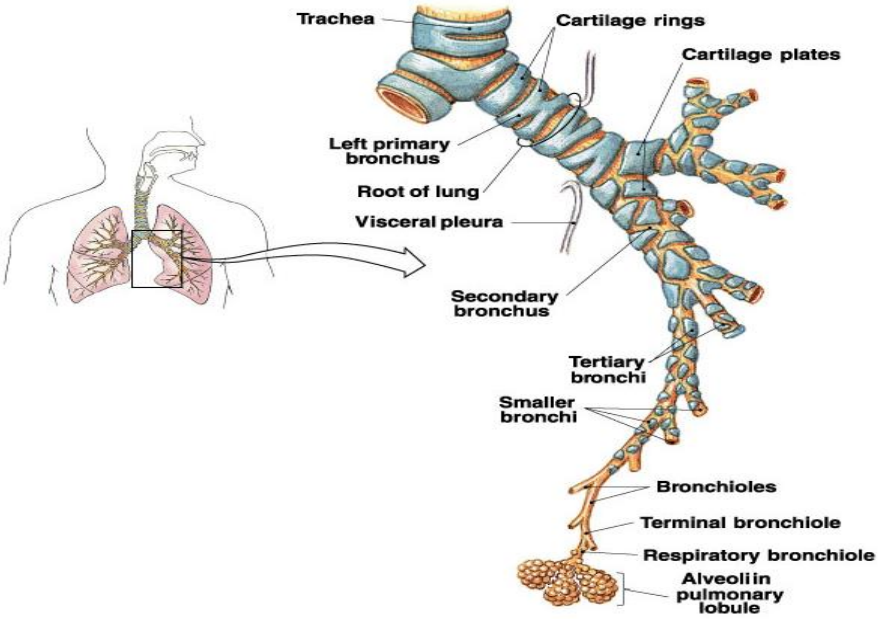

Trachea bronchial Tree

6.6.5 वक्ष गठर (Thorax) यह छाती के भीतर का भाग है जो दो भागों में विभक्त रहता है। हृत्पिण्ड तथा फेफड़े इसी में रहते हैं। प्रत्येक फेफड़े पर एक अत्यन्त कोमल परत चढ़ी रहती है, जिसे फुफ्फुसावरण (Pleura) कहा जाता है।

6.6.6 फेफड़े (Lungs) फेफड़े संख्या में दो होते हैं। ये वक्ष में, हृत्पिण्ड के दोनों ओर होते हैं, जिन्हें क्रमशः दाँया फेफड़ा तथा बाँया फेफड़ा कहा जाता है। इनका रंग धुमैला होता है। ये स्पंज की भांति कोमल, छेदभरे, फैलने तथा सिकुड़ने वाले तथा हल्के होते हैं।

दायें फेफड़े में तीन तथा बायें फेफड़े में दो खण्ड (Lobes) होते हैं। प्रत्येक खण्ड कितने ही छोटे-छोटे उपखण्डों में बंटे रहते है। दोनों मुख्य खण्ड एक झिल्ली द्वारा एक दूसरे से अलग रहते हैं। ये दोनों फेफड़े मिलकर वक्षःस्थल के तीन-चौथाई से भी अधिक भाग को घेरे रहते हैं।

दोनों फेफड़ोंमें अनगिनत वायुकोष, श्वासमली, धमनी, शिराऐं तथा कोशिकाऐं भरी रहती हैं। वायुकोषों के चारों ओर असंख्य कोशिकाऐं लगी रहती हैं, जिनके दूसरे किनारे फुफ्फुसीय शिराओं के साथ मिले रहते हैं। वायुकोषों के कारण ही ये अंगूर के गुच्छों जैसे प्रतीत होतेहैं। इन्ही वायुकोषों में हवा भरती है।

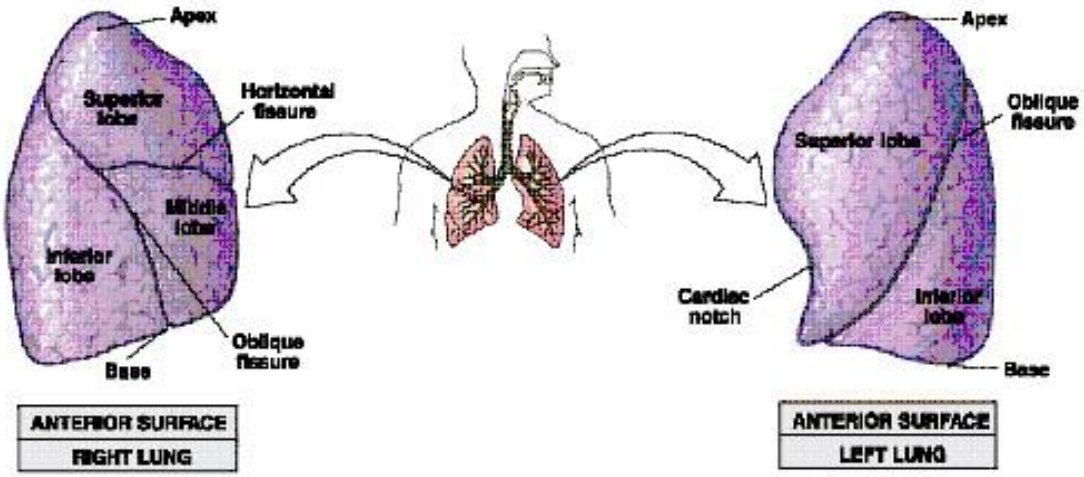

दाँया फेफड़ा बाँया फेफड़े से आकार में 1 इंच छोटा, परन्तु कुछ अधिक चौड़ा होता है। दाँये फेफड़े का औसत भार 23 औंस तथा बाँये फेफड़े का 19 औंस होता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों के फेफड़े कुछ भारी होते हैं। बाल्यावस्था में फेफड़ों का रंग कुछ लाल, युवावस्था में मटमैला तथा वृद्धावस्था में स्याहीकायल गहरे रंग का हो जाता है।

Pleural fluid produced by pleural membranes

- Acts as lubricant
- Helps hold parietal and visceral pleural membranes together

Two lungs - 1. Right lung: Three lobes, 2.Left lung: Two lobes

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

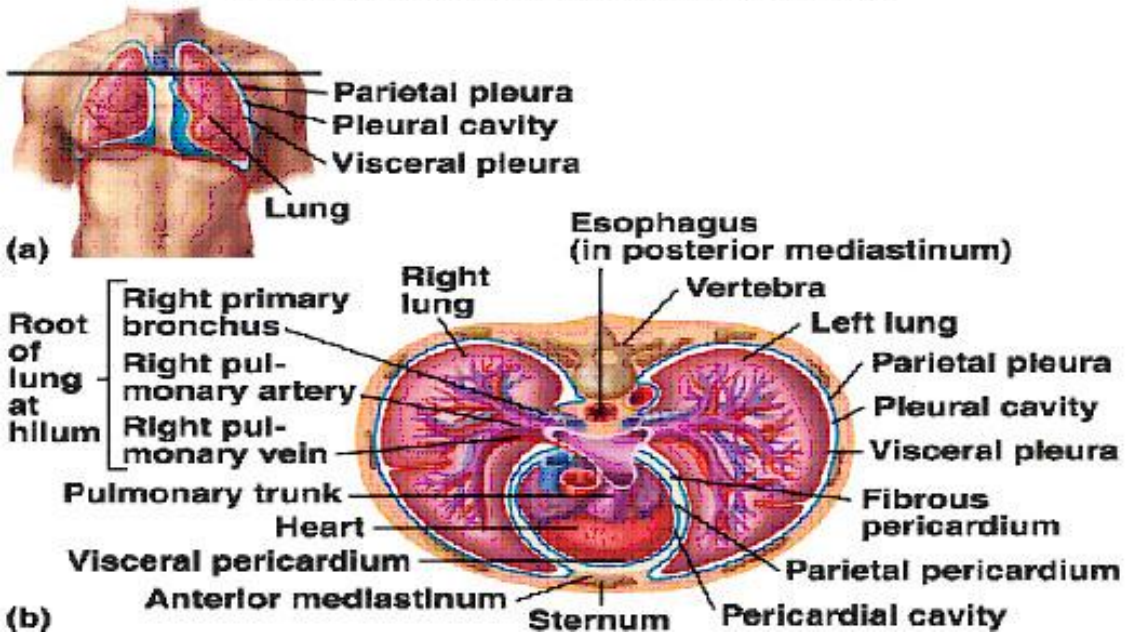

इन फेफड़ों द्वारा ही श्वास लेने तथा छोड़ने की क्रिया सम्पन्न होती है। रक्त शोधन की क्रिया में ये फेफड़े ही हृदय के मुख्य सहायक हैं। हृदय से आया हुआ अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए फुफ्फुसीय धमनी (Pulmonary Artery) द्वारा इन दोनों फेफड़ों में पहुँचता है। ये उसमें से अशुद्ध वायु 'कार्बन डाई ऑक्साइड' को बाहर निकाल कर ऑक्सीजन भर देते हैं, जिससे रक्त शुद्ध हो जाता है और फेफड़ों द्वारा शुद्ध किया हुआ रक्त पुनः हृदय में पहुँच कर विभिन्न रक्त-वाहिनियों के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर में संचरण करता है। इस प्रकार फेफड़े शरीर से मल बाहर निकालने वाले अंगों (Excretory Organs) का काम भी करते हैं।

दोनों फेफड़े अपने चारों ओर एक दोहरी झिल्ली से घिरे रहते हैं, जिसे फुफ्फुसावरण (Pleura) कहा जाता है।

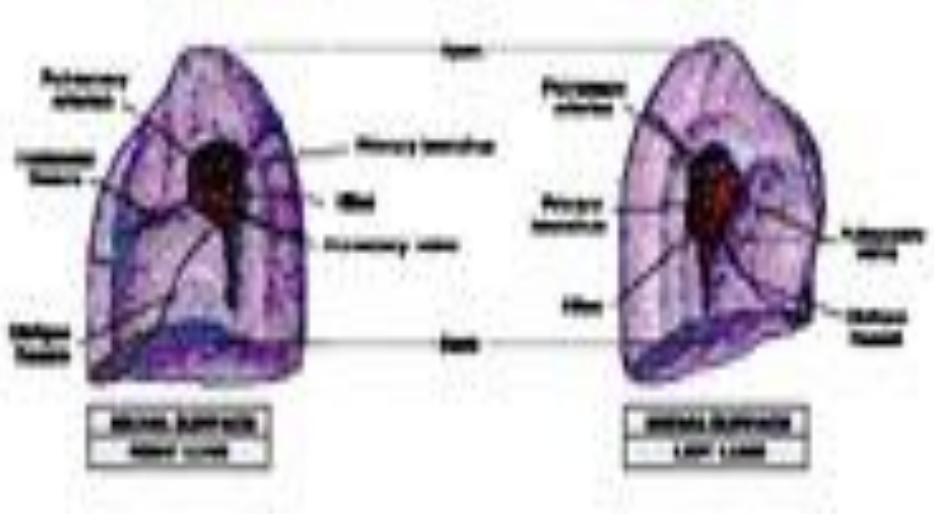

Divisions : Lobes, bronchopulmonary segments, lobules

6.6.7 उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी अथवा 'महाप्राचीरा' (Diaphragm) वक्ष-गह्वर के नीचे की ओर एक चपटी मांसपेशी वक्ष-गह्वर तथा उदर को अलग करती है, उसी को 'उदर वक्ष' अथवा 'महाप्राचीरा' कहते हैं। यह पेशी दाँये फेफड़े के नीचे रहती है। इसके नीचे यकृत रहता है। इस पेशी का मध्यभाग हृदय के नीचे रहता है तथा उसके नीचे आमाशय का स्थान है। इसी प्रकार बाँये फेफड़े के नीचे भी महाप्राचीरा रहती है तथा उसके नीचे 'प्लीहा' का स्थान है।

महाप्राचीरा एक गोल गुम्बद जैसी होती है। सिकुड़ने पर यह चपटी हो जाती है, जिसके कारण वक्ष-गुहा का आयतन बढ़ जाता है। वक्ष की कुछ पेशियाँ पसलियों के बीच में रहती है। उन पेशियों के संकोचन के समय पसलियाँ कुछ ऊपर को उठ जाती हैं जिसके कारण छाती की हड्डी उभर जाती है। छाती की भीतरी पसलियों के ऊपर उठने तथा महाप्राचीरा पेशी के चपटे होने के कारण वक्ष-गुहा का भीतरी आयतन सब ओर का बढ़ जाता है, उससे फेफड़े को अधिक फैलने के लिए स्थान प्राप्त होता है। फेफड़े के फैलने पर उसके भीतर बढ़े हुए स्थान में हवा भर जाती है। श्वास छोड़ने पर यह पेशी पुनः ढीली होकर गुम्बद के आकार की हो जाती है तथा वक्षगुहा का आयतन कम हो जाता है।

महाप्राचीरा के भीतर से ही गलनली तथा महाधमनी प्रवेश कर पाती है। अधोगा महाशिरा एवं वक्ष-प्रणाली से अन्य स्नायु तथा रक्तवाहिनी नाड़ियाँ जाती हैं।

यथार्थ में महाप्राचीरा के दो स्तम्भ होते हैं, जिनके ऊपर दोनों फेफड़े स्थित रहते हैं।

फेफड़े के सभी अंग दिन-रात स्वतः ही अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। फेफड़ों का कार्य करना बन्द कर देने को 'श्वासावरोध' कहते हैं। सामान्यतः मृत्यु होने तक फेफड़े अपना कार्य करना बन्द नहीं करते, परन्तु कभी-कभी किन्हीं विशेष कारणों, जैसे-पानी में डूब जाना, बिजली का झटका लगना आदि से कुछ देर के लिए श्वास-क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। उस समय कृत्रिम श्वसन विधि का सहारा लिया जाता है। कृत्रिम श्वसन विधि का प्रयोग सफल हो जाने पर फेफड़े पुनः अपना कार्य करना आरम्भ कर देते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर में श्वासोच्छवास की प्रक्रिया.....बार प्रति मिनट होती है।

(ख) फेफड़ों पर चढ़ी कोमल परत को.....कहते है।

(ग) दाएँ फेफड़े का औसत भार.....औस तथा बाएँ फेफड़े का औसत भार.....औंस होता है।

(घ) फेफड़ों का कार्य बंद कर देने को.....कहते है।

(ड.) हृदय से आया हुआ अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए.....द्वारा फेफड़ों में पहुँचता है।

(च) श्वास प्रणाली तथा श्वसनी के भीतर.....कोषा होते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) श्वसन-क्रिया में श्वास लेने की क्रिया को नि:श्वसन तथा श्वास छोड़ने की क्रिया को प्रश्वसन कहते हैं।

(ख) दाएँ फेफड़े में दो तथा बायें फेफड़ें में तीन खण्ड होते हैं।

(ग) महाप्राचीरा सिकुड़ने पर चपटी हो जाती है जिससे वक्ष-गुहा का आयतन बढ़ जाता है। (घ) नासिका छिद्रों के मध्य एक दीवार होती है जिसे 'सेप्टम' कहते हैं।

6.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुकें है कि श्वसन तंत्र द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न हुई कार्बन डाई ऑक्साइड आदि अशुद्धियॉं बाहर निकलती हैं तथा बाहर के वातावरण से शुद्ध प्राण वायु ऑक्सीजन नासिका छिद्रों के माध्यम से अंदर प्रतिष्ट करती है। श्वसन क्रिया के मुख्य अवयव नाक, कण्ठ, स्वर, यंत्र, श्वास नली, वक्ष गठर, फैफड़े और उदर-वक्ष व्यवधापक पेशी हैं। श्वसन क्रिया में श्वास लेने की क्रिया को 'प्रश्वसन' तथा श्वास बाहर निकालने की क्रिया को 'नि:श्वसन' कहा जाता है। श्वसन क्रिया में नासिका छिद्रों द्वारा वायु गले एवं स्वर यंत्र से होती हुई श्वासनली में पहुँचती है। वायुनलिकाओं द्वारा फिर यह वायु फेफड़ों की वायुकोषाओं में पहुँचती है। वहॉं रक्त तथा आई हुई वायु में ऑक्सीजन व कार्बन डाई ऑक्सइड का आदान-प्रदान होता है तथा अशुद्ध वायु बाहर निकल जाती है तथा शुद्ध वायु रक्त में मिल जाती है। श्वास लेना मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

6.8 शब्दावली

प्रश्वसन – वायु को नासिका द्वारा भीतर लेने को प्रश्वसन कहा जाता है।

नि:श्वसन – वायु बाहर निकालने की क्रिया।

श्वासोच्छवास – श्वास लेने एवं छोड़ने की क्रिया।

अस्थियॉं – हड्डियॉं

रक्तशोधन – रक्त का शुद्ध होना।

मल – विषाक्त पदार्थ, जो शरीर के लिए हानिकारक होते है।

श्वासावरोध – श्वास लेने एवं छोड़ने में बाधा उपस्थित होना।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) 16-24
(ख) फुफ्फुसावरण
(ग) 23,19
(घ) श्वासवरोध
(ड.) फुफ्फुसीय धमनी/ पल्मोनरी धमनी
(च) एपीथीलियल

2. सत्य/असत्य

(क) असत्य
(ख) असत्य
(ग) सत्य
(घ) सत्य

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली
7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा
8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा
9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. श्वसन क्रिया के मुख्य अवयवों का परिचय दीजिए।

2. श्वसन क्रिया को विस्तारपूर्वक समझाइये।

इकाई 7 – तंत्रिका तंत्र की रचना व कार्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 तंत्रिका तंत्र – एक परिचय

7.4 तंत्रिका तंत्र के विभाग

7.4.1 मस्तिष्क – सुषुम्ना (केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र)

7.4.2 संवेदनात्मक अथवा स्वचालित तंत्रिका तंत्र

7.4.3 परिसरीय तन्त्रिका तंत्र

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने श्वसन संस्थान की रचना व कार्यविधि का अध्ययन किया और जाना कि किस प्रकार श्वास का आरोहण फेफड़ों के द्वारा शरीर में होता है तथा अवशिष्ट वायु कार्बनडाई आक्साइड के रूप में श्वास के अवरोहण में निकलती हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप शरीर के एक प्रमुख तंत्र तंत्रिका तंत्र के विषय में पढ़ेंगें कि तंत्रिका तंत्र किस प्रकार शरीर की तथा उसके विभिन्न भागों एवं अंगों की समस्त क्रियाओं का नियन्त्रण, नियमन तथा समन्वयन करता है और समस्थिति बनाए रखता है यह आप सरलता से जानेगे व शरीर के सभी ऐच्छिक व अनैच्छिक कार्यो पर नियंत्रण तथा समस्त संवेदनाओं को ग्रहण कर कैसे मस्तिष्क में पहुँचाया जाता है इसके विषय में आप ज्ञान अर्जित करेंगे।

तंत्रिका तंत्र के तीन मुख्य विभाग है – पहला मस्तिष्क सुषम्ना तंत्र तथा दूसरा संवेदनात्मक अथवा स्वचलित तंत्र परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र व आगे आप पढ़ेंगे कि ये भाग कौन-कौन से होते हैं और किस प्रकार कार्य करते हैं।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- तंत्रिका तंत्र के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

- तंत्रिका तंत्र की रचना का विस्तृत रूप से विवेचन कर सकेंगे।
- तंत्रिका तंत्र के प्रमुख विभाग प्रकारों को भली-भॉति समझ सकेंगे।
- मस्तिष्क-सुषम्ना संस्थान के विभिन्न अंगों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मस्तिष्क-सुषुम्ना संस्थान के विभिन्न अगों के कार्यो के बारे में विस्तारपूर्वक ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- मस्तिष्क के विभाग व उपविभागों की कार्य प्रणाली व महत्वपूर्ण मुख्य कार्यो के विषय में विस्तार से वर्णन कर सकेंगे।
- सुषुम्ना के मुख्य विभाग व महत्वपूर्ण कार्यो के बारें में जानकारी प्राप्त कर उनका वर्णन कर सकेंगे।
- संवेदनात्मक अथवा स्वचलित तंत्रिका तंत्र के स्वरूप एवं विभिन्न कार्यो के विषय में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

7.3 तंत्रिका तंत्र

मानव-शरीर की देखभाल तथा शारीरिक अंगों का समुचित रूप से संचालन करने का दायित्व 'तंत्रिका तंत्र' पर होता है। ये नाड़ियाँ छोटी-बड़ी विभिन्न आकारों में] सहस्राधिक संख्या में] शरीर के विभिन्न भागों में फैली रहती हैं तथा शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग इन्हीं के आधार पर सुगठित तथा सक्रिय बने रहते हैं। यही सम्पूर्ण शरीर पर शासन करती हैं तथा दिन-रात नियमित रूप से अपने कार्य में संलग्न बनी रहकर, कभी एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं करती है तथा तंत्रिका तंत्र शरीर की असंख्य कोशिकाओं की क्रियाओं में एक प्रकार का सामंजस्य उत्पन्न करता है ताकि सम्पूर्ण शरीर एक इकाई के रूप में कार्य कर सके व तन्त्रिका तंत्र तन्त्रिका ऊतकों से बना होता है। जिनमें तंत्रिका कोशिकाओं या न्यूरॉन्स और इससे सम्बन्धित तंत्रिका तन्तुओं तथा एक विशेष प्रकार के संयोजी ऊतक जिसे न्यूरोग्लिया कहते है का समावेश होता है।

7.4 तंत्रिका तंत्र के विभाग

तंत्रिका तंत्र को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है-

(A) मस्तिष्क सुषुम्ना संस्थान (Cerebral Spinal) इसे 'केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र' (Central of Cerebral Nervous System) भी कहा जाता है। इसमें ऐच्छिक (Voluntary) तंत्रिकाए होती हैं।

(B) संवेदनात्मक संस्थान **(**Sympathetic Spinal**)** इसे 'स्वतंत्र नाड़ी संस्थान' (Autonomic Nervous System) अथवा स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र (Autonomus Nervous System or Sympathetic Nervous System) भी कहा जाता हैं। इसमें अनैच्छिक (Involuntary) तन्त्रिकाएं होती हैं।

(C) परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र।

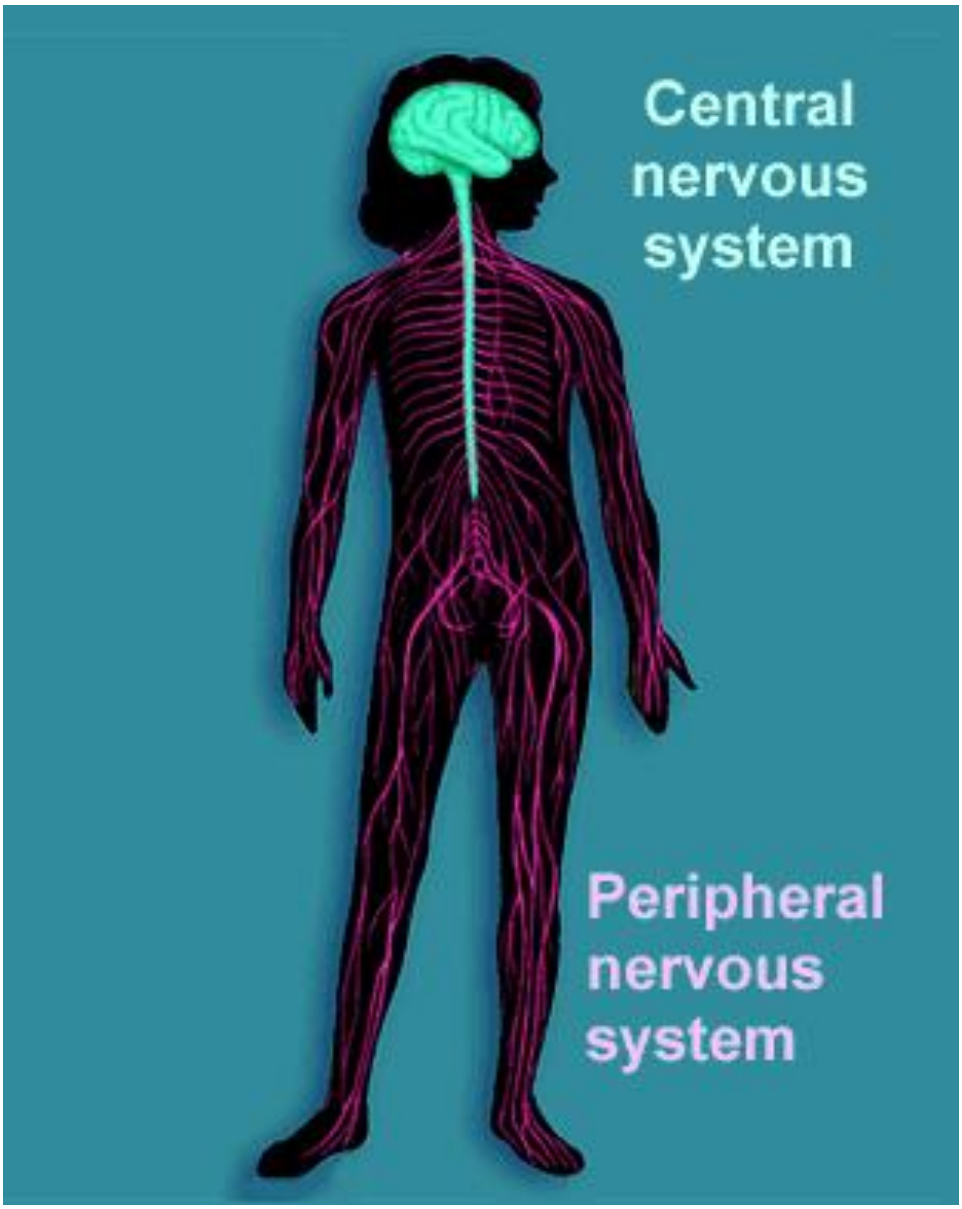

Nervous System

7.4.1 मस्तिष्क-सुषुम्ना अथवा केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र - इस भाग में निम्नलिखित अंगों का समावेश होता है-

(A) मस्तिष्क

(क) अग्रमस्तिष्क (Forebrain)

(ख) मध्यमस्तिष्क (Mid Brain)

(ग) पश्चमस्तिष्क (Hind Brain)

(B) मस्तिष्क सेतु (Pons Veolia)

(C) सुषुम्ना नाड़ी – इसमें निम्न दो भाग है।

(1) सुषुम्ना काण्ड अर्थात् मेरुदण्ड (Spinal Cord)

(2) सुषुम्ना शीर्ष

(A) मस्तिष्क - यह मन, बुद्धि तथा शारीरिक चेतना का मूलाधार है। यह मनुष्य की इच्छानुसार सम्पूर्ण शरीर को संचालित करता है। यह आठ हड्डियों से बने एक कोष्ठ-खोपड़ी (Cranium) की भीतरी गुहा के भीतर स्थित होता है। इसका निर्माण नर्व-सेल्स से होता है, अतः यह एक बहुत ही कोमल अंग है। संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य का मस्तिष्क ही सर्वाधिक विकसित माना गया है। अन्य अंगों की अपेक्षा इसका आकार भी बड़ा होता है।

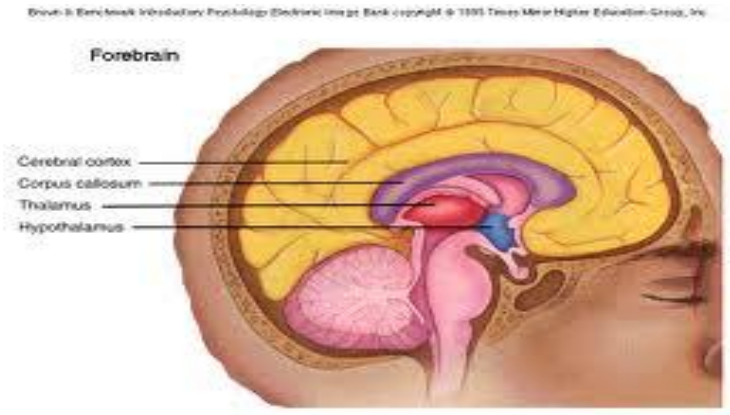

मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट 'अखरोट' से मिलती-जुलती है। इसका रंग भूरा होता है। इसके आगे-पीछे के भाग की लम्बाई लगभग 6 इंच तथा दाँई-बाँई ओर चौड़ाई लगभग 5 इंच होती है। इन आकारों में न्यूनाधिकता भी पाई जाती है।

पुरुष के मस्तिष्क का भार 50 से 60 औंस तथा स्त्रियों के मस्तिष्क का भार 45 से 48 औंस तक होता है। यह एक प्रकार के 'धूसर पदार्थ' तथा 'श्वेत पदार्थ' के वात-कोषों एवं वात-तन्तुओं का बना होता है। आयु के प्रथम चार वर्षों तक इसका भार तेजी से बढ़ता है तथा 20 वर्ष की आयु तक इसका भार एक निश्चित परिमाण तक पहुँच जाता है।

मस्तिष्क - मस्तिष्क को सामान्य रूप से तीन भागों में बॉटा गया है – (क) अग्रमस्तिष्क

(ख) मध्यमस्तिष्क (ग) पश्चमस्तिष्क इनका विवरण इस प्रकार है –

(क) अग्रमस्तिष्क – यह मस्तिष्क का आगे का भाग होता है जिसमें निम्न रचनाएँ स्थित रहती है –

प्रमस्तिष्क या सेरीब्रम – यह केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र का प्रमुख तथा मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। प्रमस्तिष्क के ऊपर का भाग गुम्बज की तरह और नीचे का भाग समतल होता है व कपाल गुहा का अधिक भाग प्रमस्तिष्क से भरा रहता है तथा प्रमस्तिष्क एक गहरी लम्बवत् दरार या विदर के द्वारा दाहिने एवं बाये अर्द्ध गोलार्द्ध में विभाजित रहता है। यह पृथक्करण आगे एवं पीछे के भाग पर पूर्ण होता है लेकिन मध्य में ये अर्द्धगोलार्द्ध तंत्रिका तन्तुओं की चौड़ी पट्टी के द्वारा आपस में जुड़े रहते है जिसे कॉर्पस कैलोसम कहते है जो तंत्रिका कोशिकाओं का बना होता है और भूरे रंग का होता है। इसे ग्रे मैटर कहते है।

प्रमस्तिष्क के कार्यात्मक क्षेत्र –

1. संवेदी क्षेत्र – यह मध्य दरार के ठीक पीछे पैराइटल लेब में स्थित क्षेत्र होता है।

- ब्रोजाक क्षेत्र – यह लेटरल सल्कस के ठीक ऊपर तथा प्रेरक पूर्व क्षेत्र होता है।
- वाणी क्षेत्र – यह लेटरल लेब के निचले भाग में स्थित क्षेत्र होता है।
- दृष्टि क्षेत्र – यह आम्क्सीपिटल लेब के निचले सिरे पर स्थित क्षेत्र होता है। जिसमें वस्तुओं के चित्रों एवं अन्य दृष्टि सम्बन्धी संवेदों को गृहण किया जाता है।

2. बेसल को गृहण किया जाता है।

3. थैलेमस

(ख) मध्यमस्तिष्क - मध्यमस्तिष्क, अग्र – मस्तिष्क एवं पश्च - मस्तिष्क के बीच और मस्तिष्क स्तम्भ के ऊपर स्थित रहता है इसमें सेरीब्रल पेडन्कल्स एवं कॉर्पोरा क्वाड्रिजेमिना समावेश होता है। जो प्रमस्तिष्कीय कुल्या को घेरे रहते है जो कि तृतीय एवं चतुर्थ वेन्ट्रिकलों के बीच एक नलिका होती है सेरीब्रल पेडन्कल्स डंटलनुमा रचनाए होती है जो इसकी वेंट्रल सतह पर स्थित होती है। कॉर्पोरा क्वाड्रिजेमिना डॉर्सल सतह पर चार गोलाकार उभार होते है जिन्हें दो जोड़े संवेदी केन्द्रों में विभक्त किया गया है एक को सुपीरियर कोलीकुलि तथा दूसरे को इन्फीरियर कोलीकुलि कहते है तथा सुपीरियर कोलीकुलि द्वारा किसी वस्तु को देखने की क्रिया सम्पन्न होती है।

(ग) पश्च मस्तिष्क – यह मस्तिष्क का सबसे पीछे का भाग होता है जिसमें पोन्स, मेड्यूला ऑब्लांगेटा तथा अनुमस्तिष्क का समावेश रहता है।

(1) पोन्स – यह अनुमस्तिष्क के आगे मध्यमस्तिष्क के नीचे तथा मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर स्थित रहता है यह मस्तिष्क स्तम्भ के बीच का भाग होता है।

(2) मेड्यूला ऑब्लांगेटा – यह मस्तिष्क स्तम्भ का सबसे नीचे का भाग होता है जो ऊपर की ओर पोन्स एवं नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड के बीच स्थित रहता है।

(3) अनुमस्तिष्क या सेरीबेलम – यह प्रमस्तिष्क के ऑक्सिपिटल लोब के नीचे पीछे की ओर उभरा हुआ भाग होता है जो मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर, पोन्स के पीछे कपालीय गुहा में स्थित होता है।

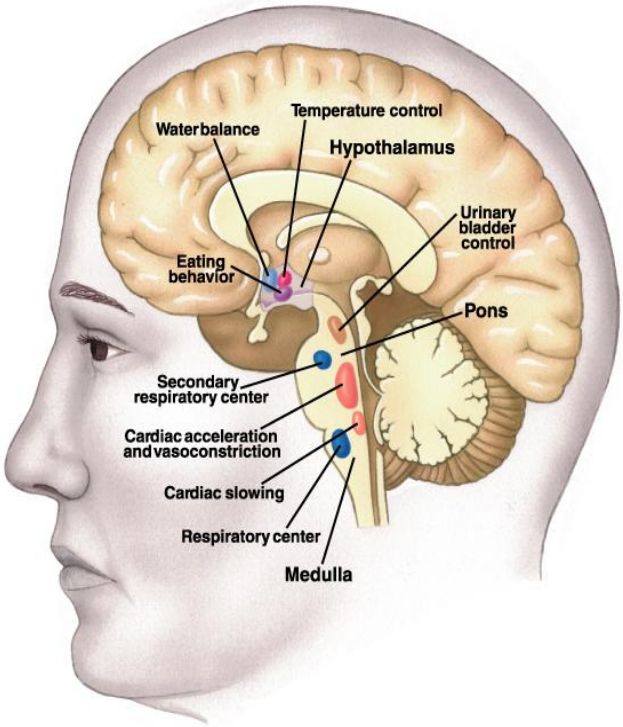

(B) **मस्तिष्क सेतु** (Pons Verily) & यह लघु मस्तिष्क के सामने का एक गोल घुमावदार तथा सफेद रंग का अवयव है। सुषुम्ना, लघु मस्तिष्क तथा वृहद् मस्तिष्क में जाने वाली सभी नाड़ियाँ यहीं से निकलती हैं। इसके नीचे छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं, जिन्हें 'वृन्तपिण्ड' (Corpus mammillae) कहा जाता है। इसी के सामने एक वृहद् पिण्ड (Hypnosis) फिर दृष्टि - योजिका (Optic Chiasm) तत्पश्चात् सुषुम्ना (Medulla Oblongata) अथवा घ्राण-पथ है।

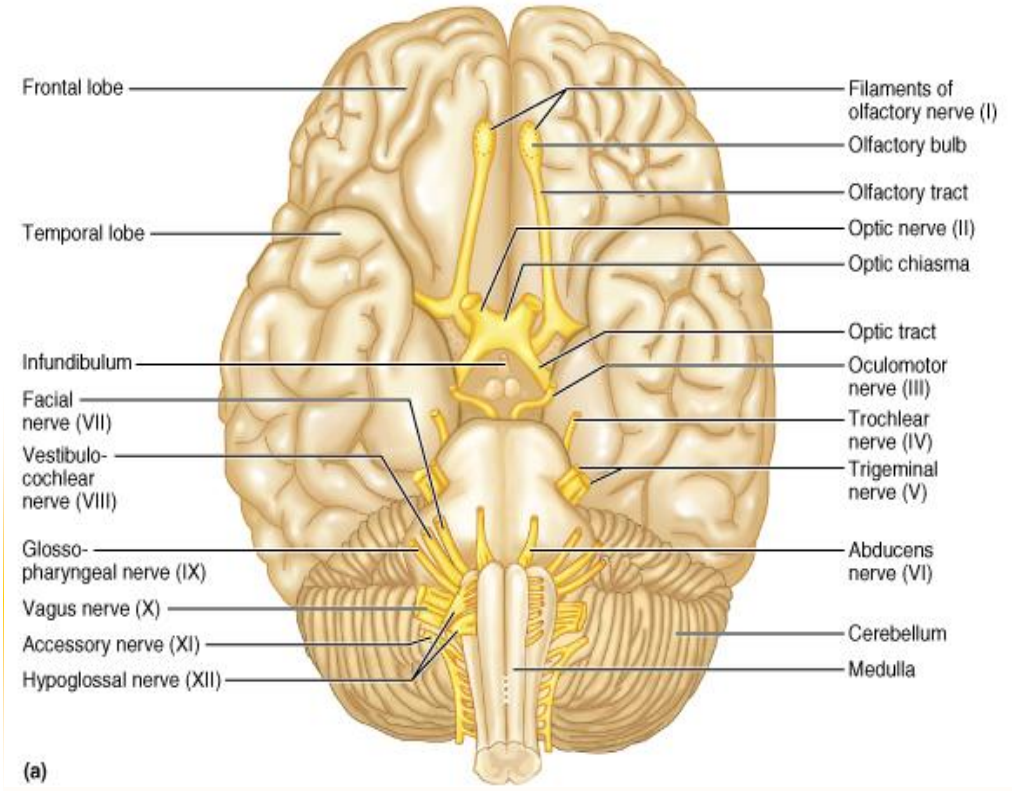

(C) सुषुम्ना नाड़ी - यह एक सुई जैसी शक्ल की नाड़ी है, जिसका लगभग डेढ़ इंच लम्बा सिरा ऊपर की ओर रहता है। इसकी मोटाई सर्वत्र एक समान नहीं होती है। इसका ऊपरी भाग सफेद तथा भीतरी भाग धुमैले रंग का होता है। इसके मध्य भाग में एक छिद्र है, जिसमें एक नाली रहती है और वह मस्तिष्क के चतुर्थ कोष्ठ से जा मिलती है। यह नाड़ी पश्चाद् कपालास्थि के महाविवर से निकलती है।

इसका दूसरा सिरा मेरुदण्ड की मध्य प्रणाली में रहता है। गर्दन में प्रवेश के स्थान पर यह लगभग आधा इंच मोटी होती है तथा आगे चलकर पतली और नुकीली हो जाती है।

इस नाड़ी के दो मुख्य भाग हैं-

1- सुषुम्ना कॉर्ड (Spinal Cord)

2- सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata)

(1) सुषुम्ना कार्ड - लघु मस्तिष्क जहाँ समाप्त होता है, वहीं से सुषुम्ना आरंभ हो जाती है। इसे मस्तिष्क की ही एक शाखा कहा जा सकता है। यह वातनाड़ी के रूप में सुषुम्नाकार्ड (मेरुदण्ड) के भीतर रहती है तथा अपने ऊपरी भाग में 'सुषुम्ना-शीर्ष' से मिली रहती है। मस्तिष्क की भाँति इसके ऊपर भी तीन आवरण चढ़े रहते हैं। यह प्रथम ग्रैवेयक कशेरुक से लेकर प्रथम कटि-कशेरुक तक रहती है। अपने अन्तिम भाग में यह घोड़े की पूंछ के समान नाड़ियों के समूह में बदल

जाती है। इसके ऊपर चढ़े हुए आवरणों को क्रमशः 1. डयूरामेटर, 2. आर्कनायडमेटर, 3. पायामेटर कहा जाता है। इनमें ऊपरी आवरण सबसे मोटा तथा मजबूत होता है।

(2) सुषुम्ना शीर्ष - यह सुषुम्ना काण्ड का ऊपरी भाग है, जो सुषुम्ना नाड़ी से मस्तिष्क का सम्बन्ध जोड़ता है। यह लगभग डेढ़ इंच लम्बा तथा लगभग पौना इंच मोटा होता है। यह अवयव मस्तिष्क का सबसे पिछला भाग है तथा सिर के पीछे एवं गर्दन के ऊपरी भाग में स्थित रहता है। इसका ऊपरी भाग चौड़ा तथा निम्न भाग सँकरा होता है। इसका पृष्ठ भाग मस्तिष्क के चतुर्थ निलय की छत का निर्माण करता है। यह उन तन्त्रिकाओं से मिलकर बना है, जो सुषुम्ना से आरम्भ होकर मस्तिष्क की ओर जाती हैं, तथा लघु मस्तिष्क से आरम्भ होकर सुषुम्ना की ओर जाती हैं। इस स्थान पर तन्त्रिकाएं एक दूसरों को पार करती हुई दांये से बांये तथा बांये से दांयी ओर को जाती हैं। ये तन्त्रिकाएं लघु मस्तिष्क से भी सम्बन्ध रखती हैं। सुषुम्ना शीर्ष का आधार चतुर्थ निलय से मिलकर बना है और यह पतंग के आकार का होता है।

'सुषुम्ना शीर्ष' में शारीरिक क्रिया के प्रायः सभी महत्वपूर्ण केन्द्र रहते हैं, जैसे-रक्त संचरण केन्द्र (Circulation Centre) तथा श्वसन केन्द्र (Respiratory Centre) आदि। निम्नलिखित 12 जोड़ी मस्तिष्कीय-नाड़ियाँ इसी से निकलती हैं-

- घ्राण नाड़ी (Olfactory Nerve) & यह पूर्ण सांवेदानिक (Sensory) नाड़ी मस्तिष्क को घ्राण (गंध) का ज्ञान कराती है।

- दृष्टि नाड़ी (Optic Nerve) & इस सांवेदनिक (Sensory) नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को दृष्टि का ज्ञान होता है। इसके द्वारा देखने की क्रिया सम्पन्न होती है।

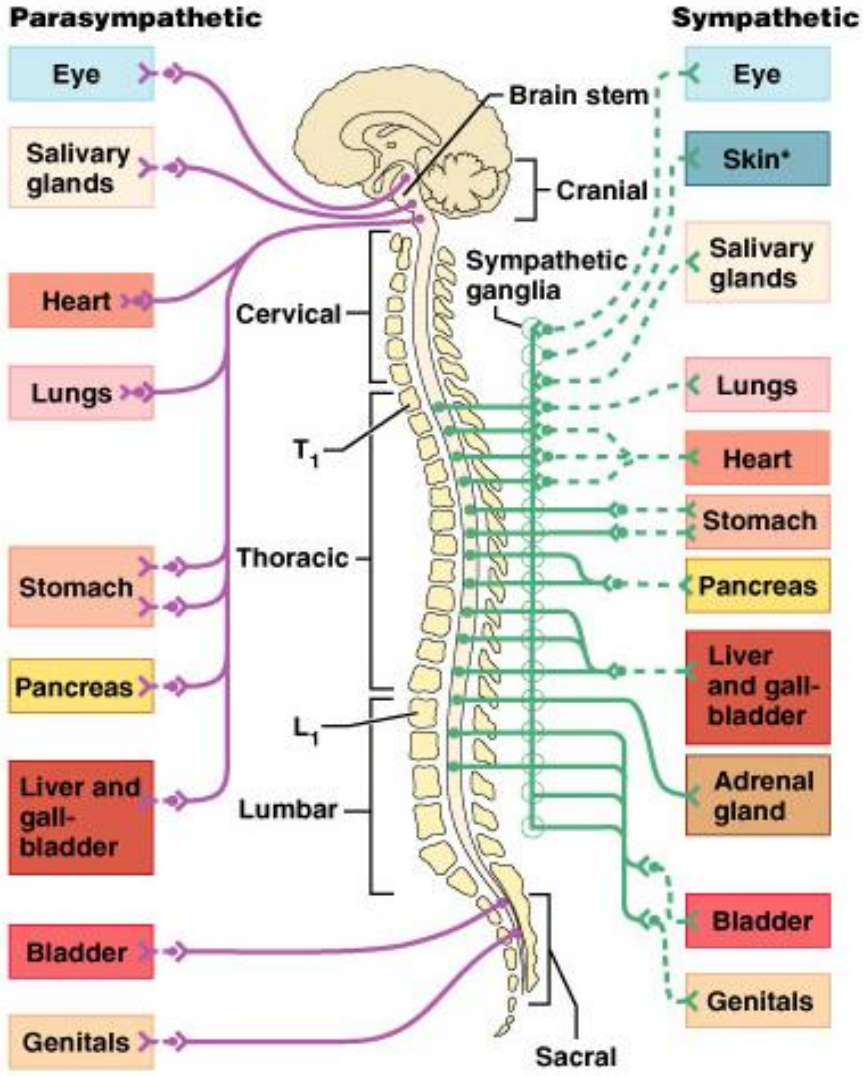

Copyright © The McGraw-Hill Companies, Inc. Permission required for reproduction or display.

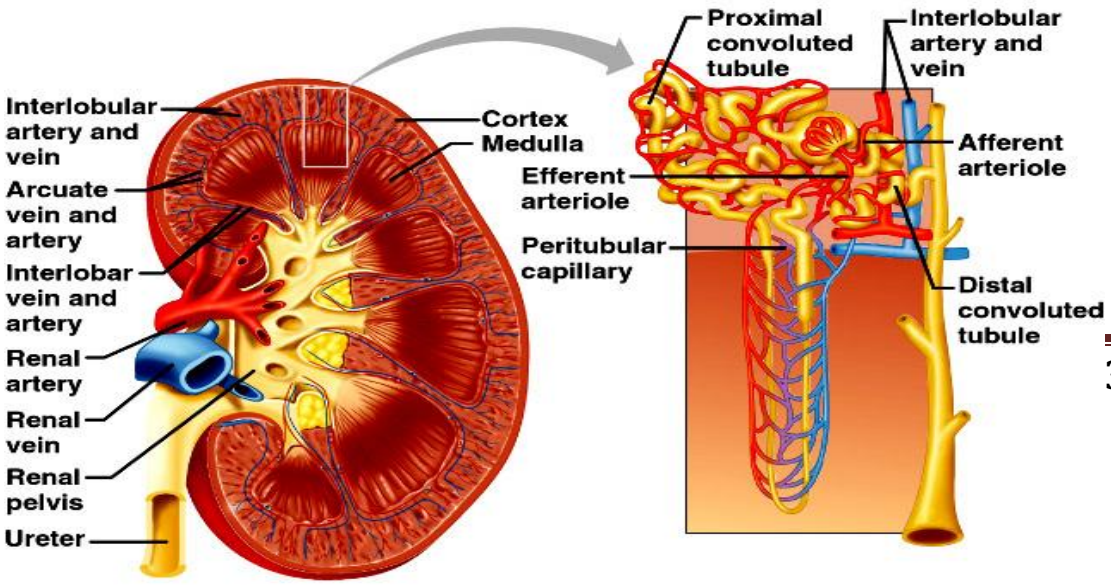

- ने

त्रसंचा
लिनी
तृतीया
नाड़ी
(Oc
ular
-

Motor Nerve) यह गतिवाहक अथवा चेष्टावह (Motor) नाड़ी आँख की मांसपेशियों को गति देकर, अँधेरे तथा उजाले में दृष्टि-नियमन (Accommodation) का कार्य करती है । नेत्र संचालिनी चतुर्थी नाड़ी (Trochlear) & यह भी गतिवाही अथवा चेष्टावह (Motor) नाड़ी है। यह आँख की पलकों को खोलने तथा बन्द करने का कार्य करती है।

- त्रिशाखा नाड़ी (Trigeminal Nerve) यह एक शिरा अर्थात् गतिवाहक एवं संज्ञावह (Sensory and Motor) नाड़ी है। यह जबड़े की मांसपेशियों, जीभ, दाँत तथा मस्तक की मांसपेशियों की क्रियाओं को सम्पन्न करती है।

- नेत्र संचालिकी षष्ठिका नाड़ी (Abducesns) यह भी गति वाहक (Motor) नाड़ी है। यह आँखों के ढेलों पर लगाम जैसा काम करती है। इसके प्रभाव से दोनों नेत्र-गोलक किसी दिशा में एक ही साथ घूमते हैं, जिसके कारण दृष्टि-क्षेत्र में भी अधिक स्पष्टता आ जाती है।

- मौखिकीया नाड़ी (Facial) & यह भी गतिवाहिका (Motor) नाड़ी है। यह चेहरे की मांसपेशियों में संकोच उत्पन्न करके क्रोध, घृणा, प्रसन्नता, वैराग्य, गंभीरता आदि के भाव प्रकट करती है।

- नाड़ी (Auditory) यह सांवेदनिक (Sensory) नाड़ी है। यह श्रवण - शक्ति (Hearing) तथा शरीर के सन्तुलन (Balance) को स्थिर करती है।

- जिह्वा कण्ठीय नाड़ी (Glassy Pharyngeal) यह गतिवाहक तथा संज्ञावह (Sensory and Motor) नाड़ी है। यह जिह्वा के अग्रिम 2/3 भाग पर स्वाद तथा निगलने वाली मांसपेशियों (swallowing Muscles) के कार्यों पर नियन्त्रण करती है।

- वेगस नाड़ी (Vegas) यह भी भिन्न प्रकार की (Sensory and Motor) नाड़ी है। यह स्वरयन्त्र (Larynx)] हृदय (Heart)] फेफड़े (Lungs)] आमाशय (Stomach)] यकृत (Liver)] अग्नाशय (Pancreas)] प्लीहा (Spleen) तथा आँतें (Intestines) आदि अंगों के कार्य को नियन्त्रित करती है।

- सहायिका नाड़ी (Accessory) यह चेष्टावह (Motor) वर्ग की नाड़ी है। इसका महत्व नाममात्र का होता है। यह गर्दन तथा पीठ की मांसपेशियों की गति के ऊपर नियन्त्रण रखती है।

- जिह्वा अधोवर्ती नाड़ी (Hypoglossal) यह भी चेष्टावह (Motor) नाड़ी है। यह बोलते समय अथवा भोजन चबाते समय जिह्वा की मांसपेशियों पर नियन्त्रण रखती है तथा उनके समाचार संवेदनाओं आदि से मस्तिष्क को परिचित कराती है साथ ही मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं को सम्बन्धित अवयवों की मांसपेशियों तक पहुँचा कर उन्हें कार्यरूप में परिणत कराने में सहायक बनती है।

- सुषुम्ना से उत्पन्न अन्य तन्त्रिकाएँ **(**Spinal Nerves**)** सुषुम्ना से नाड़ियों के कुल 31 जोड़े निकलते हैं। ये नाड़ियाँ सुषुम्ना से दो ओर से जुड़ी रहती हैं तथा दोनों ओर के छिद्रों से निकल कर सम्पूर्ण शरीर में फैली रहती हैं। ये नाड़ियाँ जिन दो भागों से जुड़ी रहती हैं, उन्हें क्रमशः 1) पूर्व मूल (Anterior or Motor) तथा 2) पाश्चात्यमूल (Posterior) कहा जाता है। कुछ स्थानों पर ये नाड़ियाँ गुच्छे का रूप ग्रहण कर लेती हैं। नाड़ियों के 31 जोड़े निम्नांकित हैं-

1. कण्ठदेशीय अथवा ग्रैव तन्त्रिकाऐं (Cervical Nerves) - 8
2. वक्षदेशीय तन्त्रिकाएँ (Thoracic Nerves) - 12
3. कटि स्थानीय तन्त्रिकाएँ (Lumber Nerves) - 5
4. त्रिक-स्थानीय तन्त्रिकाएँ (Sacral Nerves) - 5
5. अनुत्रिक अथवा गुदास्थि तन्त्रिका (Coccygeal Nerves) - 1

कुल - 31 जोड़े

7.4.2 संवेदनात्मक अथवा स्वचालित तंत्रिका तंत्र - शरीर के वे अंग, जिनका निर्माण अनैच्छिक मांसपेशियों (Involuntary Muscle Fibers) द्वारा हुआ है, स्वतंत्रता पूर्वक संचालित होते हैं और उनकी गति का ज्ञान भी हमें नहीं हो पाता, जैसे- हृदय, गर्भाशय, उदर, प्लीहा, आँत आदि 'स्वचालित - तन्त्रिका तन्त्र' ऐसे ही अंगों का संचालन करते हैं। इन अनैच्छिक अंगों का संचालन करने वाली दो प्रकार की तन्त्रिकाएँ (Nerves) होती हैं -

1. त्वरक तन्त्रिकाएँ (Accelerator Nerves) - ये तन्त्रिकाएँ अंगों की क्रिया को तेज करती हैं। इन तन्त्रिकाओं की उत्तेजना के कारण ही इनसे सम्बन्धित अंगों की क्रिया में तेजी आती है। इन्हें 'अनुकम्पी तन्त्रिका' भी कहा जाता है।

2. संदमक तन्त्रिकाएँ (Depressor or Inhibitory Nerves) & इन तन्त्रिकाओं की उत्तेजना से पहले वाले अंगों की शक्ति में कमी आती है। जब ये तन्त्रिकाएँ अधिक उत्तेजित हो जाती है, तब इनसे सम्बन्धित अंगों की क्रिया एकदम रुक जाती है। इन्हें 'परानुकम्पी तन्त्रिका' भी कहा जाता है।

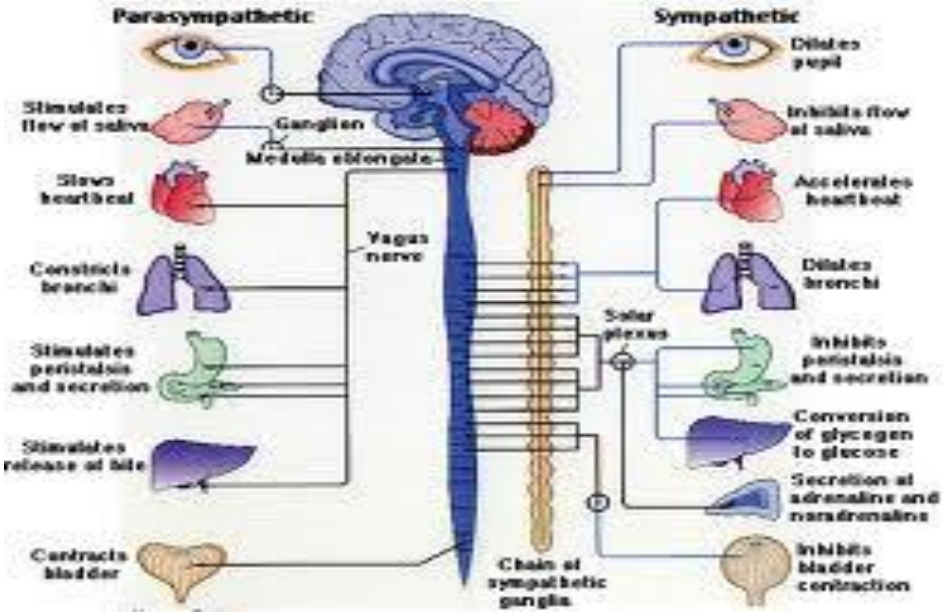

संवेदनात्मक अथवा स्वचालित अथवा अनैच्छिक तन्त्रिकाएँ जिन अंगों पर प्रभाव डालती हैं, वे निम्न हैं-

1. लार ग्रंथियाँ

2. स्वर यंत्र

3. फेफड़े

4. हृदय

5. धमनियाँ

6. आमाशय

7. आँतें

8. वृक्क

9. गर्भाशय

10. अग्नाशय

11. यकृत

12. त्वचा

7.4.3 परिसरीय तन्त्रिका तंत्र –

तन्त्रिका तंत्र के इस भाग में मस्तिष्क से निकलने वाली 12 जोड़ी कपालीय तन्त्रिकाओं एवं स्पाइनल कॉर्ड से निकलने वाली 31 जोड़ी स्पाइनल तन्त्रिकाओं का समावेश होता है जिनसे शाखाये निकलकर शरीर के विभिन्न अंगों एवं ऊतकों में पहुँचाती है।

1. तन्त्रिका – तंत्रिका, केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के बाहर मस्तिष्क एवं स्पाइनल कोर्ड को शरीर के विभिन्न अंगों से सम्बन्ध रखने वाली तंत्रिका तन्तुओं की एक-एक पूलिका (बंडल) अथवा पूलिकाओं का एक समूह होती है।

तंत्रिकाएँ निम्न तीन प्रकार की होती है-

1. संवेदी या अभिवाही तंत्रिकाएँ

2. प्रेरक या अपवाही तंत्रिकाएँ

3. मिश्रित तंत्रिकाएँ

- स्पाइनल तंत्रिकाएँ – स्पाइनल कौर्ड से 31 जोड़ी स्पाइनल तंत्रिकाएँ निकलती है जो सटी हुई बर्टीबीज वर्तिब्रीज से बने इन्टरवर्टिब्रल रन्ध्रों से होकर वर्टिब्रल केनाल के बाहर निकलती है ये तंत्रिकाएँ निम्नलिखित है –

1. 8 जोड़ी सर्वाइकल तंत्रिकाएँ

2. 12 जोड़ी थॉरेसिक तंत्रिकाएँ

3. 5 जोड़ी लम्बर तंत्रिकाएँ

4. 5 जोड़ी सैक्रल तंत्रिकाएँ

5.1 जोड़ी कॉक्सिजियल तंत्रिकाएँ

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) वृहद मस्तिष्क.....खण्डों में विभाजित होता है।

(ख) सुषुम्ना नाड़ी के.....और.....दो मुख्य विभाग हैं।

(ग) .....तंत्रिकाएँ अंगों की क्रिया को तेज करती हैं।

(घ) संदमक तंत्रिकाओं को.....तन्त्रिका भी कहते हैं ।

(ड.) .....नाड़ी बोलते समय अथवा भोजन चबाते समय जिह्वा की मांसपेशियों पर नियन्त्रण रखती हैं।

(च) सुषुम्ना से नाड़ियों के कुल.....जोड़े निकलते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) मस्तिष्क सुषुम्ना तंत्र में अनेच्छिक तंत्रिकाएँ होती हैं तथा संवेदनात्मक तंत्र में ऐच्छिक तंत्रिकाएँ होती है।

(ख) सुषुम्ना शीर्ष में शारीरिक क्रिया के प्राय: सभी महत्वपूर्ण केन्द्र रहते हैं।

(ग) जब संदमक तंत्रिकाएँ अधिक उत्तेजित हो जाती हैं तब इनसे संबंधित अंगों की क्रिया तेज हो जाती है।

(घ) लघु मस्तिष्क का बाहरी भाग भूरे पदार्थ से तथा भीतरी भाग श्वेत पदार्थ से भरा रहता है।

7.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ चुके हैं कि तंत्रिका तंत्र शरीर का सबसे महत्वपूर्ण तंत्र है तथा मानव शरीर की देखभाल तथा शारीरिक अंगों का समुचित रूप से संचालन करने का दायित्व तंत्रिका तंत्र पर ही होता है। तंत्रिका तंत्र में निहित नाड़ियॉं पूरे शरीर में फैली होती है तथा किसी भी मानसिक तथा शारीरिक संवेदना को मस्तिष्क में पहुँचाने का कार्य करती हैं। मस्तिष्क में पहुँचने के बाद ही हमें उस संचेदना की अनुभूति होती है। तंत्रिका तंत्र के दो प्रमुख भाग हैं पहला मस्तिष्क-सुषम्ना संस्थान तथा दूसरा संवेदनात्मक संस्थान। मस्तिष्क सुषम्ना संस्थान में ऐच्छिक तंत्रिकाएँ होती हैं तथा यह मस्तिष्क, मस्तिष्क सेतु, सुषुम्ना नाड़ी, सुषुम्ना कार्ड और सुषुम्ना शीर्ष में विभाजित होता है। इसी प्रकार संवेदनात्मक संस्थान त्वरक तंत्रिकाएँ तथा संदनक तंत्रिकाओं में विभाजित होता है। इस प्रकार शरीर की ऐच्छिक व अनैच्छिक क्रियाओं का सम्पादन होता है।

7.6 शब्दावली

चेब्टावह नाड़ी – यह मोटर नाड़ी भी कही जाती है। ये ऐच्छिक पेशियों में आवेगों का मुख्य पथ बनते है।

ऐच्छिक–जिस क्रिया पर हमारा नियंत्रण रहता है।

अनैच्छिक- जिस क्रिया पर हमारा नियंत्रण नही रहता रहता है।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) चार

(ख) सुषुम्ना कॉर्ड, सुषुम्ना शीर्ष

(ग) त्वरक

(घ) परामुकम्पी

(ड.) जिह्वा अधोवर्ती/हाइपोग्लोसल

(च) 31

2. सत्य/असत्य बताइए

(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) असत्य

(घ) सत्य

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

4. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

5. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

6. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

7. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

8. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अग्र मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

2. तन्त्रिका तन्त्र की रचना व क्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई 8 -उत्सर्जन तंत्र की रचना एवं कार्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 उत्सर्जन तंत्र : एक परिचय

8.4 उत्सर्जन संस्थान के अवयव

8.5 फेफड़े

8.6 त्वचा

8.7 बड़ी आंत

8.8 मलाशय

8.9 वृक्क अथवा गुर्दे

8.9.1 गुर्दे के कार्य

8.9.2 मूत्राशय

8.10 सारांश

8.11 शब्दावली

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने तंत्रिका तंत्र की रचना व कार्यविधि का अध्ययन किया। वास्तव में मानव शरीर की देखभाल तथा शारीरिक अंग-अवयवों की के सफल संचालन का महत्वपूर्ण कार्य तन्त्रिका तंत्र से होता है। इसके साथ-साथ पूरे शरीर में भोजन के चपापचय तथा शरीर की कोशिकाओं में निरन्तर होने वाली टूट-फूट एवं मरम्मत से कई प्रकार के वर्ज्य पदार्थ निष्कासित होते है। जिसका वर्णन उत्सर्जन तन्त्र में आता है।

इस इकाई में आप शरीर के एक महत्वपूर्ण तंत्र उत्सर्जन तंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे तथा आप जानेंगे कि किस प्रकार उत्सर्जन तंत्र अपने विभिन्न अवयवों की सहायता से शरीर के दूषित पदार्थो को बाहर निकालने में सहायता प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त उत्सर्जन तंत्र किस प्रकार से कार्य करता है तथा किस प्रकार शरीर को रोग रहित रखता है इसके बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- उत्सर्जन तंत्र के बारे में सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- उत्सर्जन तंत्र की कार्य प्रणाली के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।
- उत्सर्जन संस्थान के मुख्य अवयवों को विस्तार से जान सकेंगे।
- फेफड़ों की संरचना एवं कार्य प्रणाली को उत्सर्जन तंत्र के परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
- त्वचा की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- बड़ी आंत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मलाशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- गुर्दो की संरचना एवं कार्य प्रणाली को भी जान सकेंगे।
- मूत्राशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली की विवेचना कर सकेंगे।
- उत्सर्जन क्रिया की संरचना एवं कार्य प्रणाली के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दें सकेंगे।

8.3 उत्सर्जन संस्थान-एक परिचय

जीवित रहने, स्वस्थ रहने के लिए प्रकृति ने इस शरीर में पोषण जैसी महत्वपूर्ण प्रणाली के साथ निष्कासन प्रणाली भी बनाई है। यह प्रणाली यदि शरीर में ठीक प्रकार से कार्य न करें तो शरीर से वर्ज्य पदार्थ नहीं निकल पायेंगे एवं शरीर रोगों का घर बन जायेगा। भोजन के पाचन तथा शरीर की अन्य कोशिकीय क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जो निरन्तर कोशिकाओं की टूट-फूट होती रहती है। इस टूट-फूट एवं मरम्मत की क्रियाओं के फलस्वरूप बहुत से दूषित पदार्थ शरीर में एकत्रित होते रहते है। इन दूषित पदार्थो को शरीर विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा बाहर निकालता रहता है यही उत्सर्जी अंग उत्सर्जन संस्थान का निर्माण करते हैं। वृक्क, त्वचा, फेफड़े, बड़ी आंत, मूत्राशय एवं मलाशय इत्यादि सभी उत्सर्जक अंग हैं। वृक्क रक्त से यूरिन अम्ल, जल आदि को अलग करता है तथा त्वचा अतिरिक्त जल एवं दूषित पदार्थो को, फेफड़ें कार्बन डाइऑक्साइड एवं बड़ी आंत (दूषित) भोजन को शरीर से बाहर निष्कासित करती हैं।

8.4 उत्सर्जन संस्थान के अवयव

उत्सर्जन संस्थान के अन्तर्गत निम्नलिखित अवयवों की गणना की जाती है-

- फेफड़े (Lungs)
- त्वचा (Skin)
- बड़ी आँत (Large Intestines)
- वृक्क या गुर्दे (Kidney)
- मूत्राशय (Bladder)
- मलाशय (Rectum)

उत्सर्जन संस्थान के अवयवों की कार्य-प्रणाली निम्नानुसार होती है-

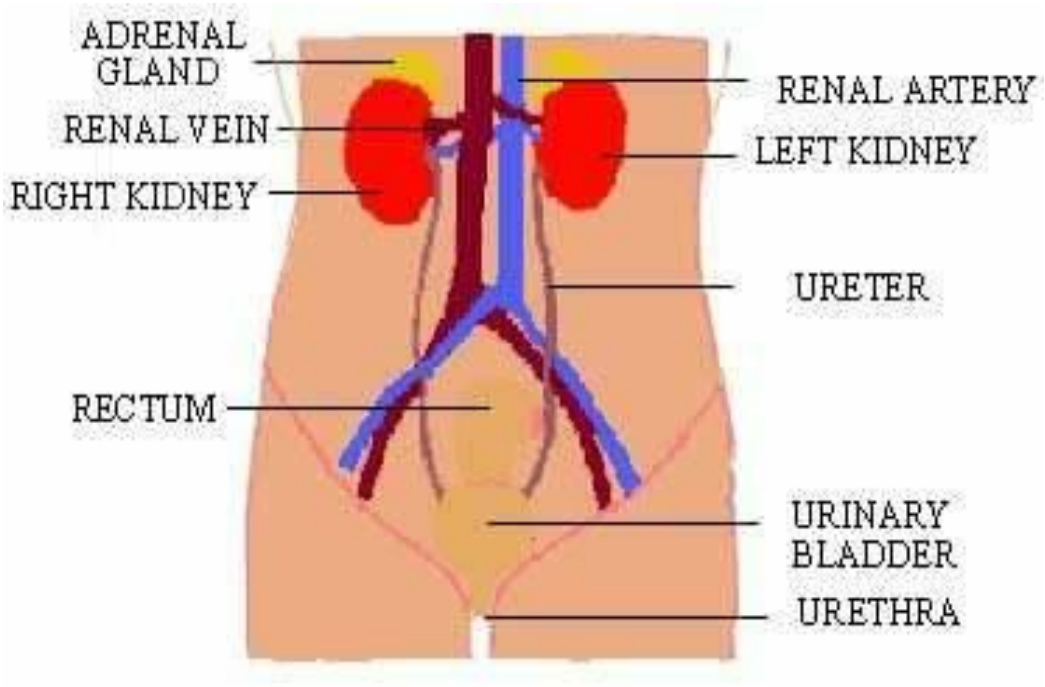

Image of the Excretory System

8.5 फेफड़े

फेफड़ों के द्वारा रक्त की विषाक्त गैस (कार्बन डाई ऑक्साइड) को बाहर निकाला जाता है। यह स्पंजी शंक्वाकार होते हैं तथा वक्ष गुहा के दोनों ओर स्थित होते हैं एवं वे प्रत्येक शंक्वांकार फेफड़ा शरीर की मध्य रेखा के दोनों ओर स्थित होते है तथा यह मीडियास्टाइनम द्वारा एक दूसरे से पृथक रहते है तथा गर्दन के निचले भाग में स्थित क्लेविकल अस्थि से डायफ्राम तक कैसे होते हैं। प्रत्येक फेफड़े को दोहरी परत वाली सीरमी कला जिसे प्लूरा कहा जाता है घेरे रहती है। प्रत्येक फेफड़ा खण्डों में विभाजित होता है तथा बॉया दो खण्डों में तथा दायां तीन खण्डों में विभक्त रहता है और दोनों

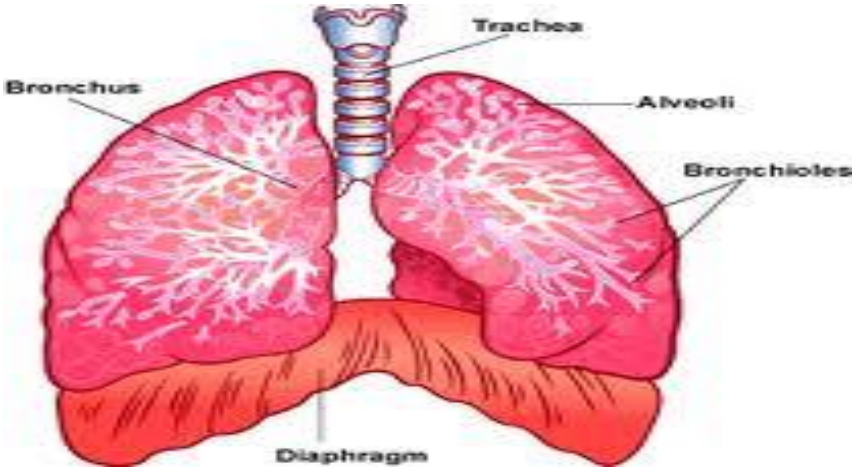

फेफड़ों के ये खण्ड पुन: छोटे-छोटे भागों में विभक्त होते हैं एवं छोटे-छोटे खण्ड भी पुन: कई छोटी-छोटी इकाइयों से मिलकर बनते हैं, इन्हें 'लोब्यूल्स' या खण्डल कहा जाता है।

लोब्यूल्स में वायुकोष भरे होते हैं एवं यही फेफड़ों के श्वसनी भाग होते हैं यही पर गैसे का आदान-प्रदान होता है तथा लोब्यूल्स के चारों ओर धमनी तथा शिराओं का जाल फैला रहता हैं। इन्ही के द्वाव गैस का परिभ्रमण पूरे शरीर में सम्भव हो पाता है।

8.6 त्वचा

शरीर की अशुद्धियों को पसीने के रूप में बाहर निकालने का कार्य **'त्वचा'** करती है। पसीने में **98** प्रतिशत जल तथा **2** प्रतिशत शारीरिक-अशुद्धियाँ अम्ल तथा खनिज द्रवों के रूप में रहती है तथा भोजन के प्रकार एवं ऋतु के प्रभावानुसार पसीने की मात्रा बढ़ जाती है और ग्रीष्म ऋतु में जब पसीना खूब निकलता है, तब मूत्र की मात्रा घट जाती है, परन्तु शीत ऋतु में पसीना बहुत कम निकलने पर मूत्र की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। त्वचा में तंत्रिक तन्तुओं का जाल बिछा रहता है और त्वचा शरीर के तापक्रम को साम्यावस्था में बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य करती है।

त्वचा परत – 1. बाह्य त्वचा/ एपीडर्मिस

2. अन्त: त्वचा/ डर्मिस

बाह्य त्वचा शरीर के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न मोटाई की होती है। हथेली, तलवों की त्वचा मोटी होती है। हथेली के पिछले भाग, पलकों, होंठों आदि की त्वचा पतली और कोमल होती है।

अन्त: त्वचा कठोर होती है एवं लचीली होती है। इसमें वसा केशाएँ, रक्त वाहिकाएं, लसीका वाहिकाएँ एवं अनैच्छिक पेशियों भी अल्प मात्रा में उपस्थित होते हैं।

उत्सर्जी अंग के रूप में स्वेद ग्रन्थियां बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। स्वेद ग्रन्थियां अन्त: त्वचा में कुण्डली के आकार में उत्सर्णी वाहिना की बनी होती है। यह छिद्र द्वारा त्वचा की सतह पर खुलती है। समस्त शरीर में यह असंख्य मात्रा में पाई जाती है और शरीर में यह कहीं-कहीं अधिक और कहीं-कहीं कम मात्रा पाई जाती हैं। पसीना निरन्तर शरीर से निकलता रहता है। इसी कारण शरीर का ताप नियन्त्रित होता है एवं विजातीय द्रव्य बाहर निकलते रहते है। पसीना सक्रिय स्राव है एवं इसका संगठन जल, लवण एवं अन्य अल्प व्यर्थ पदार्थों का होता है।

सामान्यतया पसीना एवं स्वस्थ सामान्य वयस्न व्यक्ति में 500-600 मि0ली0 उत्सर्जित होता है। मानसिक अशान्ति में, मिर्च-मसाला युक्त भोजन के समय उत्तेजित अवस्था में, रक्त शर्करा व श्वासावरोध बढ़ जाने पर पसीना अधिक निकलता है। त्वचा का यह महत्वपूर्ण अंग तत्व नियन्त्रण, जल संतुलन हेतु लवण सन्तुलन हेतु, अम्ल क्षार नियन्त्रण, त्वचा की कोमलता के लिये अत्यावश्यक अंगक है।

8.7 बड़ी आँत

यह शरीर के विषैले तथा अपशिष्ट पदार्थ को मल के रूप में बाहर निकालने का कार्य करती है और बड़ी आंत एक महत्वपूर्ण उत्सर्जी अंग है व बड़ी आंत पाचन-प्रणाली का अंत का सबसे अन्तिम भाग है। बड़ी आंत की लम्बाई लगभग 1.5 मीटर तक होती है। छोटी आंत का पचा हुआ भोजन बड़ी आंत में आने के बाद पुन: छोटी आंत में वाल्व होने के कारण नहीं जा पाता है तथा बड़ी आंत जो कि 'कोलन' नाम से भी जानी जाती है इसे निम्न सात भागों में बॉटा गया है जिनका विवरण इस प्रकार है –

1. सीकम भाग

2. आरोही भाग

3. अनुप्रस्थ भाग

4. अवरोही भाग

5. सिग्मॉयड कॉलन

6. मलाशय

7. गुद नली

8.8 मलाशय

बड़ी आँत से आया हुआ मल इसमें होता हुआ गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है तथा इसकी रचना कोलन (बड़ी ऑत) के समान होती है परन्तु इसकी पेशीय परत अधिक मोटी होती है।

8.9 वृक्क अथवा गुर्दे (Kidney)

वृक्क- शरीर में जो अवयव मूत्र-निर्माण का कार्य करते हैं, उन्हें वृक्क अथवा गुर्दे कहा जाता है। ये संख्या में **2** होते हैं (**1**) दाँया और (**2**) बाँया। ये गुर्दे रीढ़ के दायीं ओर तथा बायीं ओर **12**वीं पसली के सामने तथा चौथे कटि-कशेरूक के बीच रहते हैं। इन ग्रंथियों का आकार **'**गुठली**'** अथवा **'**लोबिये के बीज**'** जैसा होता है। एक वृक्क आकार में **5** इंच लम्बा, 2.5 इंच चौड़ा तथा **1** इंच मोटा तथा लगभग **150** ग्राम भार वाला होता है। इसका रंग कुछ बैंगनी जैसा होता है। दाँया वृक्क कुछ नीचे तथा बाँया वृक्क कुछ ऊपर की ओर होता है। वृक्क के ऊपर एक आवरण सा चढ़ा रहता है। प्रत्येक वृक्क का बाहरी भाग कुछ उत्तल अर्थात उभरा तथा भीतरी भाग कुछ अवतल (दबा) होता है। वृक्क के उपरी सिरे पर टोपी जैसी एक प्रणाली विहीन ग्रंथि होती है, जिसे उपवृक्क कहा जाता है। इसके धँसे हुए भाग के बीच के छिद्र को **'**हाइलम**'** (Hilum) कहते हैं। प्रत्येक वृक्क के भीतर लगभग डेढ़ लाख अत्यन्त महीन नलिकाए (Tubules) होती हैं, जो आकार में एक दूसरे से भिन्न होती हैं।

8.9.1 गुर्दे के कार्य - वृक्क के दोनों ओर से एक-एक नली निकलती है, जिन्हें 'मूत्र-प्रणाली' (Ureters) कहा जाता है। यह प्रणालियाँ मूत्र के तैयार होते ही उसे मूत्राशय (Urinary Bladder) में पहुँचाने का कार्य करती है। मूत्राशय गुर्दे के भीतर ही रहता है। मूत्र-प्रणाली एक छोटी सी नली होती है जो कीड़े की भांति गति करती है। इसका विस्तार गुर्दे से मूत्राशय तक ही रहता है। इनकी लम्बाई 10 से 12 इंच तक पायी जाती है। इनके दो सिरे होते हैं। ऊपर वाला चौड़ा सिरा वृक्क से तथा नीचे वाला पतला सिरा 'वस्तिगह्वर' (Pelvis) में 'मूत्राशय' (Bladder) से मिला रहता है। मूत्र पहले वृक्क (Kidney) की मीनारों (Pyramids) से मूत्र-प्रणाली के चौड़े भाग में आता है, फिर इसके द्वारा बहता हुआ मूत्राशय में जा पहुँचता है।

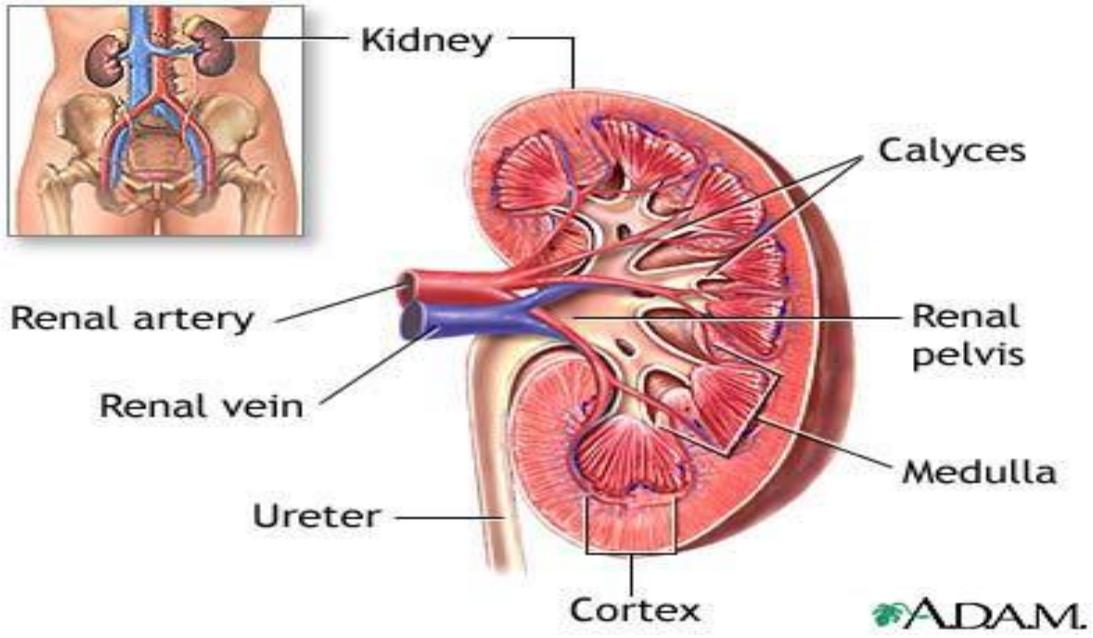

वृक्क का कार्य बूँद-बूँद करके मूत्र बनाना तथा उसे मूत्राशय में भेजना है। स्मरणीय है कि मूत्र के मुख्य अवयव वृक्क के भीतर तैयार न होकर शरीर के अन्य भागों में ही बनते हैं, वृक्क उन्हें रक्त से अलग करके 'मूत्र का रूप' दे देता है तथा वृक्क का सबसे महत्वपूर्ण कार्य रकत् को छानना व छने हुए पदार्थो में से शरीर के लिए उपयोगी आवश्यक पदार्थों को पनु: अवशोषित करना एवं गन्दगियों को बाहर निकालन है। और यह भोजन के चयापचय के आन्तरिक उत्पाद जल, यूरिया, यूरिक ऐसिड आदि का उत्सर्जन करने का कार्य करते हैं साथ ही शरीर में अथवा रक्त में स्थित कुछ हानिकारक दवाइयों, औषधियों, विषैले अथवा रासायनिक पदार्थों के उत्सर्जन का भी कार्य करते है तथा शरीर में स्थित तरल के परासरणी दाब को बनाए रखने में मदद करते है व शरीर के तरलों के आयतन, उनकी तानता एवं प्रतिक्रिया को नियन्त्रित करते है। करने में मदद करता है।

Venous blood is returned through a series of vessels that generally correspond to the arterial

8.9.2 मूत्राशय - इसे 'वस्ति' अथवा 'मसाना' भी कहते हैं। यह एक थैली जैसी होती है, जिसमें मूत्र-प्रणालियों द्वारा लाया गया मूत्र संचित होता रहता है। यह उदर में सबसे निचले भाग में, (Pelvis) में रहता है। पुरूषों में यह मलांग के सामने की ओर तथा स्त्रियों में जरायु के सामने वाले भाग में रहता है। खाली होने पर आकार 'तिकोना' होता है तथा भर जाने पर यह बिल्कुल 'गोल' हो जाता है। मूत्र से भर जाने पर यह उठा रहता है। इसके भर जाने पर मनुष्य को मूत्र-त्यागने की इच्छा होती है।

मूत्राशय सामान्यतः 5 इंच लम्बा तथा 3 इंच चौड़ा होता है। इसमें 7 औंस तक मूत्र समा सकता है। पुरूषों में इसके पीछे शुक्राशय तथा स्त्रियों में गर्भाशय (Uterus) की स्थिति रहती है और जिस रास्ते से मूत्र निकलता है उसे मूत्रमार्ग कहते हैं। यह मूत्राशय के एकदम निचले भाग से एक नली के रूप में आरंभ होता है। पुरूषों में यह लगभग 8-9 इंच लम्बा होता है तथा इसमें 2 झुकाव या घुमाव होते हैं। इसके प्रारंभिक भाग में प्रोस्टेट ग्रंथि (Prostate Gland) रहती है। यह मार्ग प्रोस्टैंट ग्रंथि के आगे से शिश्न (Penis) के निम्न भाग तक रहता है तथा शिश्न (लिंग) के बहिर्भाग पर जो छिद्र होता है, वहाँ समाप्त होता है। लिंग के इस छिद्र को 'मूत्र बहिर्द्वार' कहते हैं। इसके मार्ग में दो घुमाव होते हैं। शिश्न के एक ही छिद्र से मूत्र तथा शुक्र (वीर्य) दोनों के अलग-अलग निकलने की क्रियाऐं सम्पन्न होती हैं।

स्त्रियों का मूत्र मार्ग 1.5 इंच लम्बा होता है। उसकी नली योनि की दीवार से मिली रहती है तथा उसका छिद्र योनि-छिद्र से लगभग आधा इंच ऊपर की ओर रहता है। स्त्रियों के मूत्र मार्ग से केवल मूत्र ही निकलता है।

'मूत्र' एक प्रकार का तरल पदार्थ है, जिसमें रक्त से छोड़ा हुआ दूषित पदार्थ रहता है। जब रक्त भ्रमण करता हुआ वृक्क (Kidney) में पहुँचता है, तो उस समय वृक्क अनावश्यक पदार्थों के रूप में पृथक कर जलीय तरल अर्थात् 'मूत्र' के रूप में मूत्राशय (Bladder) में धकेल देता है और इसके बाद वह मूत्र नली द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

मूत्र का रंग स्वच्छ पीला अथवा भूरा होता है। समयानुसार इसके रंग में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। जैसे-रात भर सोने के बाद प्रातःकाल इसका रंग गहरा होता है। गर्मी के दिनों में भी इसका रंग गहरा हो जाता है। मूत्र की मात्रा घटने से भी रंग गहरा हो जाता है तथा बढ़ने पर हल्का हो जाता है। रूग्णावस्था में भी मूत्र का रंग बदल जाता है।

मूत्र में 960 भाग जल तथा 40 भाग ठोस-पदार्थ (Solids) पाये जाते हैं। 24 घंटे में प्रायः 2-2.5 औंस ठोस-पदार्थ मूत्र द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकलते हैं जिसमें यूरिया, सोडियम तथा क्लोराइड की मात्रा ही अधिक पायी जाती है।

जब व्यक्ति रोग की अवस्था में होता है तो उसके मूत्र से रक्त, पीब, पित्त, शर्करा इत्यादि अस्वाभाविक पदार्थ भी निकलते हैं।

सामान्य स्थिति में एक व्यस्क मनुष्य 24 घण्टे में लगभग 1 से 1.5 किलो तक मूत्र का त्याग करता है। इससे कम अथवा अधिक मात्रा में मूत्र का निकलना ठीक नहीं माना जाता। ग्रीष्म ऋतु में पसीना अधिक निकलने पर मूत्र की मात्रा में कमी आ जाती है तथा शीत ऋतु में वृद्धि हो जाती है-यह बात पहले भी कही जा चुकी है।

अन्य कार्य- 'वृक्क' हृदय का भी एक महत्वपूर्ण सहायक अंग है। यदि किसी कारणवश वृक्क के कार्य में रूकावट पड़ जाती है तो रक्त के भीतर अम्ल तथा क्षार के अनुपात में अन्तर आ जाता है एवं रक्त का दबाव अधिक बढ़ जाता है।

वृक्क प्लाज्मा (Plasma) पर भी नियंत्रण (Control) करता है तथा ग्लूकोज (Glucose) एवं यूरिया (Urea) नामक तत्वों के घनत्व को भी नियन्त्रित रखता है।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) सामान्य सिथति में एक व्यस्क मनुष्य 24 घण्टे में लगभग.....किलो तक मूत्र त्याग करता है।

(ख) शरीर में गुर्दो की संख्या.....है।

(ग) वृक्क.....और.....नामक तत्वों के घनत्व को नियंत्रित रखता है।

(घ) मूत्र में.....भाग जल तथा.....भाग ठोस पदार्थ पाये जाते हैं।

(ड.) वृक्क के दोनों ओर से एक-एक नली निकलती है, जिन्हें.....कहते हैं।

(च) दायां फेफड़ा.....खण्डों में तथा बायां फेफड़ा.....खण्डों में बंटा होता है।

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) 'वृक्क' हृदय का भी एक महत्वपूर्ण सहायक अंग है।

(ख) किसी कारणवश यदि वृक्क के कार्य में रूकावट पड़ जाती है तो रक्त का दवाब कम हो जाता है।

(ग) बड़ी आंत का अन्तिम भाग सीकम भाग है।

8.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई से आप उत्सर्जन तंत्र का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके है उत्सर्जन क्रिया को समझ चुके हैं। उत्सर्जन क्रिया द्वारा शरीर के निस्सार द्रव्य बाहर निकल जाते हैं तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है। उत्सर्जनक्रिया के मुख्य अंग फेफड़े, त्वचा, बड़ी आंत, मलाशय तथा गुर्दे हैं जो शरीर के विभिन्न विषाक्त व हानिकारक पदार्थों को निकालने में सहायक होते हैं तथा फेफड़ों द्वारा रक्त से हानिकारक गैस कार्बन डाई ऑक्साइड को निकाला जाता है। त्वचा के माध्यम से शरीर की अशुद्धियॉ पसीने द्वारा बाहर निकलती हैं। बड़ी आंत के माध्यम से मल के रूप में भोजन का निस्सार पदार्थ बाहर निकलता है। गुर्दे या वृक्क द्वारा रक्त से छोड़ा हुआ दूषित पदार्थ मूत्र के रूप में बाहर निकलते है। मूत्र पहले वृक्क की मीनारों से मूत्र प्रणाली के चौड़े भाग में आता है, फिर इसके द्वारा बहता हुआ मूत्राशय में बाहर निकल जाता है। इस प्रकार हानिकारक पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप विभिन्न अंगों द्वारा हो रही उत्सर्जन क्रिया को भली-भॉति समझ गये होंगे।

8.11 शब्दावली

उपवृक्क – अधिवृक्क ग्रन्थि, यह प्रत्येक वृक्क के ऊपरी भाग में स्थित होती है तथा अन्त: स्रावी तंत्र का भाग होती है।

कोलन – बड़ी आन्त्र को कहा जाता है।

उत्सर्जी – व्याज्य, अपशिष्ट, दूषित

निष्कासन – निकालना, बाहर कर देना

डायफ्राम – एक मांसपेशी जो फेफड़ों का आधार देती है।

प्लूरा – फेफड़े की परत।

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) 1-1.5 किलो

(ख) 2

(ग) ग्लूकोज, यूरिया

(घ) 960, 40
(ड.) मूत्र प्रणाली/यूरेटर्स

(च) 3 और 2

2. सत्य/ असत्य

(क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) असत्य

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्सर्जन संस्थान का परिचय देते हुए वृक्क के कार्यो को समझाइये।

2. फेफड़े किस प्रकार उत्सर्जन का कार्य संपादित करते हैं समझाइये।

3. उत्सर्जन तन्त्र की पूरी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

इकाई 9 -ज्ञानेन्द्रिय तंत्र की रचना एवं कार्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र: एक परिचय

9.4 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र के अवयव

9.5 दृश्येन्द्रिय

9.6 श्रवणेन्द्रिय

9.7 घ्राणेन्द्रिय

9.8 स्वादेन्द्रिय

9.9 स्पर्शेन्द्रिय

9.10 सारांश

9.11 शब्दावली

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप शरीर के अति महत्वपूर्ण संस्थानों (पाचन, श्वसन, परिसंचरण, तंत्रिका) का अध्ययन किया है। पाठकों प्रस्तुत इकाई में आप ज्ञानेन्द्रिय तंत्र महत्वपूर्ण संस्थान के बारे में जानेंगे।

इस इकाई में आप शारीरिक इन्द्रियों के विषय में पढेंगे और समझेंगे। किस-किस प्रकार की शारीरिक इन्द्रियां अथवा ज्ञानेन्द्रियॉ हमारे शरीर में होती हैं जो दैनिक क्रियाओं को करने में हमारी सहायता करती हैं इसके विषय में आप जानेंगे। देखना, सुनना, किसी वस्तु का स्पर्श करना, किसी खाद्य पदार्थ का गुण पहचानना, सूंघना आदि कार्य कैसे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संचालित एवं क्रियान्वित होते हैं- आगे आप यह जान सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र का एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र के प्रमुख अवयवों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- स्पर्शेन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- घ्राणेन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में समझ सकेंगे।
- श्रवणेन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में जान सकेंगे।
- द्रश्येन्द्रिय की संरचना एवं मुख्य कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर दें सकेंगे।

9.3 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र – एक परिचय

हम इस संसार में विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक परिस्थितियों में रहते हैं। सही प्रकार से व्यवहार करने के लिये एवं सामन्जस्य बिठाये रखने के लिए संवेदनाओं का होना अति आवश्यक है। इन संवेदनओं का अनुभव हम तभी कर सकते है जब उससे सम्बन्धित संवेदी तंत्रिकाओं को उत्तेजना अथवा उद्दीपन प्राप्त हो सके। विभिन्न उत्तेजनाओं के फलस्वरूप संवेदनाएँ मस्तिष्क में संवेदी तंत्रिकाओं के द्वारा जाती हैं वहां संवेदनाओं का विश्लेषण केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र के द्वारा होता है तथा उसके पश्चात् शरीर किसी कार्य को करने के लिये इन्हीं संवेदी तंत्रिकाओं से उत्तेजना पाकर कार्य करता है। हमारा यह शारीरिक तंत्र प्रकाश, गंध, दाब, ध्वनि आदि के सांवेदिक अंगों पर निर्भर करती है। ये संवेदी अंग विशिष्ट संवेदनाओं को ग्रहण करके बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करती है। मानव शरीर में पांच संवेदी अंग हैं जिन्हें ज्ञानेन्द्रियां कहा जाता है आंख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा। आगे आप इनके विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे।

9.4 ज्ञानेन्द्रिय तंत्र के अवयव

मनुष्य शरीर में 1. दृष्टि, 2. श्रवण 3. घ्राण 4. स्वाद तथा 5. स्पर्श - इन बातों का ध्यान कराने वाली 5 ज्ञानेन्द्रियाँ ईश्वर ने दी हैं, जिनकी क्रिया विधि मुख्यतः वातनाड़ी संस्थान से ही सम्बन्ध रखती है। ये इन्द्रियाँ निम्न हैं- आप जानते ही है

1. आँख (Eye) – इनका कार्य दृश्य या रूप को ग्रहण करना है।

2. कान (Ear)- इनका काम ध्वनि को सुनना है।

3. नाक (Nose)- इसका काम सूँघना है।

4. जिह्वा (Tongue) – स्वाद लेने का कार्य जिह्वा द्वारा होता है।

5. त्वचा (Skin) - इसका काम स्पर्शानुभूति है।

ये सभी इन्द्रियाँ विभिन्न संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं तथा मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं का पालन भी करती हैं।

9.5 दृश्येन्द्रिय

यह दृष्टि-विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। इसका सम्बन्ध दृष्टि-नाड़ी द्वारा मस्तिष्क से रहता है। मनुष्य के कपाल के भीतर, नाक के दोनों ओर एक-एक गहरा गड्ढा है, जिसे 'नेत्र गुहा' (Orbit) कहते हैं। इन्हीं गड्ढों में एक-एक आँख स्थित रहती है। आँखें अपने सामने की ओर एक पर्दे से ढँकी रहती है, जिसे 'पलक' (Eyelids) कहा जाता है। ये पलकें दो भागों में बँटी रहती है-ऊपरी तथा निचली। पलकें एक प्रकार की कड़ी तह (Tartus) द्वारा स्थित रहती है। इनके किनारे पर छोटे-छोटे केश होते हैं। जो बाहरी धूल-गर्द आदि से आँखों की रक्षा करते हैं। पलकों के भीतरी भाग में 'श्लेष्मला' (Conjuctiva) नामक एक महीन पारदर्शी झिल्ली लगी रहती है, यह दुहरी होकर नेत्र-गुहा को ढँके रखती है। आँख का बाह्य आयतन बादाम जैसा होता है। परन्तु पिछला भाग गोल रहता है, जो मस्तिष्क से जुड़ा रहता है। आँख के उपांग निम्न है-

1- भौहें (Eye Brows) ये प्रत्येक चक्षु-गह्वर के ऊपर एक टेढ़ी केशदार लकीर के रूप में रहती है। इनमें छोटे-छोटे बाल होते हैं।

2. पलक (Eye-lids) यह बराबर खुलती तथा बन्द होती रहती है। इनके द्वारा आँखों की रक्षा होती है। इनका वह भाग-जो ऊपरी तथा निचली पलक से मिला रहता है, चक्षु-कोण (Canthus) कहा जाता है।

3. अश्रु ग्रंथियाँ (Lacrymal Glands) पलकों के भीतर कुछ ऐसी ग्रंथियाँ भी रहती है जो अश्रु अर्थात् आँसू उत्पन्न करती है। पलकों के स्वतन्त्र भाग में एक तिरछी नली निकलती है, जिसके द्वारा ये आँसू आँखों के पास गिरते हैं। इसी नली के मिडियल (Medial) सिरे से एक अन्य नली आरंभ होती है, जो सीधी नाक में जाकर खुलती है, इसे अश्रुनासा नली (Naso-Lacrymal Duct) कहते हैं। इसका नियन्त्रण अनैच्छिक तन्त्रिकाओं द्वारा होती है।

9.6 श्रवणेन्द्रिय

यह श्रवण - क्रिया विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। ये खोपड़ी की जड़ में दाँई तथा बाँई ओर स्थित रहते हैं। इस प्रकार आँख की भाँति कान भी संख्या में दो होते हैं। रचना के आधार पर इसके तीन विभाग होते हैं-

1. बाह्य कर्ण (External Ear)
2. मध्य कर्ण (Middle Ear)
3. अन्तः कर्ण (Internal Ear)

वायुमण्डल में उपस्थित ध्वनि-लहरों (Sound Waves) को बाह्य कर्ण इकट्ठा करके मध्यकर्ण स्थित श्रवण झिल्ली (Tympanic membrane or Ear Drum) पर टकराने के लिए भेजता है, जिसके फलस्वरूप वात-प्रेरणाएँ (Nervous Impulses) उत्पन्न होती है। उन श्रवण संवेदनाओं को अन्तःकर्ण श्रवण-नाड़ी (Auditory Nerve) द्वारा मस्तिष्क में भेज देता है, जिससे सुनने की क्रिया सम्पन्न होने लगती है।

9.7 घाणेन्द्रिय

यह घ्राण क्रिया विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। यह चेहरे के बीचों-बीच, दोनों आँखों के मध्य में स्थित है। इसकी लम्बी दीवार एक उपास्थि द्वारा निर्मित होती है, जो इसे दो भागों में विभाजित करती है। अतः नाक के दो छिद्र होते हैं। नाक के बाहरी भाग को बर्हिनासा (External Nose) तथा भीतरी भाग को 'नासागुहा' (Nosal Fossa) कहा जाता है।

बर्हिनासा का ऊपरी कठोर भाग अस्थि निर्मित होता है तथा नीचे का कोमल भाग मांस, कार्टिलेज तथा त्वचा निर्मित होता है। दोनों नासा-छिद्रों (Nostrils) में छोटे-छोटे बाल उगे रहते हैं, जो बाहरी गन्दगी को नाक के भीतर प्रविष्ट होने से रोकते हैं।

नाक के भीतरी भाग में सर्वत्र एक श्लैष्मिक-झिल्ली चढ़ी रहती है। इसके पीछे तन्त्रिका जाल होता है, जहाँ से 'तन्त्रिका सूत्र' (Nerve Fibres) निकलते हैं। वे एक छलनी जैसे छिद्र के द्वारा मस्तिष्क के धरातल पर पहुँच कर घ्राण खण्ड (Olfactory Lobe) में जा मिलते हैं।

जब हम किसी वस्तु को नासा-छिद्रां के समीप ले जाते हैं, तब उसकी गंध श्लैष्मिक झिल्लियों में होकर 'तन्त्रिका-कोषा' (Nerve Buds) के सम्पर्क में पहुँचती है। वहाँ से वह 'तन्त्रिका सूत्र' के द्वारा 'घ्राण कन्द' में पहुँच कर, घ्राण पथ (Olfactory Tract) से होती हुई 'घ्राण कर्षण' (Olfactory Gyrus) पर पहुँचती है, जहाँ से कि गंध का अनुभव होता है।

9.8 स्वादेन्द्रिय

यह स्वाद-विषयक ज्ञानेन्द्रिय है, जो मुँह के भीतर रहती है। यह मांस तथा मांसपेशियों से निर्मित है तथा इसके ऊपर श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। इसके निचले भाग की श्लैष्मिक कला चिकनी तथा ऊपरी भाग की खुरदुरी होती है। यह मांसपेशियों द्वारा हन्वान्थि तथा कण्ठिकास्थि से मिली होती है। इसके मांस में संकोच की शक्ति होती है। अतः इसे इच्छानुसार छोटा-बड़ा तथा लम्बा-चौड़ा किया जा सकता है।

जीभ का अग्रभाग पतला तथा मूल भाग चौड़ा और मोटा होता है। इसके सिरे, जड़ तथा किनारों पर 'स्वादकोष' (Taste Buds) होते हैं, जिनसे विभिन्न प्रकार के स्वादों का अनुभव होता है।

खाने-पीने की कोई भी वस्तु जब मुँह में डाली जाती है तो वह श्लैष्मिक-झिल्ली के सम्पर्क में आती है तथा उसका स्वाद जिह्वा तन्त्रिका कलिकाओं (Lingual Nerve Buds) से जिह्वा-तन्त्रिका में (Lingual Nerve) में पहुँचता है। वहाँ से तन्त्रिकाएँ उसे मस्तिष्क में ले जाती है।

जीभ की नोंक पर पाई जाने वाली स्वाद कोषों से मिठास का अनुभव होता है। जिह्वा के दोनों किनारों से खट्टेपन का तथा मध्य भाग से नमकीन स्वाद का अनुभव होता है तथा जिह्वा के पिछले भाग से कड़वे स्वाद का अनुभव होता है।

मुँह में डाली हुई वस्तु चर्बण क्रिया तथा लार की सहायता से गल जाती है, तभी स्वाद का अनुभव होता है यदि जीभ अधिक तिक्त वस्तुओं के सम्पर्क में आती है, तो उससे पानी गिरने लगता है, ताकि वह तीतापन हल्का हो जाये और उसकी तीक्ष्णता से जीभ के कोमल ऊतकों को कोई हानि न पहुँचे। यह (जीभ) स्वाद की अनुभूति के अतिरिक्त भोजन को पचाने तथा बोलने में भी सहायक होती है।

9.9 स्पर्शेन्द्रिय

यह स्पर्श विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। यह सम्पूर्ण शरीर को ढँके रखती है। इसके द्वारा ही हमें गर्मी, सर्दी, कोमलता, कठोरता आदि का अनुभव होता है। जब हम किसी वस्तु का स्पर्श करते हैं अथवा कोई वस्तु हमारी त्वचा के सम्पर्क में आती है, तब हमें उसके स्पर्श का अनुभव होता है।

त्वचा के दो भाग होते हैं-

1- बाह्य त्वचा (Epidermis)

2- अन्तः त्वचा (Dermis)

बाह्य त्वचा - इसकी मोटाई शरीर के विभिन्न अवयवों पर अलग-अलग पाई जाती है। उदाहरण के लिए तलवों पर इसकी मोटाई **1/20** इंच तथा चेहरे पर **1/200** इंच होती है। बाहरी त्वचा एपीथीलियम-कोषाओं की अनेक तहों के मिलने से बनती है। ये कोषाऐं भीतरी सैलों की रक्षा करते हैं तथा स्वयं निरंतर घिसते रहते हैं। घिसे हुए कोषाओं (Cells) के स्थान पर नये कोषा आते रहते हैं। ऊपरी त्वचा की निचली तह में जिस रंग के कोषा होता है, हमारा शरीर भी उन्हीं के आधार पर गोरा, काला, सांवला अथवा गेहुआ दिखाई देता है। इन भीतरी सैलों को 'रंजक-कोष' (Pigment Cells) कहा जाता है।

बाह्य-त्वचा में रक्त-नलिकाऐं नहीं होती। इनके भीतरी सैल उस लसीका से पोषण प्राप्त करते हैं, जो अन्तः त्वचा के सैलों से धीरे-धीरे निकलते हैं। बाह्य त्वचा में स्नायु-सूत्र भी अत्यधिक कम परिमाण में पाये जाते हैं।

अन्तः त्वचा - यह बाह्य त्वचा के नीचे रहती है तथा संयोजक ऊतक - तन्तुओं (Connective Tissues) से बनी होती है। ये तन्तु ऊपरी भाग में दृढ़ता से संलग्न रहते हैं तथा निम्न भाग में कुछ ढीले होते हैं। इन तन्तुओं के निम्न भाग में थोड़ी सी चर्बी भी रहती है। अन्तः त्वचा के नीचे दूसरे ऊतक होते हैं, जिनमें चर्बी की मात्रा अधिक पाई जाती है।

त्वचा में दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती है- 1. तैल जैसी चिकनाई निकालने वाली ग्रंथियां (Sebaceous or Oil Glands) तथा 2. पसीना निकालने वाली ग्रंथियां (Sweat Glands)

चिकनाई निकालने वाली ग्रंथियों बालों (रोमों) की जड़ों से सम्बन्धित होती हैं तथा पसीना निकालने वाली ग्रंथियों शरीर के मल को पसीने के रूप में बाहर निकालती रहती हैं।

बाह्य त्वचा की पर्त पर असंख्य छोटे-छोटे छिद्र पाये जाते हैं। इन्हीं के द्वारा पसीना बाहर निकलता है तथा इन्हीं छिद्रों में होकर रोंए भी निकलते हैं। इन छिद्रों को 'रोमकूप' (Pores of the Skin) भी कहा जाता है।

नख -अंगुलियों पर पाये जाने वाले नाखून भी बाह्य त्वचा के ही रूपान्तर हैं। ये अंगों की रक्षा तथा स्पर्श-शक्ति में सहायता करते हैं। इनके ऊपरी भाग को देह (Body) तथा त्वचा के निचले भाग को जड़ (Root) कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) .....ग्रन्थियॉ अश्रु उत्पन्न करती हैं।

(ख) नाक के भीतरी भाग को.....कहते है।

(ग) जिह्वा के दोनों किनारों से.....का तथा मध्य भाग से.....स्वाद का अनुभव होता है।

(घ) त्वचा में.....और.....ग्रन्थियॉ पायी जाती है।

(ड.) .....अंगों की रक्षा तथा स्पर्श-शक्ति में सहायता करते हैं ।

(च) त्वचा की पर्त पर असंख्य छोटे-छोटे छिद्रों को.....कहते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) अश्रुनासा नली का नियन्त्रण ऐच्छिक तंत्रिकाओं द्वारा होता है।

(ख) नखों के ऊपरी भाग को जड़ तथा त्वचा के निचले भाग को देह कहा जाता है।

(ग) रंजक कोषा के आधार पर हमारा शरीर गोरा, काला, सांवला अथवा गेहुँआ दिखाई देता है।

(घ) रचना के आधार पर कान के तीन विभाग होते है।

9.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुकें हैं कि मनुष्य शरीर में दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद एवं स्पर्श-इन क्रियाओं का ध्यान कराने वाली पांच ज्ञानेन्द्रियॉ हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया विधि मुख्यत: वात नाड़ी संस्थान से सम्बन्ध रखती है। ज्ञानेन्द्रियॉ विभिन्न संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं तथा मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं का पालन करती हैं। स्पर्शेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय एवं दृश्येन्द्रिय यह पांच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियॉ हैं त्वचा, जिह्वा, नाक, कान एवं ऑख इन ज्ञानेन्द्रियों से संबंधित अंग हैं। त्वचा किसी भी शारीरिक अनुभूति को समझने में सहायक है। जिह्वा स्वाद की अनुभूति कराती है। नाक सूंघने में सहायक है। कान सुनने की तथा ऑखे देखने की क्रिया करती हैं।

9.11 शब्दावली

खाद्य – खाने योग्य

ज्ञानेन्द्रियॉ – संवेदी अंग अर्थात जो संवेदनाओं को ग्रहण करती है। इनकी संख्या पांच है।

प्रदत्त – दी गई, प्राप्त की गई

चक्षु – नेत्र

अनैच्छिक – जिन पर प्राणी का नियंत्रण नहीं होता अर्थात जो स्वत: होती रहती है।

श्रवण – सुनने की क्रिया।

वात – वायु

घ्राण – सूँघना

चर्वण क्रिया – चबाने की क्रिया।

स्नायु सूज – तंत्रिका सूज

संयोजक – जोड़ने का कार्य करने वाले।

ऊतक सूज – तंत्रिका तंत्र के विशेष संदेशग्राही एवं संवाहन अंग।

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) लेक्रीमल
(ख) नोजल कोसा/नासा गुहा
(ग) खट्टेपन, नमकीन
(घ) सेवोशियन, स्वेद
(ड.) नख
(च) रोमकूप

2. सत्य/असत्य

(क) असत्य
(ख) असत्य
(ग) सत्य
(घ) सत्य

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
3. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
4. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
5. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा
6. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9.14 निबंधात्मक प्रश्न प्रश्न

1. ज्ञानेन्द्रियों के कार्यो की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
2. त्वचा व स्वादेन्द्रिय के कार्यो का वर्णन कीजिए।

इकाई 10 - अन्त:स्रावी तंत्र की रचना एवं कार्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 अन्त:स्रावी ग्रन्थियॉं : एक परिचय

10.4 अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के प्रकार

10.4.1 पीयूष ग्रन्थि

10.4.2 थायरॉइड ग्रन्थि

10.4.3 पैराथायरॉइड ग्रन्थि

10.4.4 एड्रीनल ग्रन्थि

10.4.5 अग्न्याशय

10.4.6 पीनियल ग्रन्थि

10.4.7 थायमस ग्रन्थि

10.4.8 जनन ग्रन्थि

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

शारीरिक इंद्रियॉं मनुष्य जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, यह आपने पूर्व की इकाई में पढ़ा और समझा। आपने जाना कि शरीर में पांच प्रमुख ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनमें स्पर्शेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय तथा दृश्येन्द्रिय निहित हैं। एक भी इन्द्रिय यदि सुचारू रूप से कार्य न करें तो जीवन व्यर्थ लगने लगता है।

इस इकाई में आप अंत:स्रावी तंत्र या संस्थान के विषय में पढ़ेंगे। अंत:स्रावी तंत्र या संस्थान शरीर का वह प्रमुख संस्थान है, जो तन्त्रिका तंत्र के साथ मिलकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करता है।

आगे आप जानेंगे कि अन्त: स्रावी ग्रन्थियों द्वारा स्रावित द्रव्य जिसे हॉर्मोन कहते हैं। शरीर के विभिन्न सामयिक व शारीरिक विकासक्रम को कैसे प्रभावित करता है। यदि यह हॉर्मोन्स समय पर स्रावित न हों तो किस प्रकार के रोग हमारे शरीर में हो सकते हैं, इन सभी विषयों का अध्ययन हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अंत:स्रावी तंत्र के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।
- हार्मोन्स के मापी एवं महत्व स्पष्ट कर सकेंगे।
- अंत:स्रावी तंत्र की प्रमुख ग्रन्थियों के विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- पीयूष ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पीयूष ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हार्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- थाइरॉयड ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- थाइरॉयड ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।
- पैराथाइरॉयड ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पैराथाइरॉयड ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के कार्यो का अध्ययन कर सकेंगे।
- एड्रीनल ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो का विस्तृत विवेचन कर सकेंगे।
- एड्रीनल ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हार्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के कार्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- पीनियल ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पीनियल ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स की महत्ता एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन कर सकेंगे।
- थाइमस ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।
- थाइमस ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हार्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन प्राप्त कर सकेंगे।
- जनन ग्रन्थि की संरचना एवं मुख्य कार्यो को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनन ग्रन्थि से स्रावित होने वाले विभिन्न हॉर्मोन्स के विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।

10.3 अन्त:स्रावी ग्रन्थियां : एक परिचय

अन्तः स्रावी संस्थान शरीर का वह प्रमुख संस्थान है, जो तन्त्रिका तन्त्र के साथ मिलकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करता है। अन्तःस्रावी संस्थान ऊतकों या अंगों जिन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands) कहा जाता है, से मिलकर बनता है। इस प्रकार की ग्रन्थियों में वाहिकाएँ नहीं होती, अतः इन्हें वाहिकाविहीन (Ductless Glands) भी कहा जाता है।

इनमें उत्पन्न स्राव हॉर्मोन (Hormone) कहलाता है, जो ग्रंथियों से निकलकर सीधे रक्त में मिल जाते हैं और रक्त के साथ भ्रमण करते हुए शरीर के उस अंग में पहुँचते हैं जिस पर उनकी क्रिया होती है।

शरीर में कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें नलियाँ होती हैं, जिनसे होकर इनका स्राव या रस शरीर में उपयुक्त स्थान पर पहुँचता रहता है, इन्हें वाहिकामय ग्रन्थियाँ (Duct Glands) या वहिःस्रावी ग्रन्थियाँ (Exocrine Glands) भी कहा जाता है। जैसे- लार ग्रन्थियाँ, स्वेद ग्रन्थियाँ, यकृत एवं अग्न्याशय आदि।

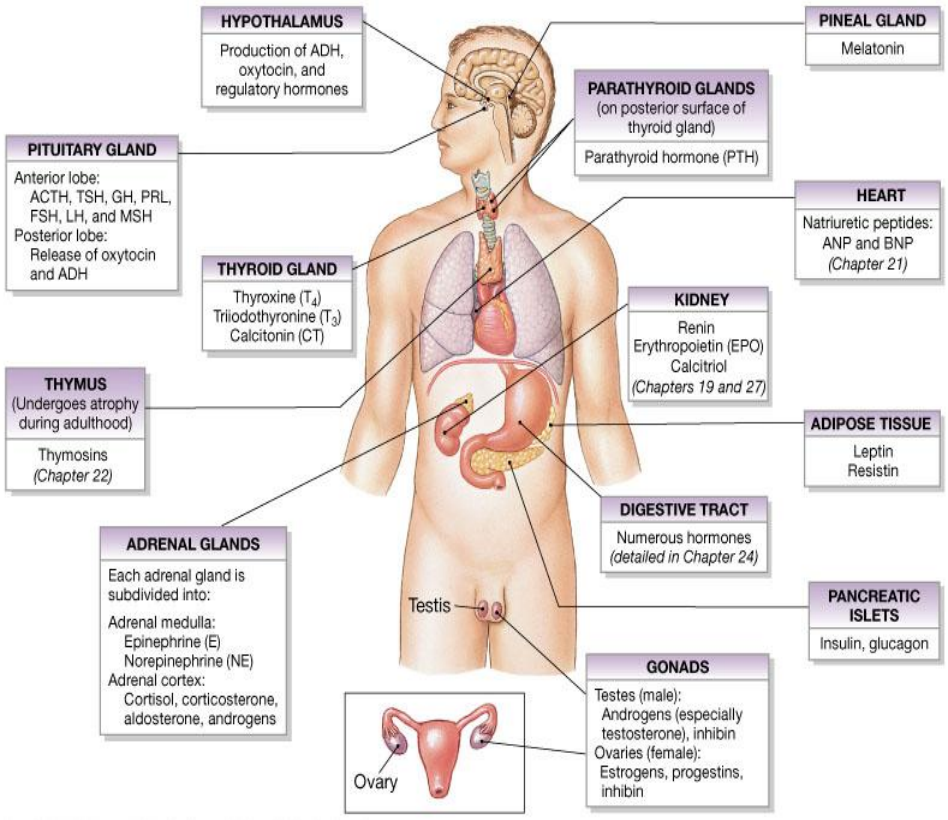

The Endocrine System

हार्मोन (Hormone) हार्मोन शरीर की किसी अन्तःस्रावी ग्रन्थि में उत्पन्न होने वाला तथा रक्त के साथ भ्रमण करता हुआ अन्य किसी अंग या ऊतक में पहुँचने वाला एक रासायनिक संदेश वाहक (Chemical messenger) है जो उस अंग या ऊतक पर क्रिया करके उसकी क्रियाशीलता को बढ़ा देता है या कम कर देता है। हॉर्मोन अति सूक्ष्म मात्रा में उत्पन्न होते हैं और प्रत्येक हार्मोन का एक निश्चित कार्य होता है। हार्मोन्स का रक्त में सामान्य से कम या अधिक होना दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

हार्मोन्स के कार्य -

1. हॉर्मोन शरीर की वृद्धि में सहायक होते हैं।

2. यह शरीर की रोगों से रक्षा करते हैं।

3. यह चयापचय को तथा पाचन संस्थान, श्वसन संस्थान, रक्त परिसंचरण आदि संस्थानों के कार्यों को प्रभावित करके स्वस्थ बनाये रखते हैं।

4. जनन स्रावों को प्रभावित करते हैं।

10.4.1 अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के प्रकार

मानव शरीर में निम्न अंतःस्रावी ग्रंथियाँ होती हैं -

पीयूष ग्रंथि **(Pituitary Gland)**

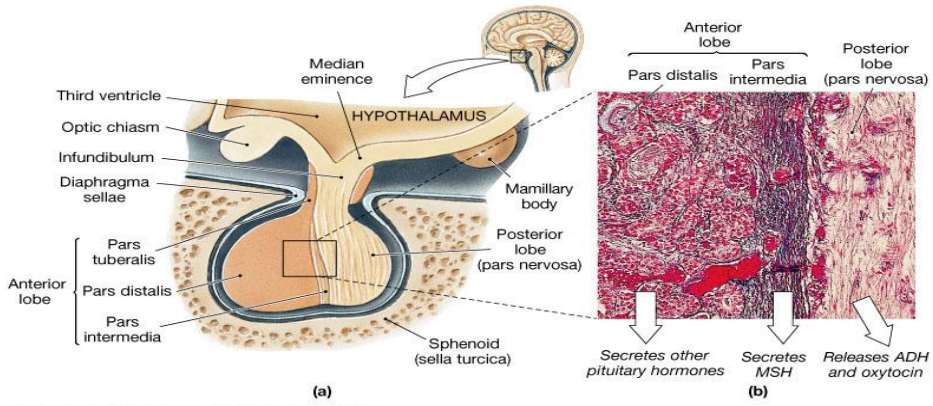

The Anatomy and Orientation of the Pituitary Gland

इसे हाइपोफाइसिस के नाम से भी जाना जाता है। यह खोपड़ी के आधार की स्फीनॉइड अस्थि के सेला टर्शिका (Sellaturcica) या हाइपोफाइसियल फोसा में हाइपोथैलेमस के नीचे स्थित एक छोटी सी (मटर के दाने के बराबर) भूरे रंग की ग्रन्थि होती है।

यह मुख्य अन्तःस्रावी ग्रन्थि है। इससे उत्पन्न हॉर्मोन अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की सक्रियताओं का उद्दीपन करते हैं। यह ग्रंथि अग्रखण्ड (Anterior lobe) तथा पश्चखण्ड (Posterior lobe) दो खण्डों में विभाजित रहती है। अग्रखण्ड तथा पश्चखण्ड से अलग-अलग हॉर्मोन स्रावित होते हैं।

अग्रखण्ड द्वारा स्रावित होने वाले हॉर्मोन - पीयूष ग्रन्थि के अग्र खण्ड से निम्न हॉर्मोन स्रावित होते हैं।

वृद्धि हार्मोन (Growth Hormone - GH) या सोमेटोट्रॉपिक हॉर्मोन (Somatotorpic Hormone) यह शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक हॉर्मोन है। किसी विशिष्ट अंग लक्ष्य को प्रभावित करने के बजाय यह हॉर्मोन वृद्धि से सम्बन्धित शरीर के भागों को प्रभावित करता है। यह वृद्धि की दर को बढ़ाता है और जब एक बार परिपक्वता की स्थिति निर्मित हो जाती है तब उसे बनाए रखता है।

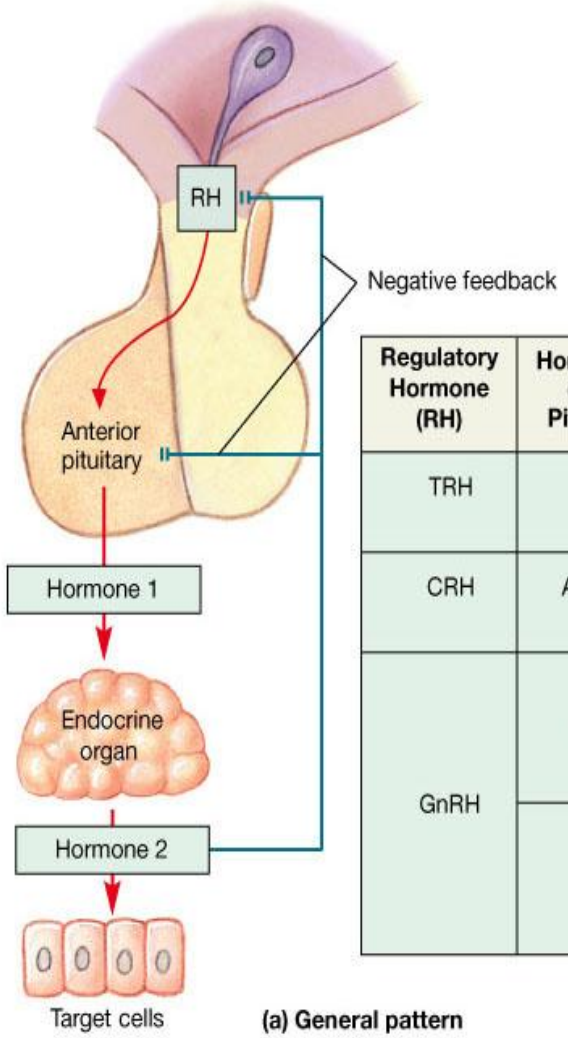

Regulatory Hormone (RH)	Hormone 1 (from Pituitary)	Endocrine Target Cells	Hormone 2 (from Target organ)
TRH	TSH	Thyroid gland	Thyroid hormones
CRH	ACTH	Adrenal cortex	Gluco-corticoids
GnRH	FSH	Testes	Inhibin
		Ovaries	Inhibin, Estrogens
	LH	Ovaries	Progestins, Estrogens
		Testes	Androgens

Feedback control of Endocrine Secretion

- स्तन प्रेरक या दुग्ध जनक हॉर्मोन (Prolactin or Lactogenic Hormone) & स्त्रियों में प्रोलेक्टिन के दो कार्य होते हैं – एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टेरोन हॉर्मोन के साथ मिलकर यह गर्भावस्था के दौरान स्तनों में नलियों को विकसित करता है।

  प्रसव के दौरान दुग्ध उत्पादन को प्रेरित करता है।

- अधिवृक्क - प्रान्तस्थाप्रेरक या एड्रीनोकार्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन (Adrenocorticotropic Hormone - ACTH) & यह हॉर्मोन एड्रीनल कॉर्टेक्स को उद्दीप्त करता है और उसमें रक्त प्रवाह को बढ़ाता है इससे

एड्रीनल कॉर्टेक्स से स्टीरायड हॉर्मोन्स का उत्पादन बढ़ जाता है तथा विशेष रूप से कॉर्टिसॉल की निकासी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त ACTH मैलेनिन के उत्पादन में भी प्रभावी है।

- थाइरॉयड उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid Stimulatory Hormone - TSH) यह हॉर्मोन थाइरॉयड ग्रन्थि की वृद्धि और उसकी क्रिया शीलता को उद्दीप्त करता है जिससे थाइरॉक्सिन (Thyroxine-T4) तथा ट्राइआयडोथाइरोनीन (Tridothyronine-T3) हॉर्मोन स्रावित होते हैं। जब रक्त में T3 व T4 हॉर्मोन कम हो जाते हैं तो TSH का स्रावण बढ़ जाता है।

जनन ग्रन्थि पोषक या गोनाडोट्रॉफिक हॉमोन (Gonadotropic hormones or Sex hormones) स्त्री एवं पुरुष दोनों में अग्रज पीयूष ग्रन्थि से निम्न दो जनन ग्रन्थि पोषक या लिंग हॉर्मोन उत्पन्न होते हैं-

(1) ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (Latinizing Hormone - LH) & स्त्रियों में एक अस्थायी अन्तःस्रावी ऊपक-कॉर्पस ल्यूटियम (Corpus Luteum) का निर्माण होता है जो स्त्री सेक्स हॉर्मोन्स, प्रोजेस्टेरॉन एवं ईस्ट्रोजन का स्रावण करता है। LH डिम्बोत्सर्जन को उद्दीप्त करता है, जिसमें प्रत्येक माह डिम्बाशय (Ovary) से परिपक्व अण्डे (natural egg) का क्षरण (release) होता है। LH पुरुषों में शुक्रग्रन्थियों में अन्तरालीय कोशिकाओं को उद्दीप्त करता है जिससे टैस्टोस्टेरोन हॉर्मोन उत्पन्न होते हैं।

(2) फॉलिकल्स उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle- stimulating hormone - FSH) स्त्रियों में यह प्रत्येक मासिक चक्र के दौरान ओवेरियन फॉलिकल्स या ग्राफियन फॉलिकल्स की वृद्धि एवं उनकी परिपक्वता को उद्दीप्त करता है। यह ओवेरियन फॉलिकल को ईस्ट्रोजन हॉर्मोन स्रावित करने के लिए भी प्रेरित करता है। FSH पुरूषों में वृषणों (testes) की शुक्राणु जनक कोशिकाओं को उद्दीप्त करता है। जिससे शुक्राणुओं की उत्पत्ति (Spermatogenesis) होती है साथ ही यह शुक्राणुओं के निर्माण को भी नियन्त्रित करता है।

Three Methods of Hypothalamic Control over the Endocrine System

पश्चखण्ड द्वारा स्रावित होने वाले हॉर्मोन - पीयूष ग्रन्थि के पश्चखण्ड से दो हॉर्मोन स्रावित होते हैं-

- एन्टीडायूरेटिक हॉर्मोन या वैसोप्रेसिन (Antidiuretic Hormone -ADH or Vasopressin) यह हॉर्मोन जल के लिए वृक्कीय नलिकाओं की पारगम्यता को बढ़ाकर उनमें जल के पुनः अवशोषण को बढ़ाता है जिससे कम मात्रा में मूत्र विसर्जित होता है।

- ऑक्सीटोसिन हॉर्मोन (Oxytocin Hormone) & ऑक्सीटोसिन हॉर्मोन प्रसव के दौरान गर्भाशयिक संकुचनों (Uterine Contractions) एवं प्रसव के उपरानत शिशु के दुग्धपान के लिए दुग्ध निक्षेप करता है। पुरुषों में इसकी क्रिया अज्ञात है।

10.4.2 थाइरायड ग्रन्थि (Thyroid Gland) इस ग्रंथि के स्राव का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है। यह स्राव शरीर की रासायनिक क्रिया को ठीक रखने में तथा शरीर की सम्यक् वृद्धि तथा पुष्टि में महत्वपूर्ण भाग लेता है।

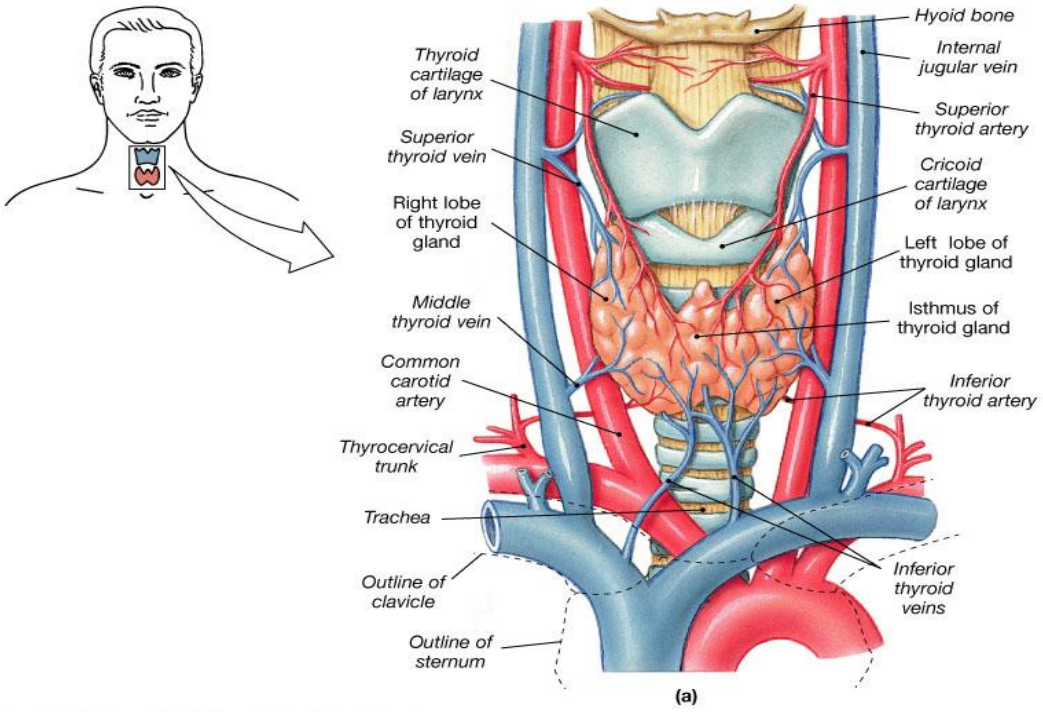

The Thyroid Gland

यह दो लम्बी ग्रंथियाँ श्वास नली के दोनों ओर स्थित हैं तथा अपने मध्यभाग में एक लम्बे भाग द्वारा एक दूसरी से अंग्रेजी के H अक्षर की भाँति जुड़ी रहती हैं। इनके ऊपर एक झिल्ली का आवरण चढ़ा रहता है तथा इनके भीतर अनेक छोटी-छोटी नलियाँ होती हैं जो भीतरी केन्द्र में एकत्र रहती हैं। इस ग्रंथि का भार लगभग 30 अंश होता है तथा रंग पीलापन लिए रहता है। थाइरॉयड ग्रन्थि दो तरह की कोशिकाओं - फॉलिक्यूलर तथा पैराफॉलिक्यूलर कोशिकाओं (C

Cells) से निर्मित होती है। फॉलिक्यूलर कोशिकाएं ट्राइआयडोथाइरोमीन (T3) का निर्माण व स्रावण करती है। पैराफॉलिक्युलर कोशिकाएं कैल्सिटोनिन हॉर्मोन का निर्माण व स्रावण करती हैं।

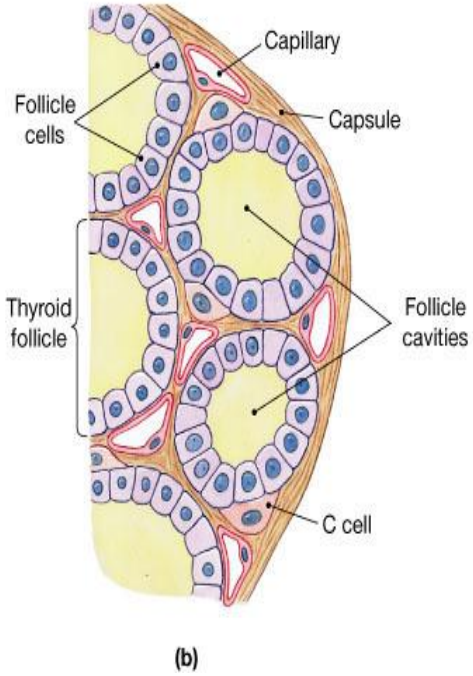

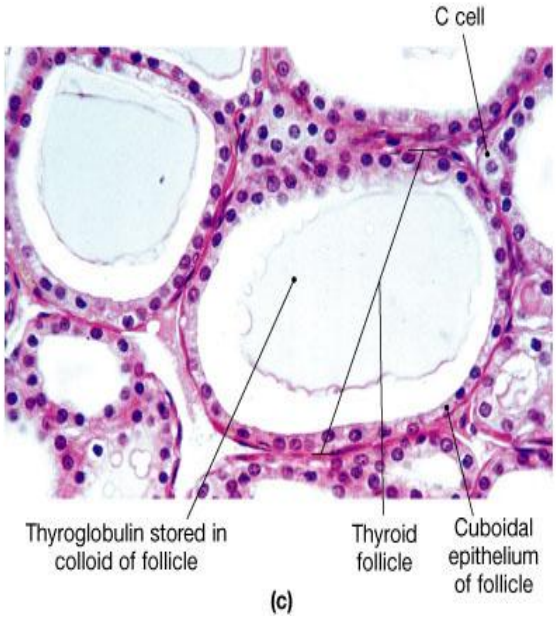

The Thyroid Gland

कार्य & T4 व T3 हॉर्मोन्स चयापचय की गति को बढ़ाते हैं तथा तन्त्रिका ऊतकों की वृद्धि एवं विकास को नियन्त्रित करते हैं। मूत्र के निर्माण को बढ़ाते हैं। प्रोटीन के विभाजन और कोशिकाओं के द्वारा ग्लूकोज के अन्तर्ग्रहण को बढ़ाते हैं। कैल्सिटोनिन हॉर्मोन रक्त में कैल्शियम सान्द्रता को कम करता है।

न्यूनता - भोजन या जल में आयोडीन की कमी हो जाने से थाइरॉयड हॉर्मोन उपयुक्त मात्रा में नहीं बन पाते तथा TSH का स्रावण बढ़ जाता है जिससे गलगण्ड या घेंघा (Goitre) रोग हो जाता है।

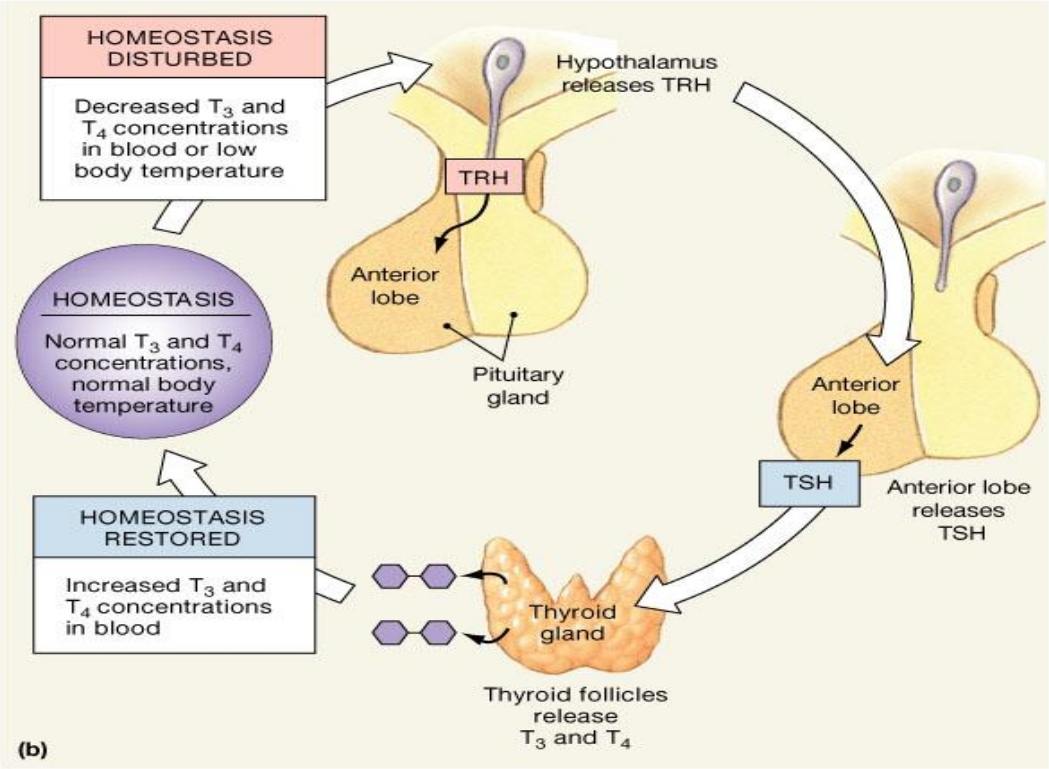

The Thyroid Follicles

अधिकता (Hyper Secretion) & अधिक मात्रा में Secretion से Hyperthyroidism की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें प्रायः नेत्रोत्संधी गलगण्ड (Exopthalmic goitre) हो जाता है।

10.4.3 पैराथाइरॉइड ग्रन्थि (Para Thyroid Gland) & पैराथाइरॉयड ग्रन्थियाँ मसूर के दाने के आकार की चार छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। जिनमें से प्रायः दो-दो थाइरॉइड ग्रन्थि के प्रत्येक खण्ड की पोस्टीरियर (पिछली) सतह में अवस्थित रहती है।

कार्य - ये ग्रन्थियाँ पैराथॉर्मोन (Parathormone- PTH) नामक हॉर्मोन स्रावित करती हैं जो शरीर में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस के वितरण एवं चयापचय को नियन्त्रित करता है। रक्त में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस आयनों का उचित सन्तुलन न होने से तन्त्रिका आवेगों का संचारण गड़बड़ा जाता है, अस्थि ऊतक नष्ट हो जाते हैं। अस्थि विकास रूक जाता है तथा टिटैनी नामक रोग हो जाता है।

न्यूनता - पैराथॉर्मोन के अल्पस्रावण से रक्त में कैल्शियम की मात्रा की कमी हो जाती है परिणामस्वरूप टिटैनी नामक रोग हो जाता है। जिसमें हाथ पैर ऐंठ जाते हैं और आक्षेप अर्थात् दौरे आने लगते हैं।

अधिकता - अतिस्रावण से रक्त में फॉस्फोरस की मात्रा कम, परन्तु कैल्शियम की मात्रा अधिक हो जाती है किन्तु हड्डियों में कैल्शियम की कमी हो जाने से वे छिद्रमय व भुरभुरी हो जाती है। रक्त में कैल्शियम अधिक होने से वृक्कों में कैल्शियम जमा होने लगता है तथा गुर्दों में पथरियाँ (Renal Stones) बन जाती हैं।

10.4.4 एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थियाँ (Adrenal Gland or Suprarenal Glands) - दो एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थियाँ प्रत्येक वृक्क के ऊपरी एवं सामने के भाग पर स्थित रहती हैं। ये ग्रन्थियाँ तिकोने आकार की होती हैं। प्रत्येक ग्रन्थि का बाह्य भाग कॉर्टेक्स तथा आन्तरिक भाग मेड्यूला (Medulla) कहलाता है। इन दोनों भागों से स्रावित हॉर्मोन्स अलग-अलग होते हैं व इनके कार्य भी अलग होते हैं-

- एड्रीनल कॉर्टेक्स (Adrenal cortex)
- एड्रीनल मेड्यूला (Adrenal Medulla)

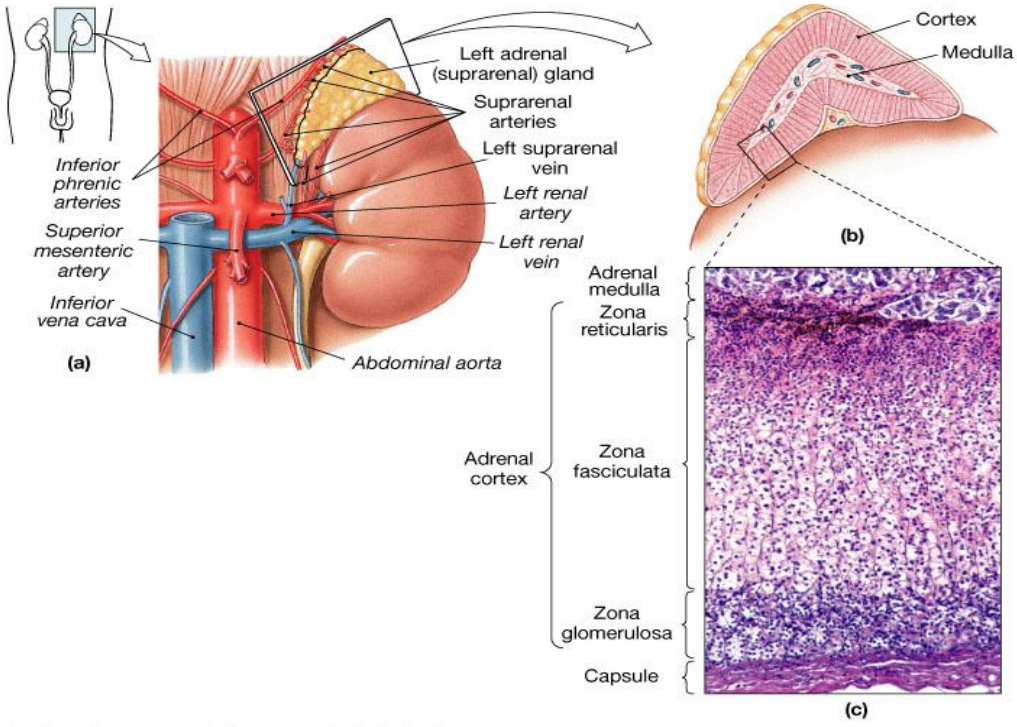

The Adrenal Gland

(क) एड्रीनल कॉर्टेक्स - इनसे कई हॉर्मोन्स उत्पन्न होते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से कार्टिकोस्टीरॉयड्स कहा जाता है। कॉर्टेक्स तीन क्षेत्रों में विभाजित रहता है जिनसे निम्न तीन मुख्य वर्गों के स्टीरॉयड हॉर्मोन स्रावित होते हैं-

1) वाह्य क्षेत्र से मिनरलोकॉर्टिकायड्स - इनके अन्तर्गत एल्डोस्टीरॉन तथा डीहाइड्रोइपीएण्ड्रोस्टेरोन दो हार्मोन्स का समावेश होता है जिनमें एल्डोस्टेरोन प्रमुख हैं। इसका कार्य शरीर में सोडियम एवं पोटेशियम के सन्तुलन को बनाए रखना है।

2) मध्य क्षेत्र से ग्लूकोकोर्टिकॉयड्स - ये रक्त शर्करा की सान्द्रता को नियन्त्रित करने में सहायक होते हैं ये निम्न दो तरह के होते हैं- कार्टिसॉल या हाइड्रोकॉर्टिसोन एवं कॉर्टिकोस्टीरॉन सभी तरह के भोज्य पदार्थों के चयापचय को प्रभावित करते हैं, एन्टी इन्फ्लेमेटरी ऐजेण्ट की भांति कार्य करते हैं, वृद्धि को प्रभावित करते हैं तथा शारीरिक अथवा मानसिक तनावों को कम करते हैं। ये यकृत द्वारा संग्रह किये गए प्रोटीन को ग्लाइकोजन में परिवर्तित (Gluconeogenesis) करते हैं और कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के उपयोग को कम करते हैं जिससे रक्त शर्करा स्तर बढ़ जाता है लेकिन यह पेन्क्रियाज द्वारा स्रावित इन्सुलिन के प्रयोग से सन्तुलित रहता है। इनके अतिस्रावण से कुशिंग रोग उत्पन्न हो जाता है।

3) आन्तरिक क्षेत्र से सेक्सहॉर्मोन या गोनाडोकॉर्टिकॉयड्स - इसके अन्तर्गत एण्ड्रोजन्स (Androgen)] ईस्ट्रोजन्स (Estrogens) तथा प्रोजेस्टेरोन (Progesterone)] इन तीन लिंग हॉर्मोन्स का समावेश होता है। जिनका सम्बन्ध जनन तथा लैंगिक विकास से होता है।

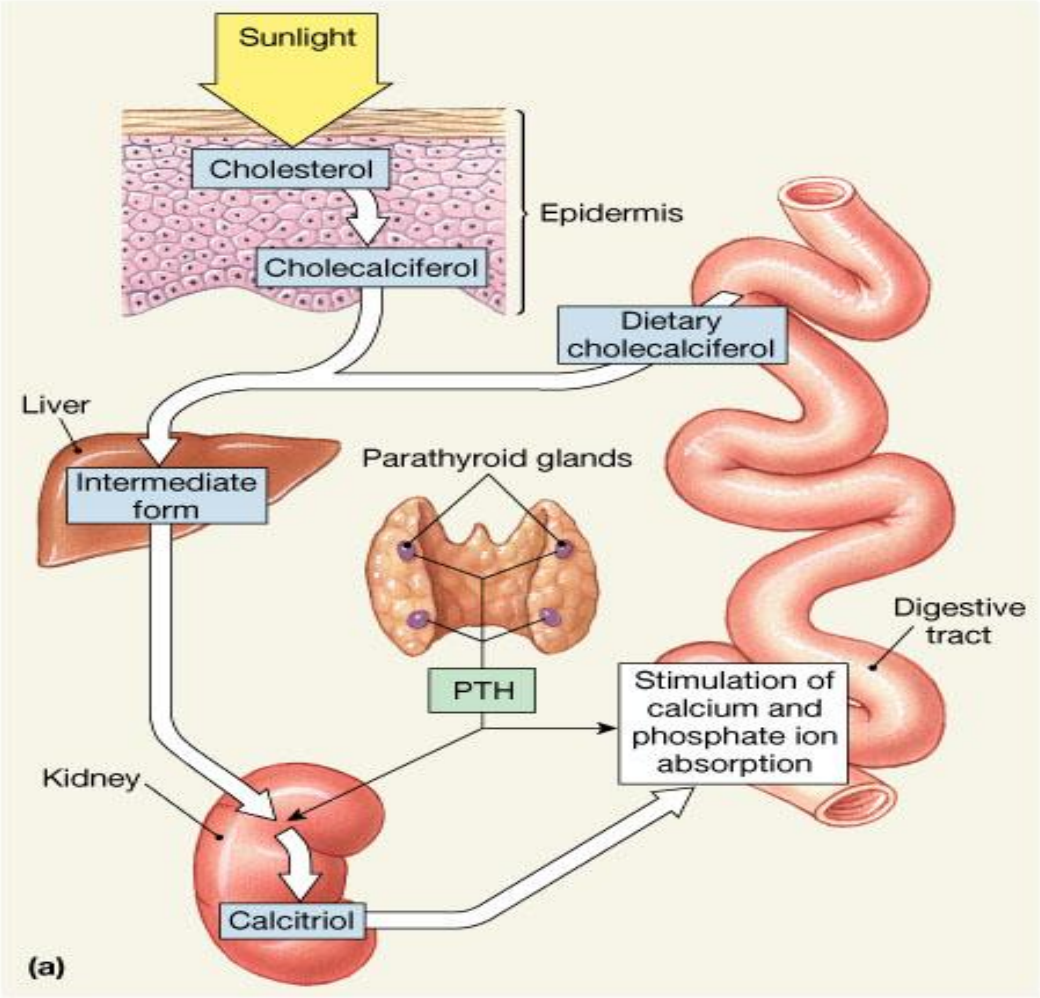

Endocrine Functions of the Kidneys

(ख) एड्रीनल मेड्यूला - यह एड्रीनल ग्रन्थि का आन्तरिक भाग होता है जो कॉर्टेक्स से पूर्ण रूप से ढका रहता है। इससे केटेकोलामाइन (Catecholamines) अर्थात् एड्रीनेलिन या एपिनेफ्रीन तथा नॉरएड्रीनालीन या नॉरएपिनएफ्रीन दो हॉर्मोन्स उत्पन्न होते हैं।

एड्रीनेलिन या एपिनेफ्रीन के कार्य -

- कंकालीय पेशियों एवं अन्तरांग की रक्तापूर्ति करने वाली

  धमनियों को विस्तारित करता है।

- हृदय धड़कन की दर एवं शक्ति को बढ़ाता है। हृदय से रक्त की

निकासी (Cardiac output) को बढ़ाता है।

- बढ़ी हुई हृदय रक्त की निकासी एवं परिसरीय वाहिका संकुचन (peripheral vasoconstriction) अर्थात् त्वचा की रक्तवाहिनियों को संकुचित करके रक्तचाप को बढ़ाता है।
- पाचन संस्थान (digestive system) की चिकनी पेशियों के संकुचन को रोककर शिथिलता उत्पन्न करता है।
- श्वास नलिकाओं को विस्तारित करता है तथा श्वास दर (respiratory rate) को बढ़ाता है।
- कंकालय पेशियों में होने वाली थकान की दर को घटाता है।
- चयापचयी दर को बढ़ाता है। यकृत एवं पेशियों में विद्यमान ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित करके रक्त में शर्करा का स्तर तथा पेशियों में लैक्टिक एसिड का स्तर बढ़ाता है।
- नानएडीनेलिन के कार्य -
- हृदय की रक्तवाहिकाओं को विस्तारित करता है तथा अन्य अंगों में वाहिकासंकुचन करता है। हृदय धड़कन की दर एवं इसकी रक्त निकासी को बढ़ाता है।
- परिसरीय वाहिकासंकुचन करके रक्तचाप को बढ़ाता है।
- जठरान्त्र पथ की चिकनी पेशी को शिथिल करता है।
- लिपिड चयापचय को बढ़ाता है तथा वसा ऊतक को उन्मुक्त वसीय अम्लों को मुक्त करता है।

10.4.5 अग्न्याशय (Pancreas) अग्न्याशय ग्रंथि के बाँए सिरे पर कुछ ग्रंथियां एकद्वीप की भाँति होती हैं। इन ग्रंथियों के स्राव को 'मधुसूदनी' अथवा 'इन्सुलिन' (Insulin) कहा जाता है। यह इन्सुलिन लैगरहेन्स की द्विपीकाओं से निकलता है। यह स्राव रक्त में मिलकर कार्बोहाइड्रेट के अंश तथा ग्लूकोज आदि को धारण कर उन्हें शरीर में प्रयुक्त होने योग्य बनाता है। इस स्राव की कमी से मनुष्य को 'मधुमेह' (Diabetes) नामक रोग हो जाता है।

जब यकृत के भीतर कोई दोष उत्पन्न हो जाता है अथवा मनुष्य चीनी का अधिक सेवन करता है, उस समय रक्त के भीतर चीनी की मात्रा अधिक बढ़ जाती है, तब उक्त ग्रंथियाँ जिन्हें 'आइसलेट्स आफ लैंगर हैन्स' (Islets of langer hans) कहते हैं, उत्तेजित होकर अधिक इन्सुलिन उत्पन्न करती है।

अग्न्याशय अर्थात् क्लोम ग्रंथि से अग्नाशय रस का स्राव होता है, जो भोजन को पचाने में सहायता करता है।

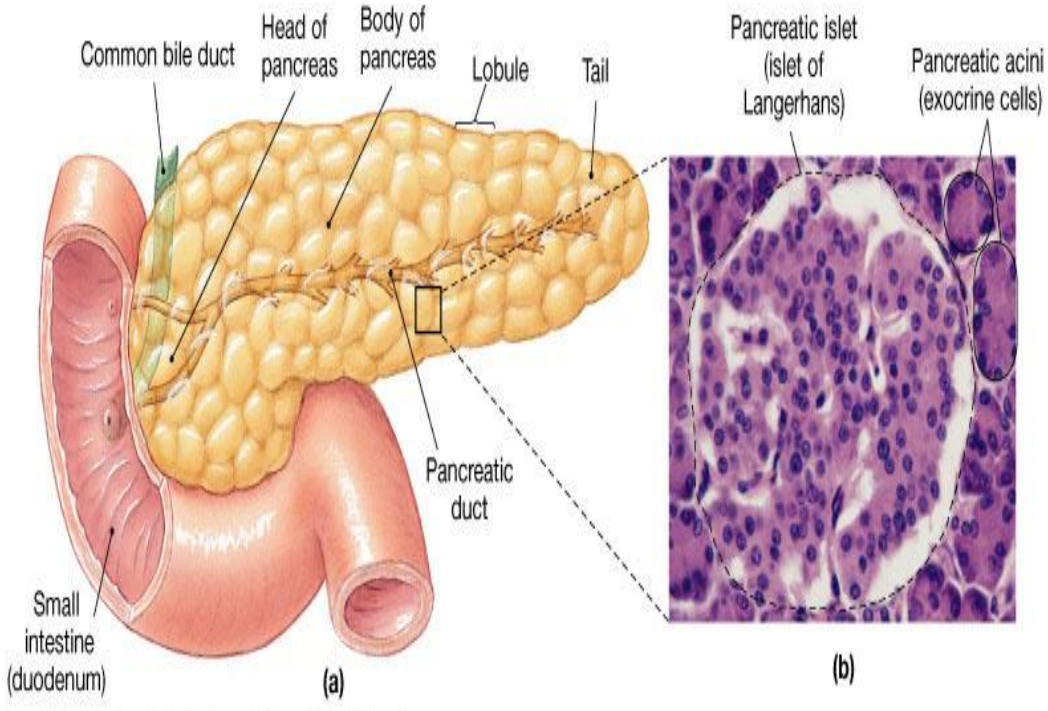

The Endocrine Pancreas

वयस्क पैक्रियाज में 2,00,000 एवं 20,00,000 के बीच अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ विद्यमान रहती हैं जो सम्पूर्ण ग्रन्थि में छितराई हुई फैली रहती हैं। द्वीपिकाओं में चार विशेष प्रकार की कोशिकाएँ रहती हैं जिन्हें एल्फा, बीटा, डेल्टा तथा एफ कोशिकाएँ कहा जाता है। इनमें से एल्फा कोशिकाएँ ग्लूकैगॉन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं जो यकृत को उद्दीप्त करके ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित कर देता है जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है।

बीटा कोशिकाएँ इन्सुलिन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं जो रक्त में विद्यमान ग्लूकोज को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करता है, तदुपरान्त यह यकृत एवं पेशियों में संचित हो जाता है। इन्सुलिन शरीर की ऊतक कोशिकाओं की पारगम्यता को बढ़ा देता है जिससे रक्त से ग्लूकोज कोशिकाओं में पहुँच जाता है। इन्सुलिन एवं ग्लूकेगॉन दोनों हॉर्मोन्स प्रायः एक-दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य बना रहता है। डेल्टा कोशिकाएँ सोमेटोस्टेटिन नामक हॉर्मोन स्रावित करती हैं जो अग्रपिट्यूटरी ग्रन्थि से वृद्धि हॉर्मोन को मुक्त होने में बाधा उत्पन्न करता है तथा ग्लूकेगॉन एवं इन्सुलिन दोनों के स्राव को भी रोकता है। एफ कोशिकाएँ अग्न्याशयिक पॉलीपेप्टाइड स्रावित करती हैं जो भोजन के उपरान्त रक्तधारा में पहुँचता है, परन्तु इसके अन्तःस्रावी कार्य अभी अज्ञात है।

10.4.6 पीनियल ग्रंथि (Pineal Gland) इस ग्रंथि का स्राव पुरुषों तथा स्त्रियों में समय से पूर्व पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व के चिह्न प्रकट नहीं होने देता।

यह मटर के दाने के आकार की लाल से भूरे रंग की रचना है जो मस्तिष्क के प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के भीतर गहराई में, तृतीय वेन्ट्रिकल के पिछले छोर पर स्थित रहती है। इसका कार्य अज्ञात है। यौवनारम्भ के पश्चात् इस ग्रन्थि

का अपक्षय हो जाता है और वृद्धावस्था में यह कैल्सिफाइड हो जाती है तथा खोपड़ी के एक्स - रे में यह उपयोगी पहचान चिन्ह का कार्य करती है।

10.4.7 थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland) इस ग्रंथि का स्राव बालक के शरीर की वृद्धि करने में सहायक होता है। इस स्राव की कमी से मनुष्य छोटे कद का तथा दुर्बल रह जाता है। किसी-किसी मनुष्य में इस ग्रंथि की स्राव की कमी के कारण 'श्वास' या 'दमा' (Asthama) नामक रोग भी हो जाता है। थाइमस ग्रन्थि वक्षीय गुहा में स्टर्नम के पीछे श्वासप्रणाल के विभाजन के स्तर पर स्थित एक लिम्फॉयड अंग है। इसमें दो खण्ड होते हैं जो संयोजी ऊतक की एक परत से आपस में जुड़े रहते हैं। यह उम्र के अनुसार भिन्न-भिन्न आकार की होती है। जब तक बालक की उम्र दो वर्ष की नहीं हो जाती तब तक बढ़ती रहती है, इसके बाद यह सिकुड़ती जाती है, अतः वयस्क में यह मात्र तन्तुमय अवशेष की अवस्था में पायी जाती है।

कार्य – थायमस ग्रन्थि का मुख्य कार्य टी-कोशिकाओं का निर्माण करना है जो शरीर की रोगक्षमता बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस ग्रन्थि से स्रावित स्राव का प्रभाव जननेन्द्रियों के विकास तथा यौवनारम्भ पर पड़ता है। अस्थियों का पूर्ण विकास होने तक यह उनके विकास पर नियन्त्रण रखता है।

10.4.8 जनन ग्रन्थियाँ (Gonads - Ovaries and Testes) - पुरुषों में वृषण ग्रन्थियाँ और स्त्री में डिम्ब ग्रन्थियाँ जनन ग्रन्थियाँ या लिंग ग्रन्थियाँ कहलाती हैं। ये वो हॉर्मोन्स स्रावित करती है जो प्रजनन कार्यों के नियमन में सहायता करते हैं। पुरुष में वृषण ग्रन्थियों से टेस्टोस्टीरॉन तथा स्त्रियों में डिम्ब ग्रन्थियों से एस्ट्रीजन एवं प्रोजेस्टेरॉन हॉर्मोन स्रावित होते हैं।

वृषण ग्रंथि - ये संख्या में दो होती हैं। प्रत्येक ग्रंथि में लगभग **1000** मुड़ी हुई पतली नलियाँ रहती है। प्रत्येक नली की लंबाई **2** से **3** फुट तक होती है। अण्ड ग्रंथियां अण्डकोष के दाँई तथा बाँई ओर रहती है। यथार्थ में ये पतली नलियों की गुच्छ ही होती है। प्रत्येक गुच्छ की लम्बाई लगभग डेढ़ इंच, चौड़ाई **1** इंच तथा मोटाई **1** इंच होती है। पुरुषों की अण्ड ग्रंथियों से उत्पन्न होने वाले स्राव को **'**टेस्टीकुलर हॉरमोन**'** (Testicular Hormone) कहते हैं। यह स्राव पुरुषोचित गुणों का विकास कर शरीर को स्वस्थ बनाता तथा शक्ति प्रदान करता है।

डिम्ब ग्रंथि - ये ग्रंथियां दो प्रकार के स्रावों को बनाती हैं, 1. ऋतु जनक स्राव (Oestrogenic Hormoen) तथा 2- स्तन्यवर्द्धक स्राव (Luteal Hormone)।

ऋतुजनक स्राव' स्त्रियों के शरीर में स्त्रियोचित गुणों का विकास कर, उन्हें कोमलता, सुन्दरता, शारीरिक सौष्ठव, स्तनों की सुडोलता एवं मासिक धर्म की नियमितता आदि प्रदान करता है। 'स्तन्यजनक स्राव' गर्भावस्था में माता के स्तनों में दूध उत्पन्न करता है। इस स्राव का प्रभाव केवल गर्भावस्था में तथा शिशु के जन्म के बाद उसके स्तन-पान करने की अवधि तक ही रहता है। उसके बाद यह बन्द हो जाता है।

ऋतुजनक स्राव' अपना कार्य नियमित रूप से करता रहता है। इस स्राव के न होने पर स्त्रियों को दुर्बलता, हृदय की धड़कन का बढ़ना, सिर का चकराना तथा स्वभाव में चिड़चिड़ापन आदि व्याधियों का शिकार होना पड़ता है।

डिम्ब ग्रंथियाँ भी संख्या में दो होती हैं। एक गर्भाशय के दाँई ओर तथा दूसरी गर्भाशय के बाँई ओर रहती है। इनकी बनावट भी पुरुषों की अण्ड-ग्रंथियों जैसी ही होती है।

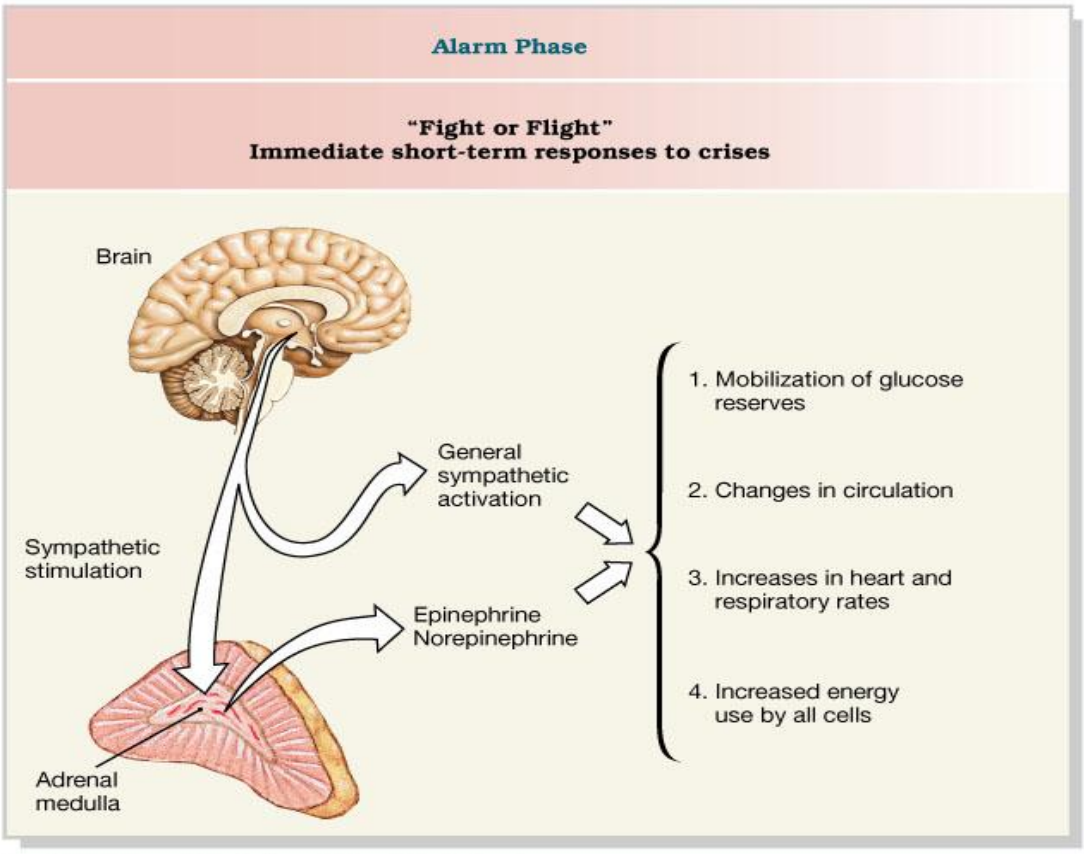

The General Adaptation Syndrome

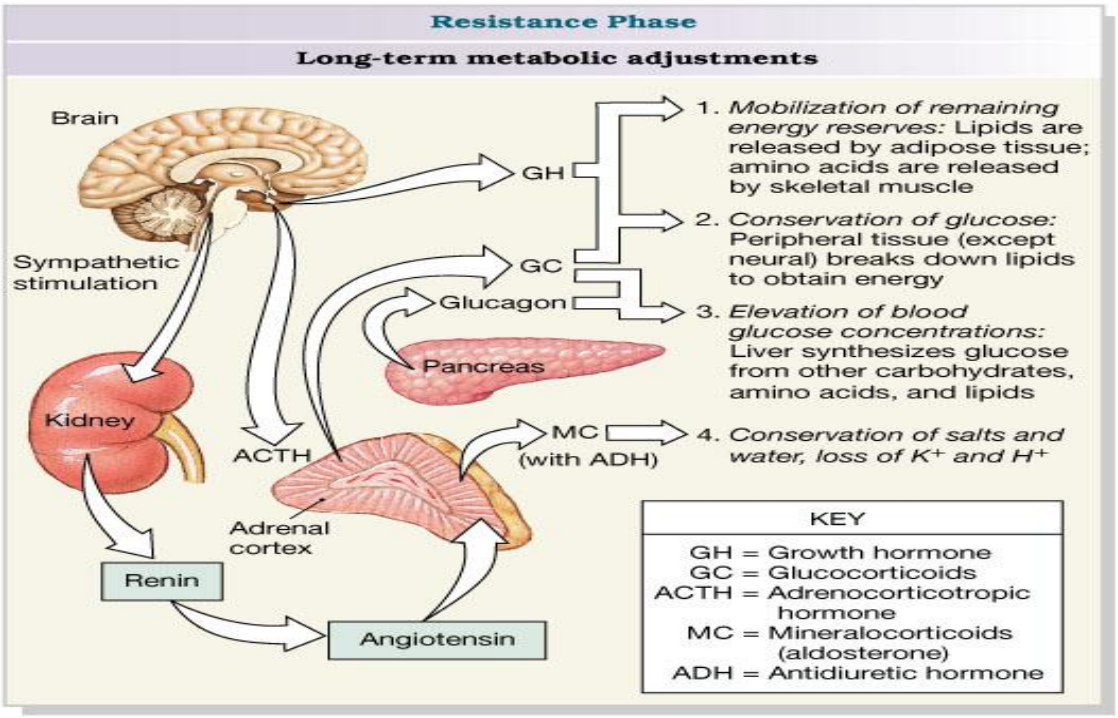

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से उत्पन्न स्राव को.....कहते है।

(ख) पैराथॉर्मोन हॉर्मोन के अल्पस्रावण से.....नामक रोग हो जाता है।

(ग) एड्रीनल ग्रन्थि का बाह्य भाग.....तथा आंतरिक भाग.....कहलाता है।

(घ) जनन व लैंगिक विकास से सम्बन्धित तीन लिंग हॉर्मोन..... , ... और ..... रोग हो जाता है।

(ड.) थाइमस ग्रन्थि के स्राव की कमी के कारण.....रोग हो जाता है।

(च) .....ग्रन्थि का स्राव पुरूषों तथा स्त्रियों में समय से पूर्व पुरूषत्व अथवा स्त्रीत्व के चिन्ह प्रकट नहीं होने देता।

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) अंत:स्रावी ग्रन्थियों को वाहिकामय तथा बहि:स्रावी ग्रन्थियों को वाहिनीहीन ग्रन्थियॉ भी कहते हैं।

(ख) अग्नाशयिक द्वीपिकाओं की एल्फा कोशिका ग्लूकैगॉन तथा बीटा कोशिका इन्सुलिन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं।

(ग) पीयूष ग्रन्थि को हाइपोफाइसिस के नाम से भी जाना जाता है।

(घ) जब रक्त में T3 व T4 हॉर्मोन कम हो जाते हैं तो पीयूष ग्रन्थि से स्रावित थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन का (TSH) स्रावण भी कम हो जाता है।

10.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि अंत:स्रावी तंत्र एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्थान है जो लगभग समस्त शरीरिक एवं मानसिक विकासक्रम की क्रियाओं में सहायता प्रदान करता है।

अंत:स्रावी तंत्र की ग्रन्थियों में वाहिनियॉ नहीं होती अत: इन्हें वाहिकाहीन ग्रन्थियॉ भी कहा जाता है। अंत:स्रावी ग्रन्थियों से उत्पन्न स्राव हॉर्मोन कहलाता है जो ग्रन्थियों से निकलकर सीधे रक्त में मिल जाता है और रक्त के साथ भ्रमण करते हुए शरीर के उस अंग में पहुँचता है जिस पर उसकी क्रिया होनी होती है हॉर्मोन अति सूक्ष्म मात्रा में उत्पन्न होता है तथा प्रत्येक हॉर्मोन का एक निश्चित कार्य होता है। अंत:स्रावी ग्रन्थियॉ जैसे पीयूष ग्रन्थि, पीनीयल ग्रन्थि, एड्रीनल ग्रन्थि, थाइरॉइड ग्रन्थि, जनन ग्रन्थि इत्यादि शरीर में विभिन्न हॉर्मोन स्रावित कर शरीर की क्रियाओं में सहायता करती हैं जैसे वृद्धि, रोगों से शरीर की रक्षा, चपापचय, श्वसन, रक्त परिवहन आदि। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विभिन्न अतंस्रावी ग्रन्थियों के हॉर्मोन तथा उनके कार्यो को भली-भॉति समझ गये होंगे।

10.6 शब्दावली

मेटावालिज्म – शरीर में ऊर्जा निर्माण, उपयोग एवं ऊर्जा क्षरण को संयुक्त रूप से या उपापचय कहा जाता है।

श्रावण – निकलना

जनन – पैदा करना

पश्च – पिछला

अग्र – आगे

गलकण्ड – घेंघा, गले का एक रोग

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) हॉर्मोन

(ख) टिटैनी

(ग) कॉर्टेक्स, मेड्यूला

(घ) एन्ड्रोजन, इस्ट्रोजन, प्रोजेस्ट्रॉन

(ड.) दमा

(च) पीनियल

2. सत्य/असत्य

(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(घ) असत्य

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।

2. गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।

5. पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

6. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

7. दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा

8. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा

9. अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

10. Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अन्त:स्रावी तंत्र का परिचय देते हुए पीयूष ग्रन्थि पर प्रकाश डालिए।

2. अधिवृक्क एवं जनन ग्रन्थियॉ पर प्रकाश डालिए।

3. पीनियल तथा थायमस ग्रन्थियों की रचना व कार्य की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

4. थइराइड ग्रन्थि की रचना के कार्यो पर एक निबंध लिखिए।

इकाई 11-स्वास्थ्य की परिभाषा स्वास्थ्य के लक्षण तथा स्वस्थवृत्त का प्रयोजन

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 स्वास्थ्य:अर्थ एवं परिभाषाएं,

11.4 स्वास्थ्य के विभिन्न आयाम

11.5 स्वस्थ के लक्षण

11.6 स्वस्थवृत्त का प्रयोजन

11.7 सांराश

11.8 शब्दावली

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

स्वस्थवृत्त आयुर्वेद का सबसे महत्वपूर्ण अंग है।मानव शरीरधारी के लिए आरोग्य सर्वाधिक प्रथम आकांक्षा है। आरोग्यता ही मनुष्य जीवन को सार्थक बनाती हैं। आरोग्य रहकर ही मनुष्य अपने इहलौकिक एवं पारलौकिक कर्तव्यों को पूरा करने में समर्थ होता है प्रिय विद्यार्थियो इस ईकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायंगे कि स्वास्थ्य से हमारा क्या अभिप्राय है तथा किस प्रकार से हम अपने स्वास्थ्य का संवर्धन कर सकते हैं।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- स्वास्थ्य के अर्थ स्वरुप को स्पष्ट कर सकेंगें।
- विभिन्न दृष्टिकोणों से स्वास्थ्य को परिभाषित कर सकेंगे।
- स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- स्वस्थ्य व्यक्ति के लक्षणों का अध्ययन कर सकेंगे ।
- स्वस्थ्यवृत्त के प्रयोजन को स्पष्ट कर सकेंगें।

11.3 स्वास्थ्य:अर्थ एवं परिभाषायें

स्वस्थ शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- स्व+स्थ, स्व अर्थात् अपना, स्थ अर्थात् स्थित होना अतः अपने में स्थित व्यक्ति स्वस्थ कहलाता है।

स्व में शरीर, मन, अन्तःकरण, वाणी तथा आत्मा आते हैं। इन सबका अपनी जगह अवस्थित होना ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु है इस प्रकार है -

(क) जिसे काम करने में किसी प्रकार की तकलीफ न हो, हम से जो न उकताए, मन में काम करने के प्रति उत्साह बना रहे और मन प्रसन्न रहे और मुख पर आशा की झलक हो, यही शरीर की स्वाभाविक स्वास्थ्य की पहचान है।

(ख) W.H.O ने स्वास्थ्य की परिभाषा करते हुए कहा है. "Health is a state of complete physical mental, spiritual and social well being and not merely the absence of disease or infirmity."

(ग) सुश्रुत कहते है- जिस मनुष्य के वात, पित, आदि दोष के अनुसार समान स्थित हो, जो व्यक्ति के अनुसार समान रुप से क्रिया करता हो और उसके देह और मन प्रसन्न हो, वह मनुष्य निरोग कहलाता है।

(घ) आचार्य वाणभट्ट कहते हैं-

आयुः कामयमानेन धर्मार्थ सुरत साधनम्।

आयुर्वेदोपदेष विधेयः परमादरः।।

अतः मनुष्य को स्वस्थ रखने के लिए, पुर्णायु तक जीवन यापन के लिए निम्न प्रमुख नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ये शरीर अथवा जीवन के तीन उप स्तम्भ है – 1. आहार 2. निद्रा 3. ब्रह्मचर्य

जब कभी भी इनके समुचित परिपालन में किसी कारणवश व्यवधान उपस्थित होगा तभी रोगमूलक परिणाम होंगे। इस प्रकार जब तक हम स्वस्थवृत्त का पालन नहीं करेंगे तब तक इसी प्रकार बहुत सी आधि-व्याधियों से ग्रसित होते रहेंगे।

आज संसार की सभी प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों में निदान परिवर्जन एवं स्वास्थ्य रक्षण को अल्प एवं आतुरस्य रोग प्रशमनं को अधिक महत्व दिया जाता है जिसे हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के नाम से भी जानते है।

आयुर्वेद एक विज्ञान सम्मत चिकित्सा शास्त्र होने के साथ-साथ सम्पूर्ण जीवन विज्ञान भी है जो प्राचीन काल से इस सदेश में मानव जीवन को आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक रुप से आयोग्य प्रदान करता आ रहा है।

आयुर्वेद का मूल उद्देश्य हैं

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमम - आतुरस्य विकार प्रशमनं च।

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का परिरक्षण तथा रोगी के विकारों का प्रशमन करना है।

11.4 स्वास्थ्य के विभिन्न आयाम

प्रिय पाठकों, स्वास्थ्य के उपर्युक्त अर्थ को जानने के बाद आप समझ गये होंगे कि वर्तमान समय में स्वास्थ्य शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होने लगा है। पहले केवल शारीरिक रुप से स्वास्थ्य व्यक्ति को ही सम्पूर्ण रुप से स्वस्थ्य मान लिया जाता था किन्तु वर्तमान समय मे स्वास्थ्य शरीर तक सीमित न रहकर मन समाज एवं आत्मा तक पहुँच गया है।

अर्थात - शरीर के साथ - साथ यदि हमारा मन सम्पूर्ण समाज और आत्मा प्रसन्न है। तब ही हम अपने आप को समग्र रुप से स्वस्थ कह सकते है। अतः उपयुक्त परिभाषाओं का का यदि विश्लेषण किया जाये तो स्वास्थ्य के निम्नलिखित आयाम उभरकर हमारे सामने आते हैं-

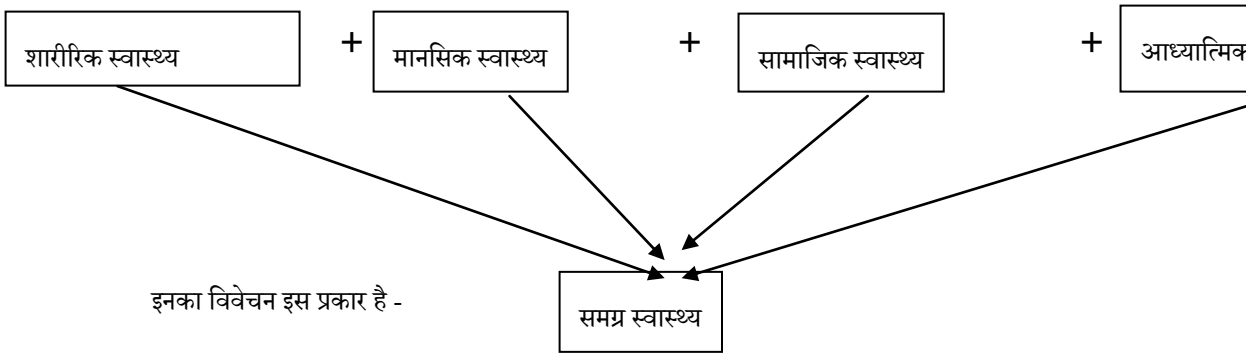

शारीरिक स्वास्थ्य - शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ है हमारे शरीर के विभिन्न संस्थानो जैसे कि कंकाल तंत्र, पेशीय तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, अन्तः स्रावी तंत्र, तंत्रिका तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, प्रजनन तंत्र, पाचन तंत्र, इत्यादि का अपनी सम्पूर्ण कार्य क्षमता के साथ अपना - अपना कार्य करना।

जब शरीर का प्रत्येक अंग सक्रिय होता है तथा ठीक ढग से कार्य करता है तो विभिन्न प्रकार के रोग हमारे शरीर में प्रवेश नही कर पाते है अर्थात हमारा शरीर स्वस्थ्य रहता है इसे ही शारीरिक स्वास्थ्य कहते है।

मानसिक स्वास्थ्य- शरीर के साथ-साथ हमारे मन का भी स्वस्थ होना तथा मानसिक प्रसन्नता का होना अत्यन्त आवश्यक हैं शरीर एवं मन का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है कहा भी गया है स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता हैं अर्थात यदि शरीर बीमार है तो मन भी बीमार रहता है और यदि शरीर स्वस्थ है तो मन भी स्वस्थ रहता है अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर यह मानसिक स्वास्थ क्या है ? किस प्राणी को मानसिक रुप से स्वस्थ कहा जा सकता है? मानसिक स्वास्थ के क्या लक्षण होते है ? तथा मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्ति कभी भी तनाव चिन्ता क्रोध इत्यादि मनोविकारो से पीडित नही होता है जिज्ञासु पाठकों यदि हम मानसिक स्वास्थ की अवधारणा पर चिचार करे तो हमे इन प्रश्नो का समाधान स्वतः मिल जायेगा। जो मानसिक स्वास्थ का मूलाधार है। यह समायोजन आन्तरिक और बाह्य दोनों ही स्तर पर होता है।

अर्थात एक व्यक्ति को अपनी मनःस्थिति (आन्तरिक समायोजन) और परिस्थिति (बाह्य समायोजन) दोनों के साथ ही उचित तालमेल बनाये रखना होता है जिससे कि वह प्रत्येक परिस्थिति व समय में अपने कार्यो को ठीक-ठीक अंजाम दे सके। मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति भी कभी-कभी किसी व्यक्ति वस्तु,घटना या परिस्थिति के कारण तनाव, चिन्ता इत्यादि से ग्रस्त हो सकता है किन्तु अन्तर इतना होता है कि उस व्यक्ति में ये तनाव कुछ देर तक इनसे आक्रांत होने पर भी मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति इस बात से भली-भांति अवगत होता है कि इस समस्या से निकलने के लिए क्या किया जा सकता है और अपनी इसी क्षमता और सजगता के आधार पर वह उस व्यक्ति वस्तु या घटना के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है, जो तनाव का कारण होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समायोजनशीलता सामाजिक रूप से अनुकूल व्यवहार, एवं संतुलित मनोदशा ये तीन मानसिक स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ हैं।

सामाजिक स्वास्थ्य -

विद्यार्थियों स्वास्थ्य का तीसरा महत्वपूर्ण आयाम हैं सामाजिक स्वास्थ्य व मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं, यह समाज का एक अभिन्न अंग हैं समाज अपने आप में कोई अलग संस्था नही हैं वरन् प्राणी समूह मिलकर ही एक समाज का निर्माण करते हैं कौन समाज कैसा होगा यह उस समाज के प्राणियों पर निर्भर करता हैं अर्थात यदि समाज में रहने वाले लोग यदि स्वस्थ एवं प्रसन्न है तो वह सम्पूर्ण समाज एक स्वस्थ समाज कहलायेगा किन्तु यदि बीमार एंव पीडित लोग उस समाज के सदस्य हैं, तो वह पूरा समाज ही रोगग्रस्त होगा अतः स्पष्ट हैं कि किसी भी समाज का स्थापत्य और समाज के प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक मानसिक एंव आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता हैं स्वस्थ व्यक्ति मिलकर ही एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं सामाजिक स्वास्थ्य का यही आशय हैं

आध्यात्मिक स्वास्थ्य - आध्यात्मिक स्वास्थ्य, स्वास्थ्य का चरमोत्कर्ष है आयुर्वेद में कहा गया है कि शरीर, मन, इन्द्रिय, के साथ - साथ हमारी आत्मा का प्रसन्न होना या स्वास्थ्य हो ना भी अत्यधिक आवश्यक है। आत्मा को प्रसन्न होने का आशय है कि ऐसे कर्म किये जाये जिससे आत्मा का कल्याण हो हमारी आत्म चेतना विकसित हो आत्म संन्तोष की प्राप्ति हो वस्तुतः स्वार्थ एवं अहंकार रहित अर्थात बिना किसी कामना के सेवा भाव से युक्त होकर जो सत्कर्म किया जाता है उसी से हमारी आत्मा प्रसन्न हो सकती है।

अतः प्राणी मात्र को निरन्तर सत्कर्म एवं सद्चिन्तन एवं करते हुये अपने आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करने का प्रयास करना चाहिये। यही आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने का सहज एवं सर्वसुलभ तरीका है।

अतः उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है, कि यदि हमेशा किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य की ठीक पहचान करनी हो तो न केवल उसके शरीर एवं मन वरन उसके आध्यात्मिक धरातल तक पहुंचना होगा और फिर इसी आधार पर उस समाज के स्वास्थ्य की कल्पना की जा सकती है। जिसका वह सदस्य है। अतः प्राणी मात्र को अपने शरीर, मन, आत्मा, तीनों ही पक्षों के समग्र विकास पर ध्यान देना चाहिए जिससे कि एक स्वस्थ्य समाज स्वस्थ राष्ट्र और अन्ततः एक स्वस्थ विश्व का निर्माण हो सके।

11.5 स्वस्थ के लक्षण

आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण है-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलकियः।

प्रसन्नात्मन्द्रियमनाः स्वस्थ्य इत्यमिधीयते।। सु.मू. 15-41

अर्थात् जिस पुरुष के दोष, धातुमल तथा अग्निव्यापार सम हो अर्थात् सामान्य (विकार रहित) हो तथा जिसकी इन्द्रियाँ मन तथा आत्मा प्रसन्न हो, वही स्वस्थ है।

आयुर्वेद में वात् पित और कफ इन तीनों का बड़ा महत्व है। इनकी साम्यावस्था में व्यक्ति निरोग रहता है और इसमें दोष उत्पन्न हो जाने से रस् धातु आदि का निर्माण ठीक हो पाताए जिससे रोग उत्पन्न हो जाता है। दिनचर्या रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या के नियमों का विधिवत् पालन करने से व्यक्ति निरोग रहता है। वर्तमान समय में अस्त-व्यस्त दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या के अनुसार आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य आदि के नियमों का ठीक तरीके से पालन न करने से अनेकानेक रोग उत्पन्न हो रहे है।

अतः स्वस्थवृत्त व सद्वृत्त का अपने जीवन में पालन करना आवश्यक व महत्वपूर्ण है व प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में स्वस्थवृत्त के नियमों का अभ्यास करना चाहिए।

आत्मा

सत्व (मन)

इन्द्रिय

ज्ञानेन्द्रिय + कर्मेन्द्रिय

शरीर

अभ्यास प्रश्न - एक - पंक्ति में उत्तर दीजिये

प्रश्न **1-** "Health is a state of complete physical mental, spiritual and social well being and not merely the absence of disease or infirmity." स्वास्थ्य की यह परिभाषा किसने दी है ?

प्रश्न 2- स्वास्थ्य के कितने आयाम बताये गये है नाम लिखिये।

प्रश्न 3- समदोषः समाग्निश्च समधातुमलकियः।

प्रसन्नात्मन्द्रियमनाः स्वस्थ्य इत्यमिधीयते।।

यह किस ग्रन्थ में कहा गया हैं

प्रश्न 4- आयुवेद के अनुसार जीवन के तीन उपस्तंभ कौन - कौन से हैं ?

11.6 स्वस्थवृत्त का प्रयोजन

प्रिय पाठको स्वस्थवृत्त का प्रयोजन या उद्देश्य जानने से पूर्व इस बात को समझना अत्यन्त आवश्यक हैं कि आखिर स्वस्थवृत्त से क्या अभिप्राय हैं, स्वस्थ व स्वास्थ्य के अर्थ को इससे पूर्व के पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका हैं। किन्तु अब स्वस्थवृत इस शब्द विशेष को प्रयुक्त करने का क्या कारण हैं या क्या आशय हैं स्वस्थ में जुडा वृत्त शब्द जिसकी ओर संकेत कर रहा हैं अपनी इन जिज्ञासाओं के समाधान के लिये स्वस्थवृत्त के अर्थ से भलीभॉति परिचित होना बहुत जरूरी हैं तभी स्वस्थयवृत्त के उद्देश्य को भी ठीक -ठीक समझा जा सकता हैं स्वस्थ से तात्पर्य स्वस्थ प्राणी से है अर्थात जिसका शरीर इन्द्रिय मन और आत्मा चारों प्रसन्न हो तथा वृत्त से आशय एक जीवनशैली या आचरण विशेष से है। जो उस स्वस्थ पुरूष द्धारा अपनाया जाता हैं अर्थात स्वस्थ प्राणी द्धारा अपने सामंजस्य संम्बर्धन एवं रोग प्रशाधन के लिये जिस आचार विचार या जीवनशैली को अपनाया जाता हैं उसे स्वस्थवृत्त कहते हैं कहा भी गया है।

'उत्थायोत्याय सतत्
स्वस्थेनारोग्यं मिच्छता ।

धीमता यदनुष्ठेय तदस्मिन् सम्प्रवक्ष्यते।।

(स्व.वृ.स.1)

अर्थात स्वास्थ्य परिरक्षण हेतु स्वस्थ पुरूष को नित्य सोकर उठने के बाद जो कर्म करना चाहियें उसे ही स्वस्थवृत्त कहते हैं:

पाठको स्वस्थवृत्त का अर्थ स्पष्ट हो जाने के बाद अब बारी आती है। स्वस्थवृत्त के प्रयोजन अर्थात उद्देश्य को जानने की स्वस्थवृत्त के प्रयोजन से आशय हैं कि किन कारणो से किस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आयुर्वेद में इस बात पर बल दिया गया हैं कि स्वस्थ मनुष्य को असंयमित जीवनशैली न अपनाकर अनुशासित एवं सुव्यवस्थित संयमित

जीवनशैली का आचरण करना चाहिये, नियमित रुप से अपनी दिनचर्या रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या सद्वृत्त एवं आचार रसायन का पालन करना चाहिये। नीचे स्वस्थवृत्त का जो प्रयोजन बताया जा रहा हैं उसको पढ़ने के बाद आपको उपयुक्त प्रश्नों का जवाब स्वतः ही मिल जायेगा।

शरीर और जीवात्मा के संयोग का नाम जीवन है तथा उस जीवन की उपस्थिति ही आयुष्य है। आरोग्य के लिए आयुर्वेद के उपदेशों को विधिपूर्वक निर्वाह करना मनुष्य मात्र का आदि कर्तव्य है। आरोग्य के बिना पुरुषार्थ चतुष्य की प्राप्ति ही नहीं हो सकती।

चरक संहिता में कहा गया है-

धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। (च.सू. 1)

अर्थात् मनुष्य को स्वस्थवृत्त का मनोयोग पूर्वक अनुष्ठान करते हुए सदा स्वस्थ रहकर पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हेतु तत्पर रहना चाहिए।

आचार्य सुक्षुत ने निम्न सन्दर्भ में पूर्ण स्वास्थ्य के लक्षणों का अतयन्त वैज्ञानिक वर्णन किया है, जो पुरुष के चारों पक्ष शरीर, इन्द्रिय, सत्व और आत्मा का संयोग है।

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।

स्वस्थवृत्त - आचार्य चरक के अनुसार- स्वस्थ पुरुष ही चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कर सकता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणोमारोग्ये मूलमुत्तमम।

रोगास्तस्यापहतारिः श्रेयसो जीवितस्य च। (च.सू. 14-15)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये हमारे जीवन के चार पुरुषार्थ है जिनकी प्राप्ति आवश्यक बतायी गयी है। और इन्हें प्राप्त करने के लिए हमारा स्वस्थ रहना जरुरी है और स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थवृत्त का पालन जरुरी है।

इन चारो पुरुषार्थों को प्राप्त करने में उत्तम स्वास्थ्य ही सहायक है और स्वस्थवृत्त के बिना स्व का रहना कठिन है। इसलिए हमारे महर्षियों ने स्वस्थवृत्त का निर्धारण किया है।

स्वस्थवृत्त

- स्वास्थ्य परिरक्षण हेतु स्वस्थ पुरुष द्वारा अपनायी जाने वाली जीवनशैली ।
- प्रयोजन- स्वास्थ्य परिरक्षण,विकार प्रशमन।

अभ्यास प्रश्न

एक - एक पंक्ति में उत्तर दीजिये।

प्रश्न -5 स्वस्थवृत्त से क्या आशय है ?

प्रश्न -6 स्वस्थवृत्त का प्रयोजन बताइये।

प्रश्न -7 मानव जीवन के चार पुरुषार्थ कौन - कौन से बताये गये हैं ?

प्रश्न -8 धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। यह किस ग्रन्थ में कहा गया है ?

प्रश्न -9 पुरुषार्थ चतुष्टय से आप क्या समझते है ?

प्रश्न -10 मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये किसका पालन करना जरुरी है ?

11.7 सारांश

स्वास्थ्य– शरीर,इन्द्रिय, मन एवं आत्मा इन चारो का सम्पूर्ण रुप से स्वस्थ होना ही समग्र स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्य के आयाम ¬. स्वास्थ्य के निम्न चार आयाम हैं।

(क) शारीरिक स्वास्थ्य

(ख) मानसिक स्वास्थ्य

(ग) सामाजिक स्वास्थ्य

(घ) आध्यात्मिक स्वास्थ्य

स्वस्थ्यवृत्त - स्वस्थ पुरुष द्धारा स्वास्थ्य परिरक्षण जीवन शैली को स्वस्थ्यवृत्त कहते हैं।

स्वस्थ्यवृत्त के प्रयोजन - स्वस्थ्यवृत्त के निम्न दो प्रयोजन है

1. स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य का संवर्धन करना।
2. रोगग्रस्त प्राणी के विकारों (रोगो) का नाश करना।

11.8 शब्दावली

सत्व -मन

पुरुषार्थ चतुष्टय -चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

वृत्त - आचरण विशेष या जीवन शैली

परिरक्षण –संवर्धन होना,रक्षा करना

प्रशमन -नष्ट करना।

स्तंभ -आधार।

आतुर - रोगी

विधिवत - नियम पूर्वक

एशणा – इच्छा, कामना।

11.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.विश्व स्वास्थ्य संगठन।

2. स्वास्थ्य के चार आयाम बताये गये हैं

- शारीरिक स्वास्थ्य

- मानसिक स्वास्थ्य
- सामाजिक स्वास्थ्य
- आध्यात्मिक स्वास्थ्य

3. सुश्रुत सूत्र

4. आयुर्वेद के अनुसार आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य ये जीवन के तीन उपस्तम्भ बताये गये हैं।

5. स्वस्थ मनुष्य द्वारा स्वास्थ्य परिरक्षण एवं विकार प्रशमन हेतु अपनायी जाने वाली जीवन शैली।

6. स्वस्थ्यवृत्त के निम्न दो प्रयोजन हैं

- स्वास्थ्य परिरक्षण
- रोग प्रशमन

7. धर्म, अर्थ, काम मोक्ष ये मानव जीवन के चार पुरुषार्थ है।

8. चरक सूत्र

9. धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष

10.मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये स्वस्थ्यवृत्त का पालन करना जरुरी है।

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह राम हर्ष (2007) स्वस्थ्यवृत्त विज्ञान चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान।
38 चु.ए. बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली।

2. सिंह राम हर्ष। (2006) योग एवं यौगिक चिकित्सा चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान बंगलो रोड, दिल्ली।

3. पाण्डे गंगा सहाय (2002) चरक संहिता अंक 1 और 2 चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

4. शास्त्री अम्बिका दत्त् (2002) सुश्रुत संहिता अंक 1 और 2 चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए स्वस्थ पुरूष के लक्षणों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

2. स्वस्थवृत्त से आप क्या समझते हैंघ स्वस्थवृत्त के प्रयोजन पर विस्तार से प्रकाश डालिये।

इकाई 12 - दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 दिनचर्या

12.4 प्रात: जागरण से रात्रिशयन पर्यन्त आदर्श दिनचर्श्या

12.4.1 निद्राव्यांग

12.4.2 आत्म बोध की साधना

12.4.3 पृथ्वी मॉ को नमास्कार

12.4.4 उषापान

12.4.5 शौच

12.4.6 दन्तधावन

12.4.7 जिह्वानिर्लेखन

12.4.8 अभ्यंग (मालिश)

12.4.9 क्षौरकर्म

12.4.10 व्यायाम

12.4.11 प्रत: भ्रमण

12.4.12 स्नान

12.4.13 वस्त्र धारण

12.4.14 संध्योपासन

12.4.15 आहार ग्रहण

12.5 रात्रिचर्या

12.5.1 रात्रिचर्या के सामान्य नियम

12.6 ऋतुचर्या

12.7 ऋतुचर्या : ऋतु के अनुकूल भोजन एवं सावधानिया

12.7.1 हेमन्त ऋतुचर्या

12.7.2 शिशिर ऋतुचर्या

12.7.3 वसन्त ऋतुचर्या

12.7.4 ग्रीष्म ऋतुचर्या

12.7.5 वर्षा ऋतुचर्या

12.7.6 शरद ऋतुचर्या

12.8 अध्याय सारांश

12.9 पारिभाषिक शब्दावली

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्व की इकाई में आप अध्यन कर चुके हैं कि स्वास्थ्य क्या है स्वस्थ व्यक्ति के क्या - क्या लक्षण होते हैं तथा किस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु स्वस्थवृत्त का प्रतिपादन किया गया वस्तुतः आयुर्वेद का जो प्रयोजन है। स्वास्थ्य परिरक्षण एवं विकार प्रशमन वही स्वस्थ्यवृत्त का भी प्रयोजन है। अब प्रश्न उठता हैं कि इस उद्देश्य की प्राप्ति किस प्रकार की जाय अर्थात ऐसे क्या उपाय अपनाये जाय जिससे व्यक्ति के स्वास्थय का निरन्तर संवर्द्धन हो सके और वह रोगो से आक्रान्त ना हो। इसी प्रयोजन को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत इकाई का प्रतिपादन किया गया हैं। स्वस्थवृत्त के उद्देश्य को पूरा करने के लिये आयुर्वेद में एक स्वस्थ व्यक्ति के लिये विशिष्ट जीवनशैली को अपनाने का निर्देश दिया गया हैं जिससे वर्णन हमें दिनचर्या रात्रिचर्या एंव ऋतुचर्या के रूप मे मिलता हैं अर्थात एक स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिये एक आदर्श दिनचर्या एवं रात्रिचर्या का पालन करता हैं तथा ऋतुओ के अनुसार अपना आहार विहार करता हैं तथा ऋतुओं के अनुसार अपना आहार विहार करता है। इसे ही स्वास्थवृत्त की सज्ञा दी गयी हैं अतः जिज्ञासु पाठकों को

- यह आदर्श दिनचर्या क्या हैं ?

- रात्रि को सोते समय क्या क्या सावधानियां रखनी चाहिये ?
- किस ऋतु मे क्या खाना चाहिये और क्या नही ?

इत्यादि आपके मन में उत्पन्न हो रहे प्रश्नों का अतंर आपको इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त स्वतः एवं मिल जायेगा।

12.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- आदर्श दिनचर्या की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मानव जीवन में अनुशासित दिनचर्या के महत्व का प्रतिपादन कर सकेगे ।
- दिनचर्या के साथ ही रात्रिचर्या के नियमों का पालन कितना आवश्यक है इस का अध्ययन कर सकेगे।
- विभिन्न ऋतुओ की जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- ऋतुओ के अनुसार विभिन्न प्रकार के आहार विहार का विश्लेषण कर पायेगे।
- .मानव जीवन में आयुर्वेद एंव स्वस्थवृत्त की महत्ता को स्पष्ट कर सकेगे
- जीवन जीने भी कला के रूप में स्वस्थ्वृत्त के कुछ महत्तवपूर्ण सूत्रो को आत्मसात् कर सकेंगे।

12.3 दिनचर्या

प्रतिदिन किए जाने वाले सदाचरण का नाम दिनचर्या है। अतः स्वस्थवृत्त के लिए प्रथम इसका वर्णन आवश्यक है।

सामान्य जीवन में हम जो वृत्तियाँ अपनाते है, उसे हम दिनचर्या कहते हैं। दिनचर्या का शाब्दिक अर्थ 'दिन' अर्थात् दिवस और चर्या अर्थात् चलना बढ़ना आदि अनेक अथों में इसका प्रयोग हुआ है।

दिनचर्या एक आदर्श समय सारणी है जो प्रकृति की क्रमबद्धता को मानती है। तथा उसी का अनुसरण करने का निर्देश देती है।

आयुर्वेद शास्त्र मे कहा गया है- कि हमें पूर्ण रुप से स्वस्थ रहने के लिए अपने शारीरिक क्रम को प्राकृतिक क्रम के अनुसार व्यवस्थित करना चाहिए, जिससे अन्य सभी क्रम स्वतः ही व्यवस्थित हो जाएँगे।

आज मानव भौतिकता की आंधी दौड़ मे इतना व्यस्त हो गया है कि हम स्वयं के स्वास्थ्य के साथ लापरवाही बरत रहे हैं। हमारी दिनचर्या अस्त-व्यस्त है। इसे हम स्वयं की भूल कहें या मजबूरी। हमारी दिनचर्या आहार-विहार सही नहीं है। जिसका दुष्परिणाम आज हमारे सामने है। विश्व के 95 प्रतिशत व्यक्ति किसी न किसी रोग से पीड़ित है, उन रोगों से

पीड़ित होने का मुख्य कारण है दिनचर्या का सही न होना जिससे अनिद्रा, हृदयरोग, उच्चरक्तचाप, मधुमेह, कब्ज, दमा, मानसिक परेशानियाँ आदि उत्पन्न हो रही है।

आज हमें स्वस्थ जीवन की आवश्यकता है जिसमे हमारा मानसिक स्वास्थ्य, शारीरिक स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक विकास हो सके, इसके लिए दिनचर्या का प्रकृति के नियमानुसार सामंजस्य स्थापित करना होगा, वर्तमान समय में मनुष्य का नए-नए रोगों की चपेट में आने का मुख्य कारण हमारी दिनचर्या का नियमित न होना है, एक स्वस्थ जीवन जीने के लिए हमें अपनी दिनचर्या का क्रम सही-सही करना ही होगा।

12.4 प्रातः जागरण से रात्रि-शयन पर्यन्त आदर्श दिनचर्या

आदर्श दिनचर्या के अन्तर्गत ब्रह्ममुहुर्त में उठना, आत्मबोध की साधना, पृथ्वी माँ को नमस्कार, उषापान, शौच, दंतधावन, अभ्यंग (तेल मालिश), प्रातः भ्रमण, व्यायाम, क्षौरकर्म, स्नान, वस्त्र धार, संध्योपसना, स्वाध्याय, भोजन कर्म आते है।

चरक संहिता में दिनचर्या में निम्न क्रियाएं बताई गयी है- निद्रात्याग, मलत्याग, मुखशुद्धि, दन्तधवन, जिह्वानिर्लेखन, गण्डूषधारण अभ्यंग (मालिश) व्यायाम, परिभ्रमण, क्षौरकर्म, उबटन लगाना, स्नान, शरीर मार्जन, केश प्रसाधन, अनुलेपन, अंजनकर्म, नस्यकर्म, आहार, ताम्बूल सेवन, धुम्रमान, पादुका धारण, दण्डधारण, छत्रधारण आदि।

आज के व्यस्त युग में उपर्युक्त दिनचर्या को अपनाना संभव नहीं तो कठिन अवश्य हैए इनमें से कुछ आज के समय में उपयोगी भी नहीं है जैसे - ताम्बूल सेवन, धुम्रपानए दण्डधारण आदि। अतः वर्तमान समय की आवश्यकता एवं परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए इनमें कुछ चीजों का संशोधन किया गया व कुछ मिलाया गयाए जिसे हम निम्न क्रम में समझ सकते है-

12.4.1 निद्रात्याग:- स्वस्थ मनुष्य आयु की रक्षा के लिए रात के भोजन के पचने न पचने का विचार करता हुआ ब्रहममुहूर्त में उठें।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में एक कथन आता है- कि प्रातः उठने से सौन्दर्य, यश, बुद्धि, धन, स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। प्रातः उठकर ईश्वर चिंतन व आत्मबोध की साधना के साथ हमे जन्म देने वाली पृथ्वी माँ को नमस्कार करना चाहिए।

12.4.2 आत्मबोध की साधना:- आत्मबोध की साधना प्रातः जागरण के साथ ही सम्पन्न की जाती है। रात्रि में नींद आते ही यह दृश्य जगत समाप्त हो जाता है। मनुष्य स्वप्न सुषुप्ति के किसी अन्य जगत में रहता है। इस जगत मे पड़े हुए स्थूल शरीर से उसका संपर्क नाम मात्र का ही रह जाता है। जागते ही चेतना का शरीर से सघन संपर्क बनता है। यही नए जन्म जैसी स्थिति है।

जागते ही पालती मारकर बैठ जाएँ, ठंड हो तो वस्त्र ओढ़े रहे। दोनों हाथ गोदी में रखें, सर्वप्रथम लंबी श्वास लें, नीलवर्ण प्रकाश का ध्यान करें। नाक से ही श्वास छोड़े, दूसरें श्वास में पीले प्रकाश का ध्यान करते हुए पूर्ववत क्रिया दोहराए। तीसरी बार फिर स्वर्ण प्रकाश का ध्यान करते हुए गहरी श्वास ले, धीरे-धीरे नाक से ही श्वास छोड़ दें। स्वस्थ प्रसन्नचित हो अनुभव करें कि परमात्मा ने कृपा करके हमं आज नया जन्म दिया है, इसकी अवधि पुनः निद्रा की गोद में जाने तक की हो।

12.4.3 पृथ्वी माँ को नमस्कार:- इसके पश्चात् पृथ्वी माँ को नमस्कार किया जाता है। इस समय भाव मातृभूमि के गौरव का व उनके गुणों को धारण करने का होना चाहिए, श्लोक है-

समुद्र वसनेदेवि पर्वतस्तन मंडले।

विष्णुपत्नीं नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।।

अर्थात् धरती सब ओर से समुद्र से गिरी, पर्वत रुपी स्तनों से शुशोभित, विष्णु पत्नी-पृथ्वी माता आपको नमस्कार है। मुझे पैरो से स्पर्श करने की घृष्टता के लिए आप क्षमा करें।

12.4.4 उषापान - इसके पश्चात् उषापान का क्रम आता है। उषापान शौच जान के से पूर्व ही किया जाना चाहिए। आयुर्वेद में उषापान का विधान है। कहा है- ''प्रातः उठकर नित्य उषापान करता है, निज शरीर का स्वास्थ बना रोगों से अपनी रक्षा करता है।'' उषापान में शीतल जल का ही सेवन करना सर्वोत्तम है। शीतल जल हमारे दाँतों के लिए लाभकारी है तथा पाचन संस्थान को बल प्रदान करता है। शीतल जल के सेवन से रात्रि के भोजन के कारण पैदा हुई बेवजह बदहजमी व अपच भी ठीक हो जाती है। भाव प्रकाश मे लिखा है कि - ष्सूर्योदय के समय जो व्यक्ति प्रतिदिन आठ अंजलि जलपान करता है वह रोग से मुक्त हो जाता है, बुढ़ापा उसके पास नहीं आता और वह सौ वर्ष से अधिक आयु प्राप्त करता है।' '

उषापान से मल की अच्छी तरह शुद्धि होती है। शरीर व मन में उत्साह की वृद्धि होती है तथा वीर्य संबंधी रोग दूर हो जाते है। नित्य सेवन से काम विकार, शरीरिक उष्णता बवासीर, उदर रोग, सिरदर्द, नेत्र विकार दूर हो जाते है।

12.4.5 शौच - उषापान के पश्चात दिनचर्या के क्रम में शौच की कड़ी आती है। सुश्रुत लिखते हैं - प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व मलत्याग करना दीर्घायु प्रदान करता है। शौच में बैठने की भारतीय विधि ही सर्वोत्तम है। सही समय पर मल-विसर्जन का ध्यान न रखने से शरीर में विकार संग्रह होकर, रोग उत्पन्न होने लगते हैं। प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति को दो बार शौच अवश्य जाना चाहिएए प्रातः आत्मसाधना के बाद तथा सायंकाल एक बार।

बहुत से लोग मल-मूत्रों के वेगों को रोक लेते है, ऐसा करना शरीर के लिए बहुत हानिकारक होता है इससे रोग उत्पन्न होते है।

शौच के बाद आकर हाथ, पैर, मुख धेना चाहिए। ऐसा करने से शुचिता के अतिरिक्त थकावट दूर होती है और नेत्र ज्योति बढ़ती है।

12.4.6 दंतधावन - दिनचर्या में दंतधवन को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दांत शरीर के निर्माता और रक्षक रुपी द्वार पर स्थित है। दांतों की सफाई प्रातः उठने के बाद एवं सायं सोने से पूर्व करनी चाहिए। इसके लिए दातुन, मंजन, एवं टूथपेस्ट प्रयोग में लाते है। प्राचीन काल मे टूथब्रश या टूथपेस्ट न होने के कारण दातुन का प्रयोग करते थे। हमारे प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने दातुन की बहुत प्रशंसा की है।

दातुन 12 अंगुल लम्बी, कनिष्ठ का अंगुली के आगे के भाग के समान मोटी सीधी बिना गॉठ की, स्वस्थ डाल की तथा ताजी होनी चाहिए और ऐसी होनी चाहिए जिसकी अच्छी प्रकार से दातुन बन सके। (नीम, बबूल, मौलश्री, खदिर, कनेर, महुआ, अर्जुन, बादाम आदि को दातुन के लिए अच्छा माना जाता है)

दन्तधवन से लाभ -

- इससे मुख की दुर्गन्ध कफ तथा क्लेद निकल जाता है।
- दाँतों का मैल हट जाता है।
- जिह्वा दाँत तथा मुख में होने वाले रोग नहीं होते हैं।
- मुँख में निर्मलता, अन्न के प्रति रुचि तथा मन में प्रसन्नता होती है।

12.4.7 जिह्वानिर्लेखन - दातुन के पश्चात जिह्वा के मैल को हटाने के लिए जिह्वा निर्लेखन की आवश्यकता होती है। जीभ को साफ करने के लिए जीभी सोने, चाँदी, ताँबे या वृक्ष के कोमल टहनियों की होनी चाहिए। इसकी लंबाई कम से कम 10 अंगुल होनी चाहिए। दातुन को बीच से फाड़कर भी व्यवहार में लाया जा सकता है।

वर्तमान समय में ताँबे, स्टील, प्लास्टिक आदि की भी जीभिया मिलती है। जीभी के किनारे तेज तथा पैने नहीं होने चाहिए तथा उन्हें जीभ पर जोर से रगड़ना भी नहीं चाहिए।

मुख वैरस्य दौर्गन्ध्यशोफजाड्यहरं सुखम। - (सु.चि. 24/14)

अर्थात् जीभी द्वारा जीभ के मल को हटाने से, मुख की विरसता दुर्गन्ध, शोथ, जड़ता का नाश होकर प्रसन्नता उत्पन्न होती है तथा रुचि निर्मलता तथा लघुता की प्राप्ति होती है।

12.4.8 अभ्यंग-तैल मालिश -

अथ जातान्न पानेच्छो मारुतध्नै सुगन्धिभिः।

यथर्तुसंस्पर्श सुखैस्तैलैरम्यग् माचरेत्।। - अ.स.सू. 3/55

अर्थात् अन्नपान की इच्छा रखने वाले अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति को यह चाहिए कि ऋतु के अनुसार अर्थात् शीतकाल मे कुछ उष्ण गुण युक्त तथा उष्णकाल में शीतगुण युक्त सुगन्धित वातनाशक तेलों से शरीर पर मालिश करनी चाहिए।

जिस प्रकार पौधों की जड़ को जल देने से वृक्ष के अंकुर बढ़ते हैं, उसी प्रकार मालिश से रसादि घातुएँ वृद्धि के अंकुर बढ़ते हैं, उसी प्रकार मालिश से रसादि धातुएँ वृद्धि को प्राप्त होती है।

आयुर्वेद कहता है - कि प्रतिदिन तेल मालिश करने से वायुविकार, बुढ़ापा, थकावट नहीं होती है। दृष्टि की स्वच्छता, आयु की वृद्धि, निद्रा सुन्दर त्वचा और शरीर दृढ़ हो जाता है। सिर, कान तथा पैरों में विशेष मालिश करनी चाहिए।

नित्य मालिश करने से मनुष्य कोमल स्वर्शए पुष्ट अंग वाला और बुढ़ापे में उसके लक्षणों में कमी होकर शरीर सुन्दर हो जाता है। तेल मालिश से आयु बढ़ती है तथा शरीर सुन्दर हो जाता है। मालिश करने की विधि आयुर्वेद में इस प्रकार बतायी गई है। सबसे पहले तेल नाभि में लगाना चाहिए। उसके बाद हाथों और पैरों के नाखूनों में। मालिश पैरों के तलवों की करने के बाद दोनों पैरों की पिंडलियों, जंघाओं, फिर दोनों भुजाओ, गर्दन, पीठ, पेट और बाद में सीने की मालिश करनी चाहिए। ग्रीष्मकाल मे शीतल छाया में व शीतकाल में धूप में मालिश करनी चाहिए।

12.4.9 क्षौरकर्म - व्यायाम के समान ही नियमित रुप से क्षौरकर्म समग्र शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं दिनचर्या का एक प्रमुख अंग माना गया है।

आचार्य चरक ने इसे पुष्टिकरए आयुष्यए शुचिकर तथा सौन्दर्यवर्धक कर्म कहा है।

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में यह कर्म-पापों को शमन करने वाला, हर्षोत्पाद, सौभाग्यकर, हल्कापन लाने वाला एवं उत्साहवर्द्धक कर्म है।

केश, नख, एवं, रोम कटवाते रहने से पाप का शमन होता है केश, दाढ़ी के बाल और नख को काटने तथा ठीक प्रकार से रखने से शरीर पुष्ट होता है एवं आयु के लिए हितकर होता है।

12.4.10 व्यायाम - नियमित व्यायाम आयुर्वेद की दृष्टि से सबके लिए अनिवार्य है।

शरीर चेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्थ बलवर्धिनी।

देह व्यायाम संख्यात मालय ता समाचरेत्।। - च.सू. 7/31

अर्थात् शरीर की चेष्टाए देह को स्थिर करने एवं उनका बल बढ़ाने वाली प्रक्रिया को व्यायाम कहते है।

महर्षि चरक के अनुसार - व्यायाम से शरीर में हल्कापन, कार्य करने की शक्ति, स्थिरता तथा कष्ट सहने की शक्ति बढ़ती है। शरीर के विकारों का नाश होता है एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

भाव प्रकाश के अनुसार - व्यायाम के द्वारा शरीर सुदृढ़ होकर कोई रोग उत्पन्न नहीं होने देता। शरीर में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ जाती है। आहार में लिया गया विरुद्ध अन्न भी शीघ्र पच जाता है।

व्यायाम करने वालों को बुढ़ापा नहीं सताता। शरीर की मांसपेशियाँ दृढ़ एवं सुडौल हो जाती है। नाड़ियों को नवजीवन प्राप्त होता है। फेफड़े दृढ़ होते हैं। रक्त की शुद्धि होती है। तथा मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। व्यायाम सदैव खुली हवा में करना चाहिए। प्रत्येक ऋतु में अपने बल की आधी शक्ति से व्यायाम करना चाहिए। इसके विपरीत अधिक व्यायाम करना हानिकारक है।

12.4.11 प्रातःभ्रमण - दिनचर्या के क्रम में प्रातःभ्रमण को बड़ा महत्व दिया गया है। जो व्यक्ति व्यायाम नहीं कर सकते, उन्हें प्रातःभ्रमण के लिए जाना चाहिए। प्रातःकाल का समय शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों के संवर्द्धन के लिए अत्यधिक उपयोगी है। प्रातःकालीन वातावरण उल्लास से भरा होता है। इसी समय पृथ्वी से मंद-मंद गंध जो कि स्वास्थ्यवर्द्धक भी है, निकलती है। इस अमृतमय शीतल-सुगंध समीर के स्पर्श से शरीर मे बल, तेज व स्फूर्ति का संचार होता है, जो दिनभर उर्जा प्रदान करता है।

प्रातःभ्रमण करते समय गर्दन सीधीए रीढ़ की हड्डी सीधी, सीना तना हुआ, दोनों हाथ पूरी तरह हिलते रहना चाहिए ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में शरीर पर कम से कम वस्त्र होने चाहिए। मुंह बंद, नाक से ही श्वास लेनी चाहिए। टहलते समय, सदैव गहरी-गहरी श्वास लेते रहना चाहिए। इससे गहरी-गहरी श्वांस स्वतः चलने लगती है। प्रतिदिन भ्रमण करने वालों को कब्ज नहीं रहता तथा खुलकर भूख लगती है।

12.4.12 स्नान - प्रतिदिन स्नान करना वैदिक दिनचर्या का एक अंग माना गया है। स्नान करने से शरीर शुद्ध हो जाता है, रोम कूप खुल जाते हैं, शरीर का आलस्य तथा निद्रा दूर होकर चित्त शांत होता है। मन में प्रसन्नता होने से उपासना, ध्यान, पढ़ाई आदि में मन लगता है। स्वाध्याय के प्रति रुचि जागती है। पाचक अग्नि तीव्र होकर क्षुधा को बढ़ाती है।

महर्षि चरक ने स्नान के निम्न लाभ बताए कहा है

स्नान करने से शरीर पवित्र होता है। यह आयुवर्धक है, थकावट, पसीना और मैल को दूर करता है, शारीरिक बल बढ़ाकर ओज उत्पन्न करता है।

सुश्रुत कहते हैं स्नान, थकावट, पसीना, खुजली और प्यास को नाश करने वाला, हृदय को प्रसन्न करने वाला, मैलनाशक तथा श्रेष्ठतम इन्द्रियशोधक है। तंद्रा-पाप को नष्ट करने वाला, पौरुषवर्द्धक, रक्त को साफ करने वाला अग्नि को प्रदीप्त करने वाला है।

अधिक गरम जल से स्नान नहीं करना चाहिएए गर्मजल से नेत्रों की ज्योति क्षीण होती है। ठंडे जल से स्नान करने से रक्तपित रोग शांत होता है तथा आरोग्यता एवं बल की प्राप्ति होती है। परन्तु कफ वात प्रकोप में शरीर पर उष्ण जल डालकर स्नान किया जा सकता है।

सर्वप्रथम जल सिर पर डालना चाहिए, इससे मस्तिष्क की गर्मी पैरों से निकल जाती है सिर को भिगोकर अन्य अंगों को भिगोकर चाहिए। सूती खद्दर वस्त्र की सहायता से शरीर को खूब रगड़ना चाहिए इससे रोमकूप खुल जाते हैं। स्नान के बाद शरीर को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए।

12.4.13 वस्त्रधारण - निर्मल वस्त्र आयु को बढ़ाने वाला दरिद्रनाशक, प्रसन्न करने वाला और श्रेष्ठ लोगों के मध्य बैठने योग्य बनाता है। सोने, बाहर निकलने तथा देवपूजन के वस्त्र अलग-अलग होने चाहिए। इसी प्रकार ऋतुओं के अनुसार भी वस्त्र धारण कर सकें, तो स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम है।

शीतकाल में उनी, (गर्म) ग्रीष्मकाल में कषाय तथा वर्षाऋतु में श्वेतवस्त्र धारण करना उपयुक्त है।

शीतकाल में मनुष्यों को वायु और कफ हरने वाले रेशमीए उनीए लाल तथा कई रंगों वाला कपड़ा पहनना चाहिए। कषाय वस्त्र मेध के लिए हितकारी, शीतल, पित्तनाशक होता है, अतः ग्रीष्मकाल में पहनना चाहिए। सफेद वस्त्र सुखदाई, धूप को रोकने वाला और न अधिक उष्ण, न अधिक शीतल होता है, इसे वर्षा ऋतु में धरण करना चाहिए।

किसी दूसरे का धारण किया हुआ, पुराना, मैला, अत्यंत गहरे चटकीले रंगों वाला वस्त्र नहीं पहनना चाहिए।

12.4.14 संध्योपासन - चाणक्य नीति में कहा गया है - कि यदि संध्या को जीवन का आधार कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

संध्या के रुप में प्रारंभिक कर्मकाण्ड, जिसमें षटकर्म के रुप में पवित्रीकरण, आचमन, शिखाबंधन, प्राणायाम, न्यास एवं पृथ्वी पूजन जैसे कुछ अभ्यासों से वह पृष्ठभूमि बनती हैए जिससे दिनभर स्फूर्ति, उल्लास का संचार बना रहता है। इन अभ्यासों के माध्यम से शरीर के अंग-प्रत्यंग को नित्य शिक्षण मिलता है एवं शरीर के एक-एक कोश में प्राणशक्ति का संचार होता है।

संध्या यदि संभव हो तो प्रातः मध्याह्नए सायं की जानी चाहिए अन्यथा सायं विशेषतः अवश्य कर लेनी चाहिए। संध्योपासन में महत्व गायत्री जप का है। प्रातः गायत्री मंत्र के साथ संध्या करने से व्यक्ति दीर्घायु होता है, बुद्धि, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति होती है। उपासना आत्मा की खुराक है।

12.4.15 आहार ग्रहण - यह जीवन का प्रसंग है कि शरीर रक्षा के लिए भोजन लेना ही पड़ता है।

अन्ननलिका से जो कुछ भी शरीर के अंदर जाता है उसे आहार कहते हैं। यह आहार रसादि धातुओं में परिणत होकर शारीरिक अंगों का पोषण करता है, साथ ही शरीर की रक्षा करता है, क्षतिपूर्ति कर शरीर के विभिन्न अंगों की शक्ति बढ़ाता है व प्राणी को जीवित रखता है। युक्तिपूर्वक ग्रहण किया अन्न अमृततुल्य है एवं यदि उसे सही विधि से सही समय पर न लिया जाय तो वह विष बन जाता है। इसलिए आहार ज्ञान का परिचय होना जरुरी है।

आहार के संबंध में गीता में स्पष्ट उल्लेख है – ''आयु, बुद्धि, बल आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त और चिकने स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय, ऐसे आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्विक वृत्ति वालों को प्रिय होते है''।

इसके विपरीत गीता कहती है कि जो सडे-गले, वासी, दूसरे के जूठे, अधपके, रसरहित, अपवित्र भोजन ग्रहण करता है अथवा पसंद करता है, वह व्यक्ति तामसी होता है।

विष्णु पुराण में कितना आहार लिया जाए इसे स्पष्ट समझाते हुए लिखा है कि - ठोस अन्न से जठर का आधा और जल तथा पेय पदार्थ से तीन चौथाई भाग भर दिया जाए और वायुरुपी द्रव्यों के संचरण के लिए एक चौथाई भाग खाली रखा जाए।

आहार भोजन ग्रहण करने के संबंध में मुख्यतः निम्न बिन्दु ध्यान रखने योग्य है।

- क्या खाएँ:- मनुष्य को सदैव हितकारी पदार्थों का सेवन करना चाहिए।
- क्यों खाएँ:- भोजन करने का उद्देश्य है अपने शरीर को स्वस्थ निरोग और बलवान बनाना। भोजन सदैव स्वस्थ और जीवित रहने के लिए किया जाना चाहिए, न कि खाने के लिए जीना।
- कितना खाएँ:- 'मिताशी स्यात्' थोड़ी मात्रा में खायें। भोजन हर व्यक्ति के कार्य विभाजन के अनुसार लिया जाना चाहिए। मानसिक कार्य करने वालों को भोजन कम व शारीरिक श्रम करने वालों की भोजन अधिक मात्रा में ग्रहण करना चाहिए।
- कब खाएँ:- आयुर्वेद में दो बार भोजन करने का विधन है प्रथम भोजन 12 बजे से पूर्व तथा सांयकाल 7 बजे तक कर लेना चहिए।
- कैसे खाएँ:- भोजन इस प्रकार खा जाना चाहिए जिसमें जठराग्नि को कम से कम श्रम करना पड़े। हमारे मुख मं 32 दाँत होते हैं। अतः प्रत्येक ग्रास इतनी देर तक चलाना चाहिएए जिससे पतला हो जावेए तभी उसका घूँट गले के नीचे उतारना चाहिए। अतः कहा जाता है भोजन को पीना चाहिए तथा पानी को खाना चाहिए।
- जो भी भोजन सामने आये, उस थाली क भोजन की पूजा कर, प्रसाद की भावना से खाना चाहिए। भोजन को देखकर सदैव हर्षित-प्रसन्न होकर ग्रहण करना चहिए।
- भोजन करते समय अधिक जल नहीं पीना चाहिए व भोजन करने के 1 घंटे बाद पानी पीना प्रारम्भ करें, प्रति घण्टे थोड़ा-थोड़ा जल पीना चाहिए। ऐसा करने से भोजन जल्दी पच जाता है।
- इस प्रकार स्वास्थ जीवन जीने के लिए स्वास्थवृत के नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। स्वस्थवृत अपनाने से निरोग जीवन के साथ-साथ मन प्रसन्न रहता है। व तनावयुक्त जिन्दगी से मुक्ति मिलती है।
- आधुनिक युग में प्रतियोगिता की अंधी दौड़ में मनुष्य सही जीवन जीने के तौर-तरीकों को भूलता जा रहा है, जिसके कारण अनेक मनोशारीरिक व मानसिक रोग पैदा हो रहे है। इनसे बचने का एकमात्र उपाय अपनी प्राचीन जीवन पद्धति को सीखना अर्थात् सही जीवन शैली को अपनाना है। अतः इसके लिए स्वस्थवृत्त व सद्वृत के नियमों को जानना व इन्हें अपने जीवन मे अपनाना जरुरी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) एक-एक पक्ति में उत्तर दीजिए।

(क) दिनचर्या से आप क्या समझते हैं ?

(ख) आत्मबोघ की साघना किस समय की जाती है ?

(ग) उषापान से आप क्या समझते हैं ?

(घ) दिनचर्या मे अभ्यंग से क्या आशय हैं ?

(ड़) आयु बुद्धि बल आरोग्यं सुख आर प्रीति को बढाने वाले रस युक्त और चिकने सिथर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसे आहार अर्थात भोजन करने के पदार्थ सात्विक वृत्ति वालों को प्रिय होते हैं यह किस ग्रन्थ मे कहा गया हैं।

12.5 रात्रिचर्या

संध्याकालोचित आचरण से लेकर रात्रिकाल में करणीय सर्वकर्म यथा रात्रिभोजन, शयन, निद्रा एवं स्वप्न, गर्भाधन तथा ब्रह्मचर्यादि का पालन - ये सभी स्वस्थवृत्त संबंधी रात्रिचर्या के अंग है।

ऋषियों ने स्पष्ट कहा है कि रात्रि के प्रारंभिक क्षणों में संभव हो तो सूर्यास्त के पूर्व या पश्चात् प्रथम प्रहर में ही भोजन कर लेना चाहिए। यह विज्ञानसम्मत भी है। भोजन-नलिका को पचाने हेतु पर्याप्त समय भी मिल जाता है।

जैन धर्म में सूर्यास्त के पूर्व भोजन लेने का प्रावधान है ताकि संधिकाल के समय उत्पाद मचाने वाले जीवाणु, विषाणु, कीट भोजन के साथ अंदर न चले जाएँ।

12.5.1 रात्रिचर्या के सामान्य नियम:-

1. रात्रि के प्रथम व अंतिम प्रहरों को वेदाभ्यास में नियोजित करना चाहिए और शेष दो पहरों में सोना चाहिए। इस नियम का पालन करने से व्यक्ति ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति करता है।

2. रात्रि के प्रथम पहर में ही भोजन कर लेना चाहिए तथा भोजन दिन की अपेक्षा कुछ कम खाना चाहिए। और देर से पचने वाले गरिष्ठ पदार्थों को नहीं खाना चाहिए।

3. भोजन करने, सोने के समय में न्यूनतम दो-तीन घण्टे का अंतर होना चाहिए, तत्काल भोजन करके सो जाने से पानी पीने का अवसर नहीं मिलता।

4. भोजन करने के बाद, सोने से पूर्व एक-एक घण्टे के अंतर से कम से कम 2 या 3 बार जल लेना चाहिए। इससे भोजन पाचन में भी सहायता मिलती है।

5. सोने से पूर्व उष्ण पेय चाय, काफी आदि पीने से निद्रा अच्छी नहीं आती है। अच्छी नींद न आने से प्रातः उठने पर शरीर में थकावट रहती है। स्नान तथा व्यायाम आदि करने का मन नहीं होता।

6. रात्रि में सोने से पूर्व दाँतों की सफाई करना आवश्यक है अन्यथा दाँतों में जल्दी कीड़े लग जाने से खराब हो जाते है।

7. प्रतिदिन जैसे शरीर की सफाई की जाती हैए उसी प्रकार नेत्रों की सफाई के लिए प्रतिदिन रात्रि को सोने से पहले नेत्रों में अंजन करने का विधान है।

8. रात्रि में सोने से पूर्व पैरों को अच्छी तरह धो लेना चाहिए। शीतऋतु में उष्ण जल से, ग्रीष्म ऋतु में शीतल जल से ।

9. यदि नींद आने से कठिनाई हो तो सोने से पूर्व पैर के तुलओं में गौघृत या सरसों के तेल की मालिश कर लेने से नींद ठीक आती है और किसी भी प्रकार के जुकाम-खाँसी आदि की संभावना नहीं रहती।

महाभारत में वेदव्यास कहते हैं कि – ''अपने हित की इच्छा रखने वाले को, रात में जागकर, दिन में निद्रा, आलस्य, चुगलखोरी, नशा करना तथा आहार-विहार-निद्रा इत्यादि विहित कर्म का अतियोग तथा अयोग-इनका वर्जन करना चाहिए।

यही बात अष्टांग हृदय में इस तरह कही गयी है-

''अतियोगमयोगं च अनुपायात् प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्ययाम।।''

12.6 ऋतुचर्या

प्रिय पाठकों दिनचर्या और रात्रिचर्या के बारे में जानने के बाद आप ऋतुचर्या के विषय में जानने के लिये उत्सुक हो रहे होगे कि ये ऋतुचर्या क्या हैं वस्तुतः आयुर्वेद में जो छः ऋतुओ शिशिर बसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद और हेमन्त बतायी गई हैं इन ऋतुओ के अनुसार हमारा विहार कैसा हो अर्थात हमें क्या खाना चाहिये किस ऋतु में किस प्रकार के जल का उपयोग करना चाहिये इत्याि इन सभी बातों का ऋतुचर्या के अन्तर्गत पालन किया जा सकता हैं आगे के पृष्टों में जो वर्णित किया गया हैं उनकें आधार पर आप ऋतुचर्या के विषय में प्रर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकोंगे।

हमारे यहाँ भारतीय संस्कृति (विक्रमी संवत्) के अनुसार छः ऋतुओं की चर्चा की गई है। आयुर्वेद के अनुसार - ऋतु प्रभाव के कारण मानव शरीर में स्वतः ही दोषों का संचय, प्रकोप व शमन होती है। अतः ऋतुचर्या का पालन न करने दोष असमय ही प्रकुपित होकर नानाविध रोग उत्पन्न करते हैंए अतः ऋतुचर्या का पालन के अनुसार छः ऋतुएँ निम्न है-

- हेमन्त ऋतु:- 16 नवम्बर से 15 जनवरी (मार्गशीर्ष-पौष) तक के समय को हेमन्त ऋतु के नाम से जाना जाता है।
- शिशिर ऋतु:- 16 जनवरी से 15 मार्च (माघ-फाल्गुन) तक के समय को शिशिर ऋतु कहते है।
- वसन्त ऋतु:- 16 मार्च से 15 मई (चैत्र-वैशाख) तक के समय को वसन्त ऋतु कहते है।

- ग्रीष्म ऋतु:- 16 मई से 15 जुलाई (ज्येष्ठ-आषाढ) तक के समय को ग्रीष्म ऋतु कहते हैं।

- वर्षा ऋतु:- 16 जुलाई से 15 सितम्बर (श्रावण-भाद्रपद) तक के समय को वर्षा ऋतु कहते हैं।

- शरद् ऋतु:- 16 सेप्तेम्बर से 15 नवम्बर (आश्विन-कार्तिक) तक के समय को शरद् ऋतु कहते है। विविध ऋतुओं की विवेचना इस प्रकार है-

12.6.1 हेमन्त ऋतुचर्या - हेमन्त ऋतु में शीतलता अधिक रहती है। अतः शीतल वायु के स्पर्श से आभ्यान्तर अग्नि के रुक जाने के कारण बलवान् पुरुषों के शरीर में जठराग्नि बलवान् होकर मात्रा और द्रव्य में तेज आहार को पचाने में समर्थ रहती है।

हेमन्त ऋतु में वायु प्रकोप:- अग्नि के प्रबल होने पर जब उसके बल के अनुसार ईधन (आहार) नहीं मिलता, तब अग्नि शरीर में उत्पन्न प्रथम धातु (रस) को जला डालती है। अतः वायु का प्रकोप हो जाता है।

हेमन्त ऋतु में आहार:- हेमन्त ऋतु में अग्नि की प्रबलता रहती है। अतः स्निग्ध पदार्थए अम्ल रस, लवण रस, अति मेदस्वी वस्तु का सेवन करना चाहिए। हेमन्त ऋतु में दूध के पदार्थ (दही, मलाई, रबड़ी छेना आदि) ईख के पदार्थ (गुड़, राव, चीनी, मिश्री, आदि) वसा, तेल, नये चावलों का भात और गरम जल का सेवन करने से आयु की हानि (रोगोत्पत्ति) नहीं होती।

हेमन्त ऋतु में विहार:- तेल का अभ्यंग, उबटन, सिर पर तेल लगाना, धूप सेवन, उष्ण भूमि पर रहना तथा उष्ण गर्भगृह में रहना, वाहन, शयन और आसन को कपड़े आदि से ढक कर रखनाए शरीर पर भारी और गरम वस्त्र धारण करनाए अगर का शरीर पर गाढा लेप करना- ये सब शीत ऋतु में हितकारक विहार है।

हेमन्त ऋतु में वर्जनीय आहार - विहार:- शीतकाल आ जाने पर वातवर्द्धक एवं लघु अन्नपान, प्रवात (तीव्र वायु) प्रमिताहार (थोड़ा नपा-तुला भोजन) और जल के धुले सत्तु का सेवन नहीं करना चाहिए।

12.7.2 शिशिर ऋतुचर्या - शिशिर ऋतुचर्या का सामान्य रुप से हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुएँ यद्यपि समान होती हैं, किन्तु शिशिर में कुछ विशेषताएँ होती है। - शिशिर ऋतु में रुक्षता आ जाती है तथा मेघा, वायु, वर्षा के कारण विशेष शीत पड़ने लगती है। विशेष रुप से तीव्र वायुरहित तथा उष्ण गृह में निवास करना चाहिए।

शिशिर ऋतु में वर्ज्य आहार:- शिशिर ऋतु में कटु-तिक्त कषाय रस तथा वातवर्द्धकए हल्के और शीतल अन्न पान का त्याग कर देना चाहिए।

12.7.3 वसन्त ऋतुचर्या:- हेमन्त ऋतु में संचित कफ वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से द्रवीभूत होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है, अतः अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा:- संचित कफ को दूर करने के लिए वसन्त ऋतु में वमन आदि पंचकर्म कराने चाहिए।

वसन्त ऋतु में त्याज्य आहार-विहार:- वसन्त ऋतु में गरम, अम्ल स्निग्ध और मधुर और मधुर आहार तथा दिन में शयन नहीं करना चाहिए।

वसन्त ऋतु में सेवनीय आहार-विहार:- वसन्त ऋतु में व्यायाम, उबटन, धूम्रपान, अंजन तथा मल-मूत्र के बाद गुनगुने जल का प्रयोग, मिले हुए चंदन और अगर का शरीर पर लेप, जौ, गेहूँ का भोजनए निर्गद (दोष रहित) मधु निर्मित मद्य का पान करना चाहिए।

12.7.4 ग्रीष्म ऋतुचर्या - ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसार के स्नेह सोख लेता है। अतः इस काल में मधुर रस तथा शीत वीर्य देने वाले द्रव्य, द्रव तथा स्निग्ध अन्न, चीनी के साथ शीतल मन्थए घीए दूग्ध चावल इनका सेवन करना चाहिए, जिससे बल का नाश नहीं होने पाता।

ग्रीस्म ऋतु में वर्ज्य आहार-विहार:- लवण, अम्ल, कटु रस वाले और उष्ण वीर्य द्रव्यों का सेवन तथा व्यायाम नहीं करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में विहार:- गीष्म ऋतु में दिन के समय शीतल कमरे में तथा रात्रि के समय चाँदनी से शीतल हुए हवादार छत पर शरीर में चंदन का लेप लगाकर सोना चाहिए। -मोती-मणि आदि से देह अलंकृत करके चंदन मिले जल से ठण्डे किये हुए पंखों की हवा और कोमल हाथों का स्पर्श प्राप्त करते हुए आसन पर बैठना चाहिए तथा शीतल उद्यान, शीतल जल और शीतल पुष्पों का सेवन करना चाहिए।

12.7.5 वर्षा ऋतुचर्या - वर्षा ऋतु (आदान काल) में मनुष्यों का शरीर अत्यन्त दुर्बल रहता है। दुर्बल शरीर में एक तो जठराग्नि दुर्बल रहती है, और दूसरा वर्षा ऋतु आ जाने पर दूषित वातादि दोषों से दुष्ट जठराग्नि और दुर्बल हो जाती है।

इस ऋतु में भूमि से वाष्प (भाप) निकलने, आकाश से जल बरसने तथा जल का अम्ल विपाक होने के कारण जब अग्नि का बल अत्यन्त क्षीण हो जाता है, तब वातादि दोष कुपित हो जाते हैं।

वर्षा ऋतु में सेवनीय आहार-विहार:-

- वर्षा ऋतु में खाने-पीने की सभी चीजें बनाते समय उसमें मधु अवश्य मिला देना चाहिए।
- वात और वर्षा से भरे उन विशेष शीतकाल दिनों में अम्ल तथा लवण रस वाले और स्नेह द्रव्यों (घृतादि) की प्रधानता भोजन में रहनी चाहिए।
- जठराग्नि की रक्षा चाहने वाले पुरुषों को जौ, गेहूँ और चावल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

- शाकाहारी व्यक्तियों को सुसंस्कारी मूँग के जूस के साथ भोजन लेना चाहिए।
- इस ऋतु में मधु मिलाकर अरिष्ठ एवं जल का सेवन करना चाहिए।
- वर्षा ऋतु में मोहेन्द्र (आकाश का) जलए गरम करके शीतल किया हुआ जल, कूप या सरोवर का जल पीना चाहिए।
- देह का घर्षण, उबटन, स्नान, गन्ध का प्रयोग और सुगन्धित पुष्प मालाओं का धारण करना हितकर है।
- हल्के और पवित्र वस्त्र धारण करना और क्लेदरहित सूखे स्थान पर रहना चाहिए।

वर्षा ऋतु में वर्ज्य आहार - विहार:- वर्षा ऋतु में जल में घुला सत्तु, दिन में सोना, ओस गिरते समय उसमें बैठना या घूमना, नदी का जल, व्यायाम, धूप में बैठना और मैथुन छोड़ देना चाहिए।

12.7.6 शरद् ऋतुचर्या - वर्षा काल में जिनको शीत साल्य हो गया रहता है, ऐसे लोगों कें अंग सहसा सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त हो जाते हैं, फलतः वर्षा ऋतु में संचित हुआ पित्त शरद् ऋतु में प्रकुपित हो जाता है।

शरद् ऋतु में सेवनीय आहार-विहार:- अच्छी भूख लगने पर रस में मधुर, गुण में लघु वीर्य में शीतल, कुछ तिक्त, रसयुक्त एवं पित्त को शांत करने वाले अन्नपान का मात्रापूर्वक सेवन करना चाहिए।

सामान्यतः सभी को चावल गेहूँ का सेवन करना चाहिए और कुष्ठाधिकार में बताए हुए तिक्त घृत का पानए विरेचन और रक्तमोक्षण क्रिया करनी चाहिए।

शरद ऋतु में त्याज्य आहार बिहार:- शरद ऋतु में धूप का सेवन, वसा (चर्बी) तेल, ओस, मछली, आदि क्षार, दही का सेवन और दिन का शयन एवं वायु का सेवन नहीं करना चाहिए।

दिन मे सूर्य किरणों से गरम, रात्रि में चंद्रमा की किरणों से उत्तम, रात्रि में चंद्रमा की किरणों से शीतल, काल स्वभाव से पके हुए, अतः निर्दोष और अगस्त्य तारा के उदय होने के प्रभाव से विष रहित हुआ जल ष्हंसोदक' कहा जाता है। यह हंसोदक शरद् ऋतु में विमल और पवित्र तथा स्नानए पान और वहागाहन कार्यों मे अमृत के समान फल देने वाला होता है।

शरद् ऋतु में अनुकूल विहार:- इस ऋतु में उत्पन्न फूलों की माला स्वच्छ वस्त्र और प्रदोष काल में चंद्रमा की किरणों का सेवन हितकर बताया गया है।

संधिकाल:- एक ऋतु के प्रारम्भिक सप्ताह और दूसरे ऋतु के अंतिम सप्ताह को ऋतु संधि या ऋतु संधिकाल कहते हैं।

एक ऋतु के अंत के सात दिन और दूसरी ऋतु के आदि के सात दिन, इन 14 दिनों में क्रमशः शनैः-शनैः सेवन करना चाहिए। अन्यथा (सहसा नियमों का त्याग और परिशीलन करने से) असाध्य रोग उत्पन्न हो जाते है।

पुनः सक्षिप्त ऋतुचर्या विवरण इस प्रकार है:-

1. हेमन्त ऋतुचर्या:- (16 नवम्बर से 15 जनवरी)

- शारीरिक बल श्रेष्ठ रहता है।
- जठराग्नि अत्यन्त तीव्र रहती है।
- द्रव्यों का पाचन सरलता से होता है।
- अनुपाद रुप में मधु का पान करना चाहिए।
- हेमन्त ऋतु में गोरस, ईख के रस से बनी वस्तुएँ वसा, तेल, नवोदन तथा उष्ण जल सेवन आयुर्वद्धक है।
- अभ्यंग, उत्सादन शिर में तेल लगाना, आतप सेवन, भूमिगृह में निवास करना चाहिए।
- हेमन्त में शरीर पर अगरु का गाढा लेप करना चाहिए।
- गरम वस्त्रों को धारण करना चाहिए।
- हेमन्त में बातज तथा लघु पदार्थ (अन्नपान) का त्याग करें।
- थोड़ा आहारए वायु का अधिक सेवन तथा सत्तु का प्रयोग निषिद्ध है।

2. शिशिर ऋतुचर्या:- (16 जनवरी से 15 मार्च)

- हेमन्तशिशिर तुल्यों के अनुसार हेमन्त और शिशिर ऋतुचर्या में समानता है। इस कारण हेमन्त ऋतुचर्या का ही सेवन शिशिर में भी होता है।
- शिशिर में जन्म रुक्षता, मेस, मारुत तथा वर्षाजन्य शीत अधिक बढ जाती है। इसमे हेमन्त से यही विशेषता है।
- शिशिर में वातरहित अत्यन्त उष्णगृह में निवास करना चाहिए।

- शिशिर में कुटतिक, कषायु, वादल तथा शीतल अन्नपान का सेवन निषिद्ध है।

3. वसन्त ऋतुचर्या (16 मार्च से 15 मई)

- शारीरिक बल मध्यम रहता है।
- हेमन्त मं संचित कफ सूर्य की तीव्र रश्मियों द्वारा प्रकुपित होकर शरीर को गंदा कर देता है।
- इस कारण वसन्त में शोधनार्थ वमनादि पंचकर्म करना चाहिए।
- वसन्त में व्यायामए उबटन, अंजन तथा शीतल जल से स्नान आदि करना चाहिए।
- शरीर में चन्दन, अगरु आदि का लेप करना चाहिए।
- ज्यादा से ज्यादा गेहूँ का भोजन करें।
- मर्यादित रतिक्रिया ही करनी चाहिए।
- वसन्त मं वनों के पुष्प विकास का सेवन करना चाहिए।
- वसन्त में गरु, अम्ल, स्निग्ध, मधुर, पान तथा दिवास्वप्न निषिद्ध है।

4. ग्रीष्म ऋतुचर्या (16 मई से 15 जुलाई)

- शारीरिक बल दुर्बल होता है।
- ग्रीष्म में सूर्य अपनी तीव्र किरणों द्वारा जगत के स्नेह को खींच लेता है। अतः तीव्र रुक्षता रहती है।
- ग्रीष्म में मधुर, शीतद्रव्य तथा अन्न पान हितकर है।
- ग्रीष्म में शर्करा युक्त शीतल सत्तु का सेवन करना चाहिए।
- घृत तथा दूध से युक्त पदार्थ, चावल का सेवन करन चाहिए।
- दिन में शीतल ग्रह मे सोना चाहिए।
- रात्रि मे शरीर पर चंदन का लेप करके खुले हवादार शीतल छत पर शयन करना चाहिए।
- ग्रीष्म मे अम्ल, लवण, कटु, अन्नपान, व्यायाम तथा मैथुन निषिद्ध है।

5. वर्षा ऋतुचर्या (16 जुलाई से 15 सितम्बर)

- शारीरिक बल दुर्बल होता है।
- आदान काल से दुर्बल हुए शरीर मे जहराग्नि दुर्बल रहती है। वायु के कारण भी जठराग्नि अत्यधिक दुर्बल हो जाती है।
- वर्षा ऋतु मे पृथ्वी से निकलने वाली वाल्य से, मेघों के बरसने से, जल के अम्ल विपाक हो जाने से तथा अग्निबल के क्षीण हो जाने से वातादि दोष कुपित हो जाते है।
- वर्षा में वायु की शान्ति के लिए अम्लए लवणए स्नेह का सेवन लाभकारी है।
- मधु का सेवन अत्यन्त लाभकारी है।
- स्वच्छ, हल्का वस्त्र पहने, उबटन, गन्ध तथा माला का सेवन करना चाहिए।

6. शरद ऋतुचर्या (16 सितम्बर से 15 नवम्बर)

- शरद ऋतु में सूर्य की किरणों द्वारा प्रदत्त पित्त सहसा कुपित हो जाता है।
- शरद में मधुर, लघु, शीत, तिक्त, पित्तनाशक अन्न पान मात्रानुसार हितकर है।
- शरद में तिक्त द्रव्यों से सिद्ध किए हुए घृत का पान विरेचन, रक्त मोक्षण तथा आतप सेवनीय है।
- शरीर में वसा, तेल, ओस, औरक मांस, आनूप मांस, तथा क्षार, दधि, दिवास्वप्न तथा वर्जनीय है।

अभ्यास प्रश्न –(2) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) रात्रिचर्या से आप क्या समझते हैं ?

(ख) आयुर्वेद में कितनी ऋतुये होती हैं?

(ग) ऋतुओ के क्रमशः नाम बताइयें?

(घ) हिन्दी महीनो के क्रमशः नाम लिखिये?

(ड़) बसन्त ऋतु कब से कब तक मानी जाती हैं?

12.8 सारांश

दिनचर्या - प्रतिदिन किया जाने वाला सदाचरण

रात्रिचर्या - संध्याकालोचित आचरण से लेकर रात्रिकाल में किये जाने वाले सभी प्रकार के कार्य।

ऋतुचर्या –

षड्ऋतुयें-1.शिशिर

2 बसन्त

3 ग्रीष्म

4 वर्षा

5 शरद

6 हेमन्त

ऋतु के अनुसार आहार

प्रस्तुत इकाई में उपरोक्त बिन्दुओं की व्याख्या की गई है।

12.9 शब्दावली

उषापान -प्रातः शौच जाने से पूर्व जल सेवन भी किया

अभ्येग-मालिश

क्षोरकर्म- बाल नाखून काटना तथा दाढी बनवाना

जिह्वानिर्लेखन-जीभ साफ करना

पूस- पौष, मास

अहगन- मार्गशीर्ष, मास

वर्ज्य- निषिद त्याग करने योग्य न अपनाने योग्य

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) प्रतिदिन किया जाने वाला सदाचरण।

(ख) प्रातः जागरण के साथ ही।

(ग) प्रातःकाल शौच से पूर्व जल पीने की क्रिया।

(घ) अभ्यंग का अर्थ है - मालिष।

(ड़) श्रीमदभगवदगीता

2-

(क) संध्याकालोचित आचरण से लेकर रात्रि काल मै किये जाने वाले सभी प्रकार के कार्य।

(ख) छः

(ग) षडऋतुयें – शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त।

(घ) माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भादपद, क्वार, कार्तिक, अहगन, पौष, (मार्गशीर्ष)।

(ड़) 16 मार्च से 15 मई

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह रामहर्ष (2007) स्वस्थवृत्त विज्ञान चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

2. पाण्डे गंगा सहाय (2002) चरक संहिता अंक 1 और 2 चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

3. शास्त्री अम्बिका दत्त् (2002) सुश्रुत संहिता अंक 1 और 2 चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. दिनचर्या से आप क्या समझते है एक आदर्श दिनचर्या का विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

2. ऋतुचर्या की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए ऋतु के अनुकूल भोजन बताइए।

3. स्वस्थवृत्त में रात्रिचर्या का क्या महत्व है तर्कसंगत पुष्टि कीजिए।

इकाई 13- आहार की अवधारणा एवं संतुलित आहार

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 आहार की अवधारणा एवं आवश्यकता

13.4 आहार की मात्रा एंव काल

13.5 आहार के घटक द्रव्य

13.5.1 कार्बोज ¼Carbohydrates½

13.5.2 वसा (Fats)

13.5.3 प्रोटीन (Protein)

13.5.4 खनिज लवण ¼Mineral Salts)

13.5.5 जीवनीय तत्व ¼Vitamins½

13.5.6 जल

13.6 सन्तुलित आहार

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रत्येक प्राणी के जीवन में आहार का विशेष महत्व हैं आहार मे केवल हमारे स्थूल शारीरिक पोषण एंव वृद्धि के लिये परम मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य भी दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं शरीर मन एवं आत्मा इन तीनों के स्वस्थ होने पर ही कोई भी प्राणी सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ कहा जा सकतां हैं

किसी भी एक घटक के स्वस्थ न होने पर सम्पूर्ण स्वास्थ्य की कल्पना नही की जा सकती और इसका सम्पूर्ण स्वास्थ की प्राप्ति मे आहार का महत्वपूर्ण स्थान है। पाठको आयुर्वेद में कहा गया हैं कि आहार अपने आप मे एक चिकित्सा हैं। जो व्यक्ति संयमित एवं सात्विक आहार लेता हैं उसे किसी प्रकार की दवा लेनी की आवश्यकता नही होती अर्थात जो खान -पान में असंयम बरतता हैं उसे औषधि लेने से क्या लाभ अर्थात हितकर भोजन नही करता हैं तो उसका औषधि लेना व्यर्थ है अतः आहार के महत्व को सभी ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया हैं वस्तुत अन्न मार्ग से ग्रहण किया गया ऐसा पदार्थ जो हमे उर्जा एवं पोषण प्रदान करे। शरीर की वृद्धि एवं विकास में सहायक हैं रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा शुक्र इन सप्तधातुओ का पोषण करे शरीर के रोगो सें रक्षा करे उसे आहार कहते हैं अब यह जिज्ञासा उत्पन्न होती हैं कि किस व्यक्ति को कितना और कैसा आहार लेना चाहियें भोजन में कौन -कौन पोषक तत्व कितनी -कितनी मात्रा मे हो आहार किस समय ग्रहण किया जाय हितकर या सतुलित आहार क्या होता हैं इत्यादि। जिज्ञासु विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई मे आहार से सम्बन्ध जो वर्णन किया गया हैं आशा हैं कि उसके अध्ययन के उपरान्त आपकी जिज्ञासा का उपयुक्त समाधान हो सकेगा तथा आप भी आहार की अवधारणा तथा उसके महत्व को स्पस्ट कर सकेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

- आहार से क्या आशय हैं इसका अध्ययन कर सकेंगे।
- आहार की अवश्यकता एंव महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आहार की मात्रा एवं समय का निर्धारण कर सकेंगे।
- आहार के विभिन्न घटक द्रब्यो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सतुलित आहार की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मानव जीवन मे संतुलित आहार की उपयोगिता का अध्ययन कर सकेगे ।

13.3 आहार की अवधारणा एवं आवश्यकता

कोई भी पदार्थ जब अन्नमार्ग से ग्रहण किये जाने पर जीवनी शक्ति उत्पन्न कर, धातुओं का पोषण करें, उनकी रक्षा तथा क्षतिपूर्ति करें, जीवन की प्रक्रिया को संयमित करें तथा शरीर के महत्वपूर्ण पदार्थो की उत्पत्ति मे सहायक हो, उसे आहार कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए देश, काल, के आधर पर आहार विधि तथा मात्रा आदि का निर्णय करना चाहिए।

चरक संहिता में मानव शरीर एवं व्याधि दोनों को आहारसम्भव माना गया है-

'आहारसम्भवं वस्तु रोगाश्चहरिसम्भवाः'। - (च.सू. 28-45)

उपयुक्त आहार ही शरीर के समुचित विकास तथा सुख एवं स्वास्थ्य का हेतु है। आहार द्वारा शरीर-पोषण की प्रक्रिया अग्नि पर निर्भर है। आहार का पाचन, शोषण तथा चयापचय सम्बन्धी सम्पूर्ण क्रिया अग्नि व्यापार के अन्तर्गत आती है। हितकर आहार को पथ्य तथा अहित कर आहार को अपथ्य रहने की परम्परा है। यद्यपि आयुर्वेद में पथ्यापथ्य की मौलिक अवधारणा और भी व्यापक है। आहार के महत्व ज्ञापन हेतु ही इसकी गणना तीन उपस्तम्भों में की गयी है-

'त्रय उपस्तम्भा इति - आहारः स्वप्नो, ब्रह्मचर्यमिति'

आयुर्वेदिक चिकित्सा में औषध और आहार की ही योजना की जाती है। अन्न को प्राणियों का प्राण कहा गया है- 'प्राणाः प्राणभृतामन्नम्'। आहार से बल, वर्ण तथा ओजस् की प्राप्ति होती है। इस प्रकार आहार स्वस्थ तथा रोगी दोनों के लिए समान रुप से महत्वपूर्ण है। बिना समुचित आहार कि स्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता और बिना उचित पथ्य-व्यवस्था के रोगी में चिकित्सा कर्म सफल नहीं हो सकता। भारत सरकार ने 1993 में राष्ट्रीय पोषण नीति ¼NNP½ निर्धारित की जिसका उद्देश्य है पोषण को व्यापक मुद्दों से जोड़ना। लक्ष्य वर्ग ¼Vulnerable group½ की पहचान करना और उनकों तत्काल सहायता पहुँचाना भी इस नीति का उद्देश्य है। इस सन्दर्भ में खाद्य पदार्थ उत्पादन, खाद्य आपूर्ति, शिक्षा, सूचना, स्वास्थ्य रक्षा, ग्रामविकास, मातृ-शिशु विकास तथा जरुरतमन्द लोगों की पहचान के साथ-साथ मानिटिरिंग करते रहना मुख्य बिन्दु है। राष्ट्रीय पोषण नीति में निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गये है- **Naturition Goals for 2000 AD**

The ultimate goals ofthe NNP to be reached by 2000 AD are as follows:

1. Reduction of mkoderate and severe malnutritin anong per-scool children by half.
2. Reduction in chronic undernutrition and stunted growth in children.
3. Reduction in incidence of low bith weight to <10 percent.
4. Elimination of blindness due to Vitamin A deficiency.
5. Reduction in iron deficiency anaemia in pegnant women to 25 per cent.
6. Universal iodçation of salt and to reduce iodine deficiency disorders to 10 percent.
7. Production of 250 million tonnes of food grains annually.
8. Promoting appropriate diets and healthy lifestyles.
9. Giving due cmphasis to geriatric nutrition.
10. Improving household food security though poverty alleviation programmes.

As a sequel to the ICN (1992) and adoption of NNP (1993) with the help of the National Standing Commitec on Nutriton, the Government of India has developed and chalked out a National Plan of Action in Nutition (NPAN) in 1995. This plan aims at alleviating the various forms of malnutrition and achieving an optimal state of nutrition for the people. The NPAN serves the dual purpose of having a set pattern for implementing the NNP, as well as meeting the commitment made at ICN.

13.4 आहार की मात्रा व काल

आहार की मात्रा व काल मनुष्य के शरीर तथा उसके कार्य सम्बन्धी कई भावों पर निर्भर है। एक सामान्य व्यक्ति विश्राम काल में लगभग 2000 कैलोरी शक्ति का उपयोग करता है। अतः उसे औसत में प्रतिदिन 2600 कैलोरी वाले भोजन को ग्रहण करना चाहिए। जो अधिक शारीरिक कार्य करते हैं, उन्हें लगभग 4000 कैलोरी की आवश्यकता होती है, जबकि आराम से रहने वाले तथा कम से कम शारीरिक कार्य करने वाले व्यक्ति को लगभग 2200 कैलोरी की आवश्यकता होती है। आहार के काल के लिए स्वस्थ्यवृत्त में प्रतिपादित तथ्यों पर विचार कर भोजन करना चाहिए।

13.5 आहार के घटक द्रव्य

पोषण की दृष्टि से आहार के घटक द्रव्य में मुख्यतः छः प्रकार के पदार्थ होते हैं। इन्हें पोषक तत्व ¼Nutrients½ कहते हैं। इन्हें आधुनिक भाषा में ¼Proximal Principles of Food½ कहा जाता है। वस्तुतः इनका वर्गीकरण उन-उन पोषक तत्वों एवं शरीरक्रियात्मक प्रभावों की दृष्टि से किया गया है। ये छः तत्व निम्नलिखित हैं-

1. कार्बोज ¼Carbohydrates-Starches and Sugars½
2. वसा (Fast-Animal and Vegetable Oils)
3. प्रोटीन (Proteins-Animal and Vegetable)
4. खनिज पदार्थ (Mineral Salts)
5. जीवनी तत्व (Vitamines)
6. जल (water as Solvent)

शरीर में इनके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- शरीर संचालन हेतु जीवनी शक्ति तथा उष्मा की प्राप्ति, विशेषतः कार्बोज तथा वसा द्वारा।
- शरीर के अंगों, उतक तथा कोशिकाओं का निर्माण, उनकी वृद्धि तथा क्षतिपूर्ति-विशेषतः प्रोटीन तथा खनिज पदार्थों द्वारा।
- शरीर की जीवनी क्रियाओं का नियम तथा हार्मोन की क्रिया आदि- विशेषतः विटामिन्स, खनिज तथा जल द्वारा।

13.5.1 कार्बोज ¼Carbohydrates½ & कार्बोज आहार का सबसे बड़ा अंश है और शरीर में उत्पन्न होने वाली अधिकांश शक्ति का स्रोत है। स्टार्च तथा शर्करा ये कार्बोज के दो प्रधान वर्ग है। गेहूँ, चावल, ज्वार, मक्का, आलू, शकरकंद तथा कन्दहार सब्जियों में बहुतायत से स्टार्च पाया जाता है, जबकि गन्ना तथा मीठे फलों में शर्करा पाया जाता है। स्टार्च तथा शर्करा का प्राथमिक स्रोत हरे पौधे ही है। पौधें में अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध रहने पर शर्करा ही स्टार्च के रुप मे परिवर्तित होकर पौधे के अंग विशेष में संचित रहता है। आहार रुप में किया गया प्रत्येक प्रकार का कार्बोज अन्ततः ग्लूकोज तथा फ्रक्टोस में परिवर्तित होकर ही शोषित होकर पोषक रस बनता है। शक्ति के रुप में प्रति एक ग्राम शर्करा से 4.1 कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है। रासायनिक दृष्टि से कार्बोज मे कार्बन हाइड्रोजन तथा आक्सीजन ये तत्व पाये जाते है। तीन प्रकार के कार्बोज होते हैं। - (1) पाली सेकराइड्स जैसे स्टार्च, (2) डाइ सेकेराइड्स शर्करा ¼Cane Sugar½] दुग्ध शर्करा, माल्ट शर्करा तथा (3) मोनो सैकेराइड्स जैसे ग्लूकोस तथा फ्रक्टोस। क्रियाशील मांसपेशियों में ग्लूकोस के जलने से शक्ति प्राप्त होती है। ग्लूकोस ¼Glucoes½ का जो अंश तुरन्त उपयोग में नहीं आता, वह ग्लाइकोजन ¼Glycogen½ में परिवर्तित होकर यकृत् तथा मांसपेशियों में संचित हो जाता है अथवा वसा में परिवर्तित होकर त्वचा के नीचे जमा होता जाता है।

13.5.2 वसा (Fats) - वसा में भी कार्बोज के ही समान कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन तत्व होते हैं, अन्तर मात्र इतना होता है कि इसका अनुपात भिन्न होता है- वसा में कार्बोज की अपेक्षा आक्सीजन का अनुपात कम होता है। मक्खन, घी, वनस्पति तथा जन्तु स्रोत वाली वसा का प्रायः आहार में प्रयोग होता है। कार्बोज के समान ही वसा भी शरीर में शक्ति का प्रमुख स्रोत है। प्रति एक ग्राम वसा में 9.3 कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है, जो अनुपाततः कार्बोज की शक्तिप्रदायकता से दुगुने से भी अधिक है। जल में घुलनशील न होने से वसा का शोषण इमलसन के रुप में होता है। इस दृष्टि से आहार में इस प्रकार की वसा अच्छी मानी जाती है, जो द्रव रुप में हो या शरीर तापक्रम पर द्रवित हो जाय। इसके विपरीत अधिक ठोस वसा शरीर के लिए उतनी उपयोगी नहीं है। वैसे भी वसा का पाचन एवं शोषण मन्द गति से होता है। आवश्यकता से अधिक लिया गया वसांश या तो अशोषित हो, पुरीष के साथ बाहर आ जाता है या शोषित होकर त्वचा के नीचे या शरीर में अन्य स्थानों में संचित होता जाता है और शरीर की क्रियाओं के लिए हानिकर सिद्ध होता है। वसा में कुछ अनसेचुरेटेड वसा अम्ल स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माने जाते है। जन्तु स्रोत वाली वसा में जीवनी तत्व ए तथा डी व ई पाये जाते है। वसा से मिलती-जुलती रचना वाले पदार्थ, एर्गोस्ट्राल, कोलेस्ट्राल होते हैं, जो मनुष्य के पित्त, वात नाड़ी उतक तथा रक्तकणों में उपस्थित रहते हैं।

13.5.3 प्रोटीन (Protein) & ये आहार के अत्यन्त आवश्यक अंश है। ये जन्तु शरीर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। ये प्रधानतः नाइट्रोजन तत्वयुक्त होते है और मांस आदि ऊतकों के निर्माणक है। शरीर की मांसपेशियाँ, अन्य ऊतक, कोष्ठांग, एन्जाइम्स तथा अधिकांश हार्मोन्स प्रतनक प्रकृति ¼Protein½ के होते हैं। प्रोटीन के नाइट्रोजन तत्व से शरीर की कोशिकाओं के प्रोटोप्लाज्म, ऊतक तथा कोष्ठांगों की रचना होती है। शरीर मे वसा तथा कार्बोज के समान प्रोटीन

का संचय नहीं होता है। अतः जो कुछ प्रोटीन हम लेते हैं, प्रतिदिन उसका उपयोग शरीर के उपयोगार्थ होता रहता है और बचा हुआ प्रोटीन शक्ति उत्पादनार्थ जल जाता है। प्रोटीन के चयापचय से उत्पन्न अनुपयोगी पदार्थ गुर्दों से होकर मूत्रपथ से बाहर आता रहता है। एक साधारण युवक के लिए आहार में प्रतिदिन उसके शरीर भार के प्रति किलोग्राम पर एक ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। प्रोटीन की रासायनिक रचना बहुत ही जटिल होती है। ये प्रोटीन साधारण रचना वाले यौगिकों से बने होते हैं जिन्हें एमीनो-अम्ल ¼Aminoacids½ कहा जाता है। लगभग दो दर्जन अमाइनो अम्ल होते हैं। प्रोटीन के पाचन के दौरान प्रोटीन टूटकर प्रोटियोज-पेप्टोन-पेप्टाइड्स-अमाइनो अम्ल में परिवर्तित होकर अमाइनो अम्ल के रुप में शोषित होता है। फिर शरीर में आवश्यकतानुसार ये एमिनो अम्ल पुनः आपस में मिलकर नानाविध प्रतनकों का निर्माण करते हुए शरीर की वृद्धि तथा पुनरस्थापन का कार्य करते हैं। जन्तु शरीर स्वयं भी अनेक एमिनो अम्ल का निर्माण ¼Synthesi½ शरीर में नहीं होता, अतः भोजन के माध्यम से इनको बाहर से लिया जाना आवश्यक है। ऐसे अम्ल को नित एमिनो अम्ल ¼Essential Amino Acids½ कहा जाता है, जो निम्नांकित हैं:-

Tryptophane	Lysine
Methionine	Theonine
Phenylalanine	Leucine
Isoleucine	Valine
Arginine	Histidine

आहार के लिए दूध, मांस, मछली आदि तथा दालों में प्रोटीन की अच्छी मात्रा होती हैं। ऊतक वृद्धि के अतिरिक्त प्रोटीन से प्रतिग्राम 4.1 कैलोरी गर्मी ¼Energy½ देने की क्षमता होती है।

13.5.4 खनिज लवण ¼Mineral Salts) & शरीर के भार का 20 वाँ हिस्सा खनिज पदार्थों से बना होता है और ये पदार्थ शरीर के निर्माण तथा वृद्धि के लिए आवश्यक है। ये शरीर के द्रवांश में आवश्यक आस्मोटिक दबाव बनाये रखने तथा शरीर के एसिड-बेस संतुलन ¼Acid base balance½ को बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य करते है। मूत्र तथा स्वेद से बराबर निकालते रहने वाले खनिजों की पूर्ति हेतु भी इनकी आवश्यकता होती है। कैल्सियम, पोटैशियम, सोडियम, लौह तथा मैगनिशियम- ये क्षारात्मक ¼Alkali forming½ तत्व हैं तथा फास्फोरस सल्फर, क्लोरीन- ये अम्लात्मक ¼Acid forming½ तत्व है। आहारीय खनिज लवणों द्वारा शरीर में निम्नलिखित कार्य सम्पन्न होते हैं-

- मांसपेशियों, नाड़ियों तथा रक्त का समुचित तनाव ¼Tone½ बनाये रखना तथा पाचक रसों को स्रावित करना।
- शरीर की सामान्य वृद्धि में सहायता।
- शरीर में अम्ल-क्षार संतुलन बनाये रखना।
- शरीर की कठोर संरचना (अस्थिपंजर, दंत आदि) को बनाये रखना। शरीर मे लगभग पन्द्रह प्रकार के विभिन्न खनिज तत्व होते हैं, जो उपरोक्त सामान्य कार्यों के अतिरिक्त अनेक विशिष्ट कार्य सम्पन्न करते हैं।

13.5.5 जीवनीय तत्व ¼Vitamins½ & ये अत्यन्त जटिल कार्बनिक पदार्थ हैं जिनका आहार के माध्यम से प्राप्त होना आवश्यक है और ये शरीर की वृद्धि तथा पोषण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इन से कई विटामिन विभिन्न प्रकार के एन्जाइम प्रक्रियाओं से भी सम्बद्ध है। आहार में ये तत्व सूक्ष्म मात्रा में रहते हैं, परन्तु उनका कार्य महत्वपूर्ण है। इनकी अनुपस्थिति से नानाविध अपोषणज रोग ¼Deficiency disease½ उत्पन्न होते हैं। कई बार विटामिन्स की तुलना हार्मोन्स से की जाती है और इन्हें बाह्य हार्मोन्स ¼Exogenous hormones½ भी कहा जाता है। विटामिन्स की मात्रा का मापन अन्तर्राष्ट्रीय इकाई ¼I.U.½ में किया जाता है। विटामिन्स को दो वर्गो में बाँटा जाता है-

(1) वसाघुलित विटामिन्स

विटामिन 'ए' यह सम्पूर्ण शरीर के इपिथिलियल ऊतक ¼Epithelial lining½ को स्वस्थ रखने, नव कोशिकाओं की वृद्धि तथा दृष्टि के लिए आवश्यक है। यह वृद्धिकर ¼Growth Promoting½ तथा विषाणुहर ¼Anti infective½ विटामिन माना जाता है। विभिन्न वनस्पतियों के पीत रक्तक ¼Yellow Pigment, Carotene½ में प्रो-विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा मे मिलता है। वसा घुलित विटामिन 'ए' दूध, मक्खन, घी, मछली, वसा, काडलिवर आयल, मांस, अण्डे में पाया जाता है। हरी तथा पीतवर्णी वनस्पतियाँ, फल, गाजर, गोभी, आम तथा पपीते में विटामिन 'ए' की आवश्यकता होती है। विटामिन 'ए' की कमी से निम्नलिखित विकार ¼Deficiency Disorders½ होते हैं-

- शरीर की वृद्धि रुक जाना।
- जीवाणु संसर्ग के प्रति क्षमित्व शक्ति कम होना।
- जिरोसिस, जिरोफ्थैलिमिया, शुष्कता तथा जीवाणु संसर्ग।
- रात्रि अन्धता।
- लालाग्रन्थियों तथा आंतों की म्यूकस कला का क्षय।
- चर्मशुष्कता-स्वेदग्रन्थियों के क्षय के कारण।
- फास्फेटिक तत्वों का निर्माण।
- बार-बार श्वास वह संस्थान में जीवाणु संसर्ग हो जाना।
- दाँतों तथा मसूड़ों की विकृति।

विटामिन 'डी' - इसे ऐण्टीरैकिटिक विटामिन भी कहा जाता है। यह अस्थियों तथा दाँतों के कैल्सीफिकेशन ¼Calcification½ के लिए तथा रिकेट व अस्टियोमलसिया ¼Rickets and Ostecomalacia½ रोग के प्रतिरोध के

लिए आवश्यक है। इस पर गर्मी का प्रभाव नहीं पड़ता। यह अण्डे, मक्खन, वसा तथा घी और काडलिवर आयल में पाया जाता को स्वतः निर्माण होता रहता है। मनुष्य को प्रतिदिन 400-100 O.I.U. विटामिन 'डी' की आवश्यकता होती है।

विटामिन 'इ'- इसे ऐण्टीस्टीरिलिटी विटामिन भी कहते है। इसका आविष्कार इवान्स नामक वैज्ञानिक ने किया और इसका नाम विटामिन 'ई' रखा गया। यह प्रजनन प्रक्रिया को बढ़ाता है यह गेहूँ, जमते हुए दानों, हरी सब्जियों और कुछ वनस्पति तैलों में पाया जाता है। टोकाफराल में सबसे अधिक विटामिन 'ई' पाया जाता है। इसकी कमी से वन्ध्यता उत्पन्न होती है। यह एण्टी आक्सीडेण्ट विटामिन है।

विटामिन 'के' - इसे 'क्वागुलेशन विटामिन' भी कहा जाता है। सामान्य रक्त के जमने की प्रक्रिया में इसका महत्वपूर्ण कार्य है। यह हरी पत्तियों, गोभी, कैरट, सोयाबीन में पाया जाता है। इसकी कमी से रक्तपित्त रोग होता है।

(2) जलघुलित विटामिन्स

अ. 'बी' समूह की विटामिन्स - विटामिन बी से अलग की गयी सभी विटामिन्स को बी-काम्पलेक्स के नाम से जाना जाता है। अब जीवनीय तथा रासायनिक दृष्टि से ये सभी विटामिन्स अलग-अलग अस्तित्व रखती है परन्तु उनकी कुछ समानताओं के कारण उन्हें एक वर्ग में आज भी रखा जाता है। यदि किसी व्यक्ति के आहार में 'बी' समूह की सभी विटामिन्स अनुपस्थित रहें, निम्नलिखित, लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं-

हृदय तथा रक्तवह संस्थान संम्बन्धी लक्षण जेसे आयास श्वास कष्ट, हृदय के धड़कन का बढ़ना तथा हृदयशूल, अरोचक, नाड़ियों की कार्यक्षमता का ह्रास, पेरिफरल न्यूराइटिस, सुषुप्ति तथा नाड़ीशूल इत्यादि।

विटामिन 'सी' या ऐस्कार्बिक विटामिन - यह एक महत्वपूर्ण जलघुलित विटामिन है। यह गर्म करने से नष्ट हो जाती है। शरीर मे विटामिन 'सी' का संचय नहीं होता, अतः प्रतिदिन विटामिन 'सी' लेना आवश्यक है। सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन 500 मि.ग्रा. विटामिन 'सी' की आवश्यकता होती है। यह प्रमुखतः सभी जीवित ऊतकों, ताजे फल जैसे संतरे, नींबू, टमाटर, हरी सब्जियों तथा मांस मे पायी जाती है। आँवला तथा अमरुद के फल में प्रचूर मात्रा मे विटामिन 'सी' पायी जाती है। आजकल विटामिन 'सी' को ऐस्कार्बिक एसिड या सेविटामिक एसिड के रुप में कृत्रिम तैयार कर प्रयोग किया जा रहा है। यह रक्तकोशिकाओं तथा अन्तःकोशीय वस्तु निर्माण के लिए आवश्यक है। रक्तकणों के निर्माण में भी इसकी आवश्यकता होती है। इसके अभाव मे स्कर्वी, सक्ताल्पता, दन्तरोग, मसूडों की नम्यता, दौर्बल्य, घावों के भरने मे विलम्ब इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं।

विटामिन 'पी' - यह सामान्यतः विटामिन सी के साथ-साथ पायी जाती है। नींबू मे विशेष रुप से पायी जाती है। यह रक्तकोशिकाओं की पारदर्शकता को रोकती है। इसके अभाव मे रक्तपित्त, परप्यूरा तथा रक्तप्रस्रवण आदि होते हैं।

13.5.6 जल - जल आहार का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश है। बिना जल के मनुष्य का कुछ दिनों में अधिक जीवित रहना सम्भव नहीं है। शरीर भार का लगभग 65 प्रतिशत भाग जलीयांश का ही होता है। यद्यपि कि आहार मे लिए जाने वाले कई पदार्थ जैसे – दूध, फल आदि का अधिकांश भाग भी जलीय होता है परन्तु जल की पूर्ण आवश्यकता पूर्ति के लिए अलग

से जल पीना आवश्यक है। प्रतिदिन मल, मूत्र, स्वेद, श्वास के माध्यम से होने वाले जल के ह्रास की आपूर्ति तथा शरीरगत जलीयांश के नवीनीकरणार्थ जल की आवश्यकता बनी रहती है। पोषक तत्वों के संवहन में भी जल ही माध्यम है। जल के बिना आहार का पाचन तथा रससंवहन सम्भव नहीं है। शरीर से अनेक विसर्जनीय पदार्थों के निष्क्रमण के लिए भी जल आवश्यक है। जल की प्रतिदिन के लिए आवश्यक मात्रा कई बातों पर निर्भर करती है। सामान्यतः प्रतिदिन लगभग दो से ढाई लीटर जल लिया जाता है, जिसका आधे से अधिक अंश मूत्र व स्वेद के माध्यम से निकल जाता है।

13.6 संतुलित आहार

संतुलित आहार उसे कहते हैं जिसमे सभी भोज्य अवयव आवश्यक मात्रा में उपस्थित हों ताकि उनसे उपयुक्त मात्रा में शक्ति ¼Calories½ प्राप्त होने के साथ शरीर की वृद्धि तथा रख-रखाव सम्बन्धी सभी पोषक तत्व प्राप्त हों और आहार अनावश्यक रुप से मात्रा में अधिक भी न हो। संतुलित आहार स्वस्थ तथा रोगी व्यक्ति के लिए तथा विभिन्न प्रकार के शरीर, लिंग, तथा व्यवसाय वाले व्यक्तियों के लिए अलग-अलग होगा और उसकी तदनुसार युक्तिपूर्वक योजना करनी होगी। भोजन में रुचि उत्पन्न करने वाले तत्व भी होने चाहिए ताकि मनुष्य को भोजन में रुचि हो और उसकी उचित मात्रा ठोस पदार्थ भी हो, ताकि आँतों की गतिशीलता बनी रहे। एक सामान्य शरीर तथा व्यवसाय वाले व्यक्ति के संतुलित आहार में निम्नलिखित पदार्थ होने चाहिए-

सामान्य व्यक्ति का संतुलित आहार

1. प्रतनक (प्रोटीन)	75-100 ग्राम
2. कार्बोज (कार्बोहाइड्रेट)	400-500 ग्राम
3. वसा (फैट)	75-100 ग्राम
4. लवण (साल्ट): सोडियम कलोराइड	10-15 ग्राम

उक्त का विस्तृत वर्णन 'आहार के घटक द्रव्य' शीर्षक में हो गया है।

अभ्यास प्रश्न

1- निम्न प्रश्नों के उत्तर एक -एक पंक्ति में दीजिये -

(क) प्रश्न 1- आहारसंभयं..... सम्भवा यह कौन से ग्रन्थ में कहा गया हैं ?

(ख) प्रश्न 2. -बल, वर्ण, एवं ओजस कि प्राप्ति किससे होती हैं ?

(ग) प्रश्न 3.- अधिक कार्य करने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन कितनी कैलोरी उर्जा की आवश्यकता होती हैं ?

(घ) प्रश्न 4.-आहार के घटक द्रव्यो के नाम लिखिए ?

(ड़) प्रश्न 5. - सामान्य व्यक्ति के सतुलित आहार में कितने ग्राम कार्बोज होनी चाहिये ?

13.7 सांराश

आहार-

अन्नमार्ग से ग्रहण किया गया कोई भी पदार्थ जो शरीर की वृद्धि क्षतिपूर्ति. रक्षा. तथा पोषण करे एव जीवनी शक्ति को संवदन करे उसे आहार कहते हैं

तीन उपस्तंभ -आहार निद्रा एवं बहमचर्य

आहार की मात्रा एवं काल-

प्रत्येक प्राणी को अपने शरीर उम्र एवं व्यवसाय को ध्यान में रखते हुये आहार ग्रहण करना चाहिये। एक सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन लगभग 2600 कैलोरी तथा अधिक शारीरिक श्रम करनें वाले व्यक्ति को 4000 कैलोरी एवं कम शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति को 200 कैलोरी उर्जा की आवश्यकता हाती हैं।

आहार के मुख्य घटक या अवयव

आहार के निम्न छः प्रमुख घटक है।

1. कार्बोज

2- वसा

3- प्रोटीन

4- खनिज प्रदार्थ

5- जीवनी तत्व

6- जल

संतुलित आहार -

जिसमे भोजन के सभी घटक समुचित मात्रा में हो तथा जिससे शरीर को पर्याप्त पोषण मिले उसे संतुलित आहार कहते हैं

आहार के मुख्य घटक

छः अवयव

1. कार्बोज 2. वसा 3. प्रोटीन 4. खनिज पदार्थ 5. जीवनी तत्व 6. जल

प्रस्तुत इकाई में उपरोक्त की विस्तृत व्याख्या की गई है।

13.8 शब्दावली

क्षतिपूर्ति - कमी या हानि की पूर्ति करना।

व्याधि - शारीरिक रोग

हितकर आहार - जिससे शरीर की पर्याप्त वृद्धि एवं पोषण हो।

आहार सम्भव- आहार से उत्पन्न होने वाला

घटक - तत्व

पीतवर्णी – पीले रंग वाला

लाल ग्रन्थि - लार ग्रन्थि

13.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

(क) चरक सूत्र

(ख) आहार से बल वर्ण एवं ओजान की प्राप्ति होती हैं।

(ग) अधिक कार्य करने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन 4000 कैलोरी की आवश्यकता होती है।

(घ) आहार के निम्न छः घटक द्रब्य है।

कार्बोज, वसा, प्रोटीन, खनिज लवण, जीवनी तत्व, जल

(ड़) सामान्य व्यक्ति के संतुलित आहार में 400-500 ग्राम कार्बोज होनी चाहिये।

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल, राकेश प्राकृतिक आयुर्विज्ञान आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदी नगर. उत्तर प्रदेश

2 . सिंह रामहर्ष (2007) स्वस्थवृत्त विज्ञान चौखंभा सस्कृत प्रतिष्ठान बंगलो रोड दिल्ली।

3. भाटिया सुदशर्न एवं प्रसाद संजीव (2007) प्राकृतिक चिकित्सा द्धारा स्वास्थ्य सुरूचि साहित्य शाहदरा दिल्ली।

4. देवराज, टी.एल (2008) आयुर्वेद एवं स्वस्थ जीवन, ग्रंथ अकादमी नयी दिल्ली।

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1- आहार की अवधारणा को स्पष्ट करते हुयें इसके महत्व पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 2- आहार की मात्रा एवं काल को स्पष्ट करते हुए आहार के घटक द्रव्यो का विस्तृत विवेचना कीजिए।

प्रश्न 3- संतुलित आहार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

इकाई 14 - खाद्य पदार्थो की आवश्यकता तथा हितकर भोजन

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 खाद्य पदार्थो की आवश्यकता एवं महत्व

14.4 हितकर भोजन

14.4.1 अन्न

14.4.2 दालें

14.4.3 हरि पत्तियों वाली सब्जियॉ

14.4.4 कन्द

14.4.5 तना

14.4.6 फल

14.4.7 दूध

14.4.8 शहद

14.4.9 चीनी और शक्कर

14.4.10 अंकुरित अन्न

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्राणी मात्र के जीवन में खाद्य पदार्थो का विशेष महत्व है। विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ जैसे अन्न, दालें सब्जियॉ फल, दूध, अंकुरित अन्नए इत्यादि हमारी भुख को शान्त करने के साथ - साथ शरीर का पोषण करते है। क्षतिपूर्ति में सहायक होते हैं साथ ही मन तथा आत्मा को भी प्रसन्न रखते हैं। पाठको शरीर के साथ -साथ हमारे मन व आत्मा भी प्रसन्न हैं इस हेतु हमें हितकर अर्थात -स्वास्थ्य को लाभ पहुंचाने वाला सात्विक भोजन ग्रहण करना चाहिए। अब आपके मन मै यह

जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि आखिर इन खाद्य पदार्थो की आवश्यकता क्यो होती है? हितकर भोजन क्या है? कौन - कौन से खाद्य पदार्थो को हितकर भोजन कि श्रेणी में रखा जा सकता है इत्यादि । आगे के पृष्ठों में मैने जो वर्णन किया है उसको पढने के बाद निश्चित रुप में आपकी समस्याओं का समाधान होगा।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

- खाद्य पदार्थो की आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- हितकर या सुपाच्य भोजन के अर्थ का अध्ययन कर सकेगें ।
- हितकर भोजन में कौन - कौन से भोज्य पदार्थ आते हैं इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- हितकर भोजन की समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगीता का विश्लेषण कर सकेंगे।
- दिन - प्रतिदिन की जिन्दगी में हितकर भोजन के द्वारा हम किस प्रकार से स्वंय को स्वस्थ रख सकते हैं -इसका अध्यन कर सकेंगे।

14.3 खाद्य पदार्थो की आवश्यकता एवं महत्व

खाद्य पदार्थो का सम्बन्ध मूल रूप से पृथ्वी तत्व से है। पृथ्वी तत्व अर्थात मिट्टी प्रयोगों द्वारा मिट्टी का एक ढेला उठाकर विशेषज्ञों ने परीक्षण कियाए जिसके फलस्वरूप उन लोगों को उस मिट्टी के ढेले में निम्नलिखित मूल तत्वों का पता लगा- 1.ओषजन (Oxygen) 2. कार्बन, 3. उद्जन (Hydrogen), 4. नोषजन (Nitrogen), 5. खटिकम्, 6. स्फुर, 7. लोहम्, 8. नैलिन, 9.मैगनीज, 10. शैलभ, 11. पांशुजन, 12. सेंधकम्, 13. प्लवित् 14. गन्धक, 15. मैगनीशियम, 16. हरिन्, 17. ताम्रम्, 18. जस्ता, 19. अल्युमीनियम्, 20. निकिल, 21. संखिया, 22. ब्रोमाइड, 23. लिथियम्, 24. कोबाल्ट।

जो कुछ भी हम खाते-पीते हैं या आहार के रूप में ग्रहण करते हैंए वे समस्त वस्तुएँ मूलतः हमें पृथ्वी से ही प्राप्त होती हैं। अतः पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले लगभग सभी खाद्य पदार्थो का जब वैज्ञानिकों ने विश्लेषण किया तो पृथ्वी के उपर्युक्त मूलतत्व ही उनमें भी पाए गए। अर्थात्-

- प्रत्यामिन (प्रोटीन)-ओषजन + उद्जन + नोषजन + कार्बन से बनता है।
- कार्बोज (कार्बोहाइड्रेट)-कार्बन + ओषजन + उद्जन के मेल से बनता है।
- वसा- ओषजन+ उद्जन+ कार्बन के मेल से बनता है।
- स्फोक (सैल्युलोज)- कार्बन + ओषजन + उद्जन के मेल से बनता है।

- जल- ओषजन+ उद्जन के मेल से इसकी उत्पत्ति होती है।

- खाद्योज (विटामिन)- ओषजन + उद्जन+ कार्बन+ नोषजन के मेल से सभी तत्व आते हैं।

- खनिज लवण- इसमें उपरोक्त मूल तत्वों में से खटिकम से कोबाल्ट तक सभी तत्व आते हैं।

मिट्टी और खाद्य पदार्थों की भाँति ही जब वैज्ञानिकों ने मनुष्य के पार्थिव शरीर का निरीक्षण किया तो बिल्कुल वे ही मूल तत्व उसमें भी पाए गए, जो सामान्यतः मिट्टी और उससे उत्पन्न खाद्य पदार्थों में पाए जाते हैं। शरीर में पाए जाने वाले इन खाद्य पदार्थों में वृद्धि हो, इसलिए खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। भोजन पर अगर दृष्टिपात करें तो भोजन का उद्देश्य क्षुधा को जैसे-तैसे शान्त कर देना अथवा जिह्वा की तृप्ति ही नहीं है। भोजन का उद्देश्य यह भी नहीं कि उससे केवल हमारा स्थूल शरीर ही मोटा या बलवान हो, अपितु हम इसलिए भोजन ग्रहण करते हैं कि उससे हमारे स्थूल शरीर पोषण के साथ-साथ हमारे मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य में भी वृद्धि हो।

शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के स्वस्थ रहने पर ही हम पूर्णरूपेण स्वस्थ रह सकते हैं। इनमें से किसी एक के अस्वस्थ रहने पर हम अपने को पूर्ण स्वस्थ नहीं कह सकते। इस तथ्य को ध्यान में रखकर हमारे यहाँ भोजन को तीन श्रेणियों – 1. सात्विक भोजन, 2. राजसिक भोजन, और 3. तामसिक भोजन में विभाजित किया गया है, जिससे हमें अपने लिए अच्छे-बुरे स्वास्थ्य के लिए उत्तम, मध्यम भोजनों के चुनाव में सुविधा होए अर्थात् जो आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक तीनों प्रकार के उत्तम स्वास्थ्य के अभिलाषी हों, वे सात्विक भोजन करें। जो मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के इच्छुक होंए वे राजसिक भोजन को चुने तथा जिन लोगों का उद्देश्य केवल शरीर को ही बलवान बनाना होए वे तामसिक भोजन से प्रीति करें।

आहार शास्त्रियों का मत है कि - बहुत से भोज्य पदार्थ ऐसे हैं, जो किसी दृष्टि से शरीर के लिए भले ही लाभदायक प्रतीत होते होंए किन्तु मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से वे विकार उत्पन्न करने वाले ही होते हैं। उदाहरण के लिए प्याज को ही लीजिए यह शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से चाहे कितना ही लाभदायक और गुणकारी क्यों न हो, किन्तु मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से यह एक उत्तेजक और निम्न कोटि का तामसिक भोज्य पदार्थ ही है। इसी प्रकार माँस खाने से - शरीर मांसल भले ही हो जाए, परन्तु उससे मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की उन्नति की आशा कदापि नहीं करनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा लिखित- 'भक्ति-रहस्य' नामक सुप्रसिद्व पुस्तक के पढ़ने से पता चलता है कि - ईश्वर की भक्ति प्राप्त करने के अनेक उपायों में सात्विक खाद्य का सेवन करना सर्वप्रथम शर्त है। इसका कारण यह है कि जिस शक्ति से देह और मन गठित होता है, वह शक्ति खाद्य-पदार्थों में विद्यमान होती है और हमारे पेट में जाकर जिसका केवल आकार बदलता है। प्रत्येक खाद्य का हमारे मन और शरीर दोनों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। कितने ही खाद्य पदार्थ उत्तेजक होते हैं। एक शराबी क्या अपने मन को संयत रख सकता है इसी प्रकार एक माँसभक्षक अहिंसाव्रत धारण कर ही नहीं सकता। यह एक आध्यात्मिक रहस्य है कि मन तब तक शुद्व नहीं हो सकता, जब तक उसका आहार शुद्व नहीं होता, अर्थात् ष्जैसा खाओगे अन्न, तैसा बनेगा मनष ईश्वर की स्मृति तब तक नहीं बनी रह सकती, जब तक कि मन शुद्व नहीं होता। आहारशुद्वि होने से तत्वशुद्वि होती है अर्थात् उस समय मन, इन्द्रिय विषय समूह को त्याग करके राग, द्वेष , मोह वर्जित होकर शुद्व हो जाता है और इस रूप से सत्व शुद्वि हो जाने पर - मन में ईश्वर की स्मृति विराजमान होती है।

उपरोक्त विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से हमारा भोजन यानि हितकर भोजन या सद्आहार का अर्थ – 'सात्विक भोजन' ही है। सात्विक भोजन करने वाले का शरीर, मन और आत्मा तीनों शुद्व और पवित्र होते हैं।

14.4 हितकर भोजन से क्या आशय है

शरीर की शक्ति क्षय का निवारण करने वाला हो।

- शरीर की वृद्वि करने वाला हो।
- शरीर को उचित ताप प्रदान करने वाला हो।
- बलप्रदायक हो।
- जल्दी से जल्दी पचकर शरीर में लगने वाला हो।
- अनुत्तेजक हो।
- स्मृति, आयु, वर्ण, ओज, सत्व एवं शोभा को बढ़ाने वाला हो, यथा -

आहार प्रीणानः सद्योबलकृद्देह धारणः।

स्मृत्यायुः शक्ति वर्णोजः सत्व शोभा विवर्द्धनः।।

- जिन शाकों की पत्तियाँ खाई जाती हैं उन्हें 'पत्रशाक' कहते हैं, जैसे- पालक, बथुआ आदि।
- जिनके पुष्प खाए जाते हैं, उन्हें 'पुष्पशाक' कहते हैंए जैसे - कचनार आदि।
- जिनके फल खाए जाते हैं, उन्हें 'फलशाक' कहते हैं, जैसे – कटहल, टमाटर आदि।
- जिनकी डांढ़ी खाई जाती है, उन्हें 'डांढ़ी शाक' कहते हैं, जैसे - अस्परागस आदि।
- जिन शाकों की जड़ें खाने के काम में आती है, उन्हें 'कन्दमूल शाक' कहते हैं, जैसे- गाजर, मूली आदि।

बीजशाकों में कटहल और सेम आदि के बीज अधिक प्रसिद्ध हैं। फलशाक के बाद भाजियाँ ही मनुष्य की स्वाभाविक भोजन हैं। ये भाजियाँ क्षारमय होती हैं और साथ ही खनिज लवण प्रधान भी। अहितकर भोजन करने से रक्त में जो एसिडिटी की मात्रा बहुत बढ़ जाती है, उसका दोष शाक-भाजियों जैसे-क्षारमय खाद्य द्रव्यों से मिट जाता है। सभी शाक-भाजियाँ अपने मूल रूप में क्षारमय होती हैं लेकिन जब उनको आग पर रखकर पकाया जाता है और उनमें मिर्च-मसालों तथा तेल, खटाई का मिश्रण किया जाता है तो वे खटाई प्रधान और कम गुणकारी बन जाती हैं। इसीलिए शाकों को खाने का उत्कृष्ट ढंग उनका सलाद बनाकर कच्चा ही खाना है। सलाद का नियमित रूप से सेवन करने से चर्म-रोग और

रक्तविकार कभी नहीं होते, प्यास नहीं सताती, शरीर की अनावश्यक गर्मी शान्त होती है और मलावरोध कभी नहीं होता। कुछ हितकर भोजन का वर्णन इस प्रकार है।

14.4.1 अन्न

अन्न भी वस्तुतः फल ही होते हैं। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि अँगूर, अनारए आदि ताजे फल जल्दी खराब हो जाते हैं, जबकि अन्नों को सुखाकर रख लेने से वे बहुत दिनों तक खराब नहीं होते। अन्नों में गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि प्रमुख हैं। विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के अन्न, प्रकृति प्रतिवर्ष उपजाती है। जिसका सीधा मतलब यह है कि प्रत्येक ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्न ही हमें उस ऋतु विशेष में सेवन करने चाहिए क्योंकि वे ही हमारे स्वास्थ्य के लिए उत्तम और लाभकारी है। इसी प्रकार सूखे अन्नों की अपेक्षा ताजे और हरे अन्न जैसे - हरा चनाए हरी मटर आदि अँकुरित अन्न कहलाते हैं। फलतः यह उत्तम स्वास्थ्य के लिए परम हितकारी सिद्ध होते हैं। जो अन्न उनके छिलकों सहित पूरे-पूरे खाए जा सकते हैंए उन्हें छिलके सहित ही खाना चाहिए। जैसे - छिलकों सहित उड़द की दाल और चोकर सहित गेहूँ का आटा आदि। ऐसा करने से अन्न का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है। अन्न के छिलकों में ही प्रोटीन आदि पौष्टिक तत्व अधिक मात्र में विद्यमान रहते हैंए जो हमारे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी होते हैं।

14.4.2 दालें

भारत में कई तरह की दालों की फसल पैदा होती है जैसे - अरहर, मूँग, उड़द, चना, मसूर, मटर, अलसी आदि। दाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह शरीर की प्रोटीन की आवश्यकता को पूरा करती है, एवं भोजन के स्वाद रस को भी बढ़ाती है। जिन खेतों में दाल उगायी जाती है उनकी उर्वरता दाल के पौधों की जड़ों में पाए जाने वाले राइबोसोम नामक जीवाणुओं के कारण बढ़ती है।

(क) 14.6.1 अरहर दाल - अरहर दो प्रकार की होती है – 1. लाल और 2. सफेद। दाल के रूप में उपयोग में लिए जाने वाले सभी दलहनों में अरहर का प्रमुख स्थान है। यह गरम और रूक्ष होती है। जिन्हें इसकी प्रकृति के कारण हानि हो वे लोग इसकी दाल को घी से छौंककर खाएँए फिर किसी प्रकार की हानि नहीं होगी। अरहर के दानों को उबालकर पर्याप्त जल में छौंककर स्वादिष्ट सब्जी या तरकारी बनायी जाती है। अरहर की हरी-हरी फलियों में से दाने निकालकर उसका साग भी बनाया जाता है। अरहर की दाल में इमली अथवा आम की खटाई आदि गर्म मसाले डालने से यह अधिक रूचिप्रद बनती है। अरहर की दाल में पर्याप्त मात्रा में घी मिलाकर खाने से यह वायुकारक नहीं रहती। अरहर की दाल त्रिदोषहर होने से सभी के लिए अनुकूल रहती है। अरहर के पौधे की सुकोमल डण्डियाँ, पत्ते आदि दुधारू मवेशियों को विशेष रूप से खिलाए जाते हैं। इससे वे अधिक स्वस्थ बनते हैं और अधिक दूध देते हैं।

अरहर कसैली, रूक्ष, मधुर, शीतल पचने में हल्की, मलावरोधक, वायु उत्पादक, शरीर के वर्ण को सुन्दर बनाने वाली एवं रक्त, कफ और रक्त सम्बन्धी विकारों को दूर करने वाली है। लाल अरहर की दाल मलावरोधक, हल्की, तीक्ष्ण तथा गर्म है। यह अग्नि को प्रदीप्त करने वाली और कफ, विष, रक्तविकार, खुजली, कोढ़ तथा जठर के कृमियों को दूर करने वाली है। अरहर की दाल पथ्यकर, कुछ वातल और कृमि तथा त्रिदोषनाशक है।

(ख) उड़द दाल - उड़द पौष्टिक दलहन है। यह भारी, पाक में मधुर, स्निग्ध, रूचिकारक, वायुनाशक, मल को ढीलाकर नीचे उतारने वाला, तृप्तिदायक, बल प्रदायक, वीर्यवर्धक, अत्यन्त पुष्टिदायक, मल-मूत्र को मुक्त करने वाला**ए**

दुग्धपान कराने वाली माता का दूध बढ़ाने वाला और मेदकर्ता है। उड़द पित्त और कफ को बढ़ाते हैं। ये अर्श, वात, श्वास और शूल को नष्ट करते हैं। बवासीर, गठियाए लकवा और दमा में भी इसकी दाल खाना लाभदायक है।

उड़द के बड़े और बड़ियाँ बलप्रद, पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, वायुरोगनाशकए रूचि उत्पादक तथा विशेषकर अर्दित (वायु रोग का एक प्रकार जिसमें रोगी का मुँह टेढ़ा हो जाता है) नाशक है। उड़द की दाल के पापड़ - रूचि उत्पादक, अग्नि प्रदीपक, पाचक, रूक्ष और कुछ भारी है। ठण्ड की ऋतु में तथा वायु प्रकृति वालों के लिए उड़द हितकारक है परन्तु पाचन होने पर ये गर्म और मधुर रस उत्पन्न करते हैं। अतः पित्त तथा कफ प्रकृति वालों के लिए इसका सेवन हानिकारक है।

(ग) मसूर दाल - मसूर की गणना द्विदल धान्य के रूप में दलहनों में होती है। मसूर की दाल एवं मूँग की दाल के गुण समान हैं। अतः मूँग की दाल के बदले मसूर की दाल का उपयोग निडरतापूर्वक किया जा सकता है। मसूर की दाल का लैटिन नाम-लेंस एसक्यूलेन्ट्स (Lens Esculentus) है। मसूर की 2 जातियाँ हैं-(1) सफेद और (2) लाल, दोनों किस्में गुण में समान ही हैं।

मसूर पाक में मधुर, मल को रोकने वाले, शीतल, हल्के, रूक्ष और वातकारक गुण रखते हैं। कफ या पित्त अथवा रक्तपित्त नाशक और ज्वर मिटाने वाली है। मसूर बलकर है। मसूर के पत्तों की भाजी-स्वाद में कटु और पचने में हल्की है।

विशेष - मसूर में लौह की मात्रा अधिक होने से उसकी दाल का यथेष्ठ उपयोग करना चाहिए। मसूर में गन्धक की मात्रा है। अतः ये मूँग की तरह सुपाच्य है। गरीब वर्ग के लोग मसूर की दाल का अधिक उपयोग करते हैं। मसूर के छिलकों में एक काले पदार्थ को छोड़कर, रेशायुक्त अन्य निरर्थक पदार्थ अधिक हैं, किन्तु छिलके निकाल देने के बाद उसका आटा अत्यन्त सत्व वाला हो जाता है। विशेषकर उसमें मटर और सोयाबीन की अपेक्षा एल्युमिनाइड्स अधिक होता है।

पेट की पाचन क्रिया से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार के रोग में मसूर की दाल खाना लाभकारी है। मसूर के आटे का लेप लगाने से फोड़े शीघ्र ही फूटकर मवाद सूख जाता है।

(घ) चना - एकदल धान्यों में जैसे गेहूँ मुख्य है, उसी प्रकार द्विदल धान्यों में चना मुख्य है। चने का उपयोग भी लगभग सभी जगह होता है और भारतवर्ष में सर्वत्र चने का उत्पादन होता है। पंजाब, उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड, गुजरात और महाराष्ट्र में चने की फसल मुख्य रूप से होती है।

कफ तथा पित्त के रोगों में चने लाभ करते हैं तथा वह अंशतः ज्वरहर (एण्टीपायरिटिक) भी है। चने में प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में है। उनमें कैल्शियम तत्व भी है। इन तत्वों से मनुष्य की सामान्य शक्ति बढ़ती है व शरीर का गठन मजबूत बनता है।

पानी में भिंगोकर अंकुरित किए गए चनों से विटामिन 'बी-1' प्राप्त होता है तथा चनों के मुलायम ताजा पत्तों में से विटामिन 'बी' और ष्सीष् उपलब्ध होता है। चने का क्षार अजीर्ण, गैस, शूल, और आँतों की मन्दता को दूर कर आहार का पाचन करने में सहायता करता है। चने के क्षार के सेवन से मूत्ररोग दूर होते हैं। पेशाब साफ आता है और पेशाब की मात्रा बढ़ती है। जिसके फलस्वरूप मूत्रमार्ग के दोष दूर होते हैं। जिन गरीब समुदाय के लोगों को पौष्टिक पदार्थ उपलब्ध नहीं होते हैं उन्हें पौष्टिकता प्राप्त करने के लिए चनों का सेवन करना चाहिए। कमजोर युवकों को भी चने का उपयोग किसी-न-किसी रूप में अवश्य ही करना चाहिए। ध्यान रहे कि - बिना परिश्रम किए चने का आहार नहीं पचता। चनों का उपयोग खाद्य के रूप में तथा क्षार का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है।

14.4.3 हरे पत्तियों वाली सब्जियॉ

हरी पत्तियों के साग का भी भारत में बहुतायत से प्रचलन है। इन पत्तियों का साग शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ पर्याप्त पोषणता प्रदान करता है तथा शरीर की पाचन शक्ति एवं प्राण शक्ति को बढ़ाता है। हरी पत्तियों वाले साग के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं – चना, बथुआ, पालक, मेथी, चौलाई, सहजन आदि।

(क) पालक - पालक एक सुप्रसिद्ध भाजी है। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही इसको उगाया जाता है। रेतीली जमीन को छोड़कर शेष समस्त प्रकार की जमीन इसकी खेती के लिए अनुकूल रहती है।

हरे पत्तों की तरकारियों में पालक के पत्तों की तरकारी पथ्य और उपयोगी है। पालक के पत्तों की तरकारी स्वतन्त्र रूप से तथा सोऐ की भाजी अथवा अन्य पत्तों वाली भाजी के साथ मिलाकर पकायी जाती है। पालक की प्रकृति-पाचक, तर और ठण्डी है। पालक में दालचीनी डालने से इसकी प्रकृति बदल जाती है। पालक को पकाने से इसके गुण नष्ट नहीं होते। पालक में विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', लोहा और कैल्शियम अधिकता से पाया जाता है। कच्चा पालक खाने से कड़ुवा और खारा लगता है, परन्तु गुणकारी होता है।

पालक के पत्तों में पर्याप्त औषधीय गुण विद्यमान हैं। इसमें सज्जी खारी और चिकनापन अधिक है। ये पथरी को पिघलाकर बाहर निकालती हैं। यह इसका सबसे बड़ा गुण है। पालक फेफड़ों के लिए उपयोगी होती है। आँतों के रोगए दस्तए संग्रहणी आदि में भी यह लाभदायक है। टमाटर के बाद साग-भाजियों में पालक की भाजी ही सर्वाधिक शक्तिप्रदायक है। इसमें लौह और ताँबे के अंश होने के कारण यह पाण्डुरोग से ग्रस्त रोगियों के लिए भी पथ्य है। इसमें रक्त बढ़ाने का गुण ज्यादा है तथा यह रक्त को शुद्ध करता है और हड्डियों को मजबूत बनाता है। पालक के हरे पत्ते जीवनीशक्ति का मूल है। दूध यदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो सके तो ऐसी दशा में पालक के हरे पत्ते का रस बच्चों को देने से पर्याप्त लाभ मिल सकता है। इसके बीज का भी औषधि के रूप में उपयोग होता है। सम्पूर्ण पाचनतन्त्र की प्रणाली के लिए पालक का रस सफाई कारक एवं पोषणकर्ता है। कच्चे पालक के रस में प्रकृति ने प्रत्येक प्रकार के शुद्धिकाकर तत्व रखें हैं। पालक संक्रमण रोग तथा विषाक्त कीटाणुओं से उत्पन्न रोगों से रक्षा करता है। पालक में पाया जाने वाला विटामिन 'ए' म्यूकसमेम्बेन्स की सुरक्षा के लिए उपयोगी है। पालक वायु करने वाला, शीतल कफकारक, मल को मुक्त करने वालाए भारी और मल को रोकने वाला है। यह मदए श्वांसए पित्तए रक्तविकार और कफ को नष्ट करता है। ष्सुश्रुतष् ने पालक को रूक्ष एवं पित्त और कफ पर हितकारी मानते हैं।

पालक शीतल, स्नेहन, रोचन, मूत्रल, शोथहर और शामक है। इसके गुणधर्म सामान्यतः सोडा सदृश हैं। इसका शाक रूचिकर और शीघ्र पाची है। पालक आँतों को क्रियाशील रखता है और आँतों में स्थित मल का निःसारण करने में सहायक बनता है। यह मधुमेह के रोग में भी गुणकारी है। इसके बीज सारक और शीतल हैं तथा यकृत रोग, पीलिया और पित्तप्रकोप को मिटाते हैं। कफ और श्वांस सम्बन्धी रोगों में भी ये हितकारी हैं। इनमें से चर्बी जैसा गाढ़ा तेल निकलता है। यह तेल कृमि और मूत्र रोगों पर लाभकारक है।

(ख) बथुआ - बथुआ एक पौष्टिक शाक है। इसमें लोहा, पारा, सोना और क्षार पाया जाता है। यह पथरी होने से बचाता है। आमाशय को बलवान बनाता हे। गर्मी से बढ़े हुए यकृत को ठीक करता है। इसकी प्रकृति ठण्डी और तर है। बथुआ का साग जितना अधिक-से-अधिक सेवन किया जाएए निरोगता हेतु उतना ही उपयोगी है। बथुए का सेवन कम-से-कम मसाले डालकर करें और यदि नमक न मिलाएँ तो अच्छा है। यदि स्वाद के लिए मिलाना पड़े तो सैंधानमक मिलाएँ और गाय या भैंस के घी से छौंक लगायें। बथुआ का उबाला हुआ पानी अच्छा लगता है और दही में बनाया हुआ रायता भी स्वादिष्ट

होता है। किसी भी तरह बथुआ का नित्य सेवन करना चाहिए। बथुआ के परांठे भी बनाये जाते हैं जो अत्यन्त स्वादिष्ट होते हैं तथा इसको उड़द की दाल में बनाकर भी खाया जाता है। बथुआ शुक्रवर्धक है।

पेट के रोग मेंए जब तक बथुए का साग मिलता रहेए नित्य इसकी सब्जी खायें। बथुए का रस उबाला हुआ पानी पियें। इससे पेट के प्रत्येक प्रकार के रोग-यकृत, तिल्ली, अजीर्ण, गैस, कृमि, दर्द, अर्श और पथरी ठीक हो जाती है।

पथरी में एक गिलास कच्चे बथुए के रस में शक्कर मिलाकर नित्य पीने से पथरी टूटकर बाहर निकल जाती है।

कब्ज में बथुआ आमाशय को ताकत देता है और कब्ज को दूर करता है। यह दस्तावर होता है। अतः कब्ज वालों को बथुए का साग नित्य खाना चाहिए। कुछ सप्ताह लगातार बथुआ का साग खाते रहने से सदा रहने वाला कब्ज दूर होता है तथा शरीर में ताकत आती है और स्फूर्ति बनी रहती है।

(ग) मेथी, हरी साग - इसका लैटिन नाम ट्रीगोनेल्ला फोरेनम-ग्रेईकम है। दाल-साग के बघार में मेथी का उपयोग होता है। वातनाशक औषधि के रूप में भी इसका उपयोग होता है। मसाले के रूप में दाने वाली मेथी का दूसरा मुख्य उपयोग हरी भाजी के रूप में होता है। मेथी के कोमल पत्तों की भाजी रूचिकर और पथ्य है। मेथी की भाजी में खून शुद्ध करने का विशिष्ट गुण है। इसलिए यह शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी और हितकर मानी जाती है। भाजी के अलावा मेथी के पत्तों से ढोकलेए मुठिए और गोटे भी बनते हैं।

मेथी वायु को शान्त करने वाली, कफ को मिटाने वाली और ज्वरनाशक है। यह वातहर, उष्ण, कड़वी, दीपक, और पौष्टिक है। मेथी-कृमि, शूल, सन्धिवात, गुल्म, कमर का दर्द, और सामान्य शारीरिक पीड़ा को दूर करती है। मेथी वायुनाशक मानी जाती है। ''सुश्रुत'' मेथी को रक्त सुधारक, पित्तनाशक, वायुनाशक, बृंहण, पौष्टिक और दुग्धपान कराने वाली स्त्री का दूध बढ़ाने वाली मानते हैं। मेथी की भाजी तीखी, उष्ण, पित्तवर्धक, दीपक, लघु, रस में कड़वी, रूक्ष, मलावंष्टभक, और बल्यकर है। यह सूतिका रोग वाली स्त्रियों, वात रोगियों और कफ रोगियों को पथ्य के रूप में दी जाती है। ''सुश्रुत'' बड़े पत्तों वाली मेथी को रूक्ष एवं मल-मूत्र को रोकने वाली मानते हैं।

14.4.4 कन्द

जिन पौधों की जड़ें खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग किये जाते हैं, उन्हें कन्दमूल वर्ग के अंतर्गत रखा जाता है, जैसे – आलू, गाजर, मूली, जमीकन्द, शकरकन्द आदि।

(क) आलू - आलू तरकारियों का राजा है क्योंकि दुनिया भर में तरकारी के रूप में जितना आलू का उपयोग होता हैए उतना शायद ही अन्य किसी सब्जी का होता होगा। आलू में कैल्शियम, लोहा, विटामिन ष्बीष् तथा फॉस्फोरस बहुतायत से होता है। आलू खाते रहने से रक्त वाहिनियाँ बड़ी आयु तक लचकदार बनी रहती हैं तथा कठोर नहीं होने पातीं। इसीलिए आलू खाकर लम्बी आयु प्राप्त की जा सकती है।

आलू को अनाज के पूरक आहार का स्थान प्राप्त है। सभी प्रकार के आलू शीतल, मलरोधक, मधुर, गरिष्ठ, मल तथा मूत्र को उत्पन्न करने वाले, रूक्ष, मुश्किल से पचने वाले और रक्तपित्त को मिटाने वाले हैं। यह कफ और वायु करने वाले, बलप्रद, वीर्यवर्धक और अल्पमात्रा में अग्निवर्धक भी हैं। आलू-परिश्रम के कारण निर्बल बने हुए, रक्तपित्त से पीड़ित, शराबी और तेज जठराग्नि वाले लोगों के लिए अत्यन्त ही पोषक है।

विशेष - आलू यदि नरम हो अथवा उसमें दुर्गन्धयुक्त पानी आ गया तो उसका उपयोग न करें। मन्दाग्नि वालों, गैस या मधुमेह से पीड़ित रोगियों को आलू का सेवन हितकारी नहीं। अग्निमांद्य, अफरा, वात प्रकोप, ज्वर मलावरोध, खुजली वगैरह, त्वचा रोगए रक्तविकार, अतिसार, प्रवाहिका, आन्त्रक्षय, अर्श, अपच और उदर कृमि - इन रोगों से पीड़ित लोगों को आलू का कम सेवन करना चाहिए।

आलू में प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट्स फॉस्फोरस पोटाशियम गन्धक ताँबा और लोहा अधिक मात्रा में है। इसमें विटामिन ए और सी भी थोड़ी मात्रा में है।

(ख) गाजर - गाजर प्रकृति की एक अमूल्य भेंट है जो शक्ति का भण्डार है। गाजर फल भी है और साग भी तथा इसकी पैदावार भारतवर्ष में सभी स्थानों पर होती है। मूली की भाँति गाजर भी जमीन के अन्दर पैदा होती है।

गाजर के सेवन से शरीर मुलायम और सुन्दर बनता है। शरीर में शक्ति का संचार होता है और वजन भी बढ़ता है। बच्चों को गाजर का रस पिलाने से उनके दाँत सरलता से निकलते हैं और दूध भी ठीक से हजम होता है। अर्शए क्षयरोग, पित्त आदि में गाजर का सेवन अत्यन्त हितकारी है। गाजर का रस मस्तिष्क के लिए बहुत अच्छा माना जाता है। शारीरिक एवं बौद्धिक विकास हेतु गाजर का सेवन लाभकारी है। रोगों के आक्रमण से व्यक्ति को सुरक्षित रखने का विशेष गुण गाजर में मौजूद है। गुदा की जलन दूर करने में भी गाजर लाभप्रद औषधि है।

गाजर खाने के बाद तुरन्त पानी पीने से और गाजर के बीच का पीला हिस्सा खाने से खाँसी होती है। यदि अधिक मात्रा में गाजर खाने से पेट में पीड़ा होने लगे तो गुड़ खाना लाभकारी है। जिनके पेट में वायु (गैस) होने की शिकायत हो - उन्हें गाजर का सेवन करने से वायु अधिक होती है। ऐसे लोगों को गाजर का रस निकालकर अथवा गाजर को उबालकर उसका पानी पीना चाहिए।

वैज्ञानिक मतानुसार - गाजर में प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, फॉस्फोरस, गन्धक और स्टार्च होता है। गाजर की नारंगी रंग की किस्मों में - केरोटिन प्रचुर मात्रा में होता है। केरोटिन विटामिन 'ए' का पुरोगामी है। शरीर में जाने के बाद यकृत में इसका पाचन होने पर विटामिन 'ए' उत्पन्न होता है। विटामिन 'ए' शरीर के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है। गाजर में फॉस्फोरस है। अतः इसके सेवन से आँखों को बहुत लाभ होता है। इसमें आयरन (लौह) होने से इसके सेवन से रक्त बढ़ता है। इसमें सल्फर (गन्धक) का तत्व होने से रक्त की शुद्धि होती है एवं खुजली, दाद, फोड़े-फुन्सियाँ एवं चर्म रोगों में लाभ होता है।

डायबिटीज (मधुमेह) को छोड़कर गाजर प्रायः हर एक रोग में सेवन की जा सकती है। गाजर खाने की अपेक्षा इसका रस अधिक लाभदायक है। गाजर के रस में जीवनदायिनी शक्ति है। गाजर सेवन से मज्जातन्त्र (नर्वस सिस्टम) की रक्षा होती है।

(ग) मूली - मूली का लैटिन नाम रेफेनस सेटाइवस (Raphamus Sativus) है। इसका उपयोग प्राचीनकाल से ही होता रहा है। मूली भारत में सर्वत्र उत्पन्न होती है। मूली भी गाजर की तरह जमीन के भीतर कन्दरूप में पैदा होती है। मूली की मुख्य दो किस्में होती हैं- सफेद और छोटी सफेद लाल, गोल आदि अन्य किस्में भी होती हैं। मूली कच्ची खायी जाती है। मूली और मूली के पत्तों का साग भी बनता है। सुकोमल मूली का अचार व रायता भी बनता है। मूली के पत्तों में बेसन मिलाकर स्वादिष्ट तरकारी भी बनाते हैं। मूली के बीज से तेल निकलता है। इस तेल की गन्ध और स्वाद मूली जैसा ही होता है। मूली का तेल वजन में पानी से भारी और रंग रहित होता है।

भोजन के मध्य में कच्ची मूली खाने से रूचि बढ़ती है। मूली के गोलाकार टुकड़े कर थोड़ा-सा नमक छिड़ककर प्रातःकाल रोटी के साथ खाना लाभप्रद है। नमक के साथ मूली स्वादिष्ट लगती है। कोमल मूली का कचूमर भोजन के साथ खाने से जठराग्नि तेज होती है। मूली में ज्वरनाशक गुण हैं।

मूली तिल्ली के रोगियों के लिए लाभदायक है। शीतकाल में मूली दीपन, पाचन और पोषण करने वाली है। मूली के पत्ते अधिक मात्रा में खाने से पेशाब और दस्त साफ आते हैं। अर्श रोगियों को मूली के पत्ते या उसका रस सेवन करना लाभकारी है। मूली के कन्द की अपेक्षा उसके पत्ते के रस में अधिक गुण है। मूली के पत्ते पाचन में हल्के, रूचिकारक और गर्म हैं। कच्चे पत्ते पित्त को बढ़ाते हैं, परन्तु घी में इनकी तरकारी बनाकर खाने से ये गुणकारी हैं। मूली के पत्तों के रस सेवन की मात्रा-ढाई से 5 तोले तक की और बीज की मात्रा-4 से 8 ग्राम तक है।

'चरक' और 'सुश्रुत' ने अनेक रोगों पर मूली का उपयोग बताया है। अग्निमांद्य, अरूचि, पुरानी कब्ज, अर्श, अफरा, स्त्रियों को मासिक ऋतुस्राव में पीड़ा होना, जीर्ण प्रमेह, मूत्र सम्बन्धी व्याधियों पथरी, कफ-वात-ज्वर, श्वास, हिचकी और सूजन- इन समस्त रोगों में मूली लाभकारक है।

14.4.5 तना

जिन पौधों में तने का हिस्सा खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है उन्हें तना वर्ग में रखा गया है, जैसे - गन्ना आदि।

गन्ना - आहार के 6 रसों में मधुर रस का विशेष महत्व है। गुड़, चीनी, शर्करा आदि मधुर पदार्थ गन्ने के रस में से बनते हैं। गन्ने का मूल देश भारतवर्ष है। भारत में जनवरी-फरवरीए जून-जुलाई और अक्टूबर-नवम्बर वर्ष में 3 बार गन्ने बोआई होती है। पौष-माघ मास में गन्ने की कटाई करना उचित माना जाता है। गन्ने को ईख या साँठा भी कहते हैं।

गन्ने की अनेकों किस्में होती हैं – सफेद, लाल, काली, भूरी आदि। लाल गन्ने का रस बहुत मीठा होता है। अधिक मिठास वाला गन्ना अधिक गुणकारी माना जाता है। कच्चा, अधपका, पका और ज्यादा पका (जरठ) इस प्रकार किस्म भेद के कारण गन्ने के गुणों में अन्तर पड़ जाता है। गन्ने के मूल में अत्यन्त मधुर, मध्यभाग में मधुर और अग्रभाग में तथा गाँठों में खारा रस होता है। गर्मी की ऋतु में तो गन्ने का रस अमृत समान लाभकारी है।

दाँतों द्वारा चूसा हुआ गन्ना का रस पित्त तथा रक्तविकार अथवा रक्त-पित्त का नाश करने वालाए शर्करा के समान शक्तिप्रद, कफकारक और दाहनाशक है। यन्त्र से पेरकर निकाला हुआ गन्ने का रस-मूल, अग्रभाग, जीव-जन्तु और गाँठों के भी साथ-साथ पिस जाने से मैलयुक्त होता है। अधिक समय तक रखा रहने के कारण विकृत बनकर जलन भी उत्पन्न करता हैए मल रोकता है और पचने में भारी पड़ता है। यन्त्र से निकाला गया रस दाहकारक होता है।

गर्मियों में ताजा रस निकालकर उसमें नमक डालकर एवं नींबू निचोड़ कर ठण्डे पेय के रूप में पीने से यह शीतल (ठण्डा) और रोचक लगता है। गन्ने का रस सात्विक एवं पौष्टिक भी है।

गन्ना भोजन से पहले खाने से पित्त का नाश करता है और बाद में खाने से वायु तथा मन्दाग्नि करता है। गन्ने का कोई भी हिस्सा व्यर्थ नहीं होता। इसके मूल के टुकड़े चौपायों को खिलाए जाते हैं। सभी प्रकार का गन्ना रक्त-पित्त को मिटाने वालाए बलप्रदए मैथुनशक्ति बढ़ाने वाला, कफकारक, रस तथा पाक में मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रवर्धक और ठण्डा (शीतवीर्य) है। कच्चा गन्ना कफ, भेद और प्रमेह उत्पन्न करता है। मध्यम गन्ना वायुनाशकए मधुर, कुछ तीक्ष्ण और

पित्तनाशक है। जरठ गन्ना, रक्तपित्त और क्षत को मिटाने वाला एवं बल-वीर्यवर्धक तथा रक्तपित्तनाशक है। गन्ने का पकाया हुआ रस भारी, स्निग्ध, अत्यन्त तीक्ष्ण, कफ और वायुनाशक तथा गुल्फ और अफारा शान्त करने वाला एवं कुछ अंशों में पित्तकारक है।

गन्ना मधुर और ठण्डा तथा चिकना होता है। अतः मधुमेह, ज्वर, सर्दी, मन्दाग्नि, त्वचा रोग और कृमिरोगों में छोटे बच्चों के लिए हितकारी नहीं है। इसके अतिरिक्त जिन लोगों को जुकाम, श्वांस और खाँसी की स्थायी तकलीफ बनी रहती हो तथा जिनकी कफ-प्रकृति हो, उन्हें गन्ने का अत्यधिक सेवन नहीं करना चाहिए।

14.4.6 फल

मनुष्य जब तक बच्चा रहता है, उसका स्वाभाविक भोजन दूध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता, किन्तु बच्चा जब बड़ा हो जाता है और उसके दाँत निकल आते हैं तो निश्चय ही उसका स्वाभाविक भोजन परिवर्तित होकर दूध से भिन्न हो जाता है। उस वक्त तक उस बच्चे की माता के स्तनों का दूध भी सूख चुका होता है और बच्चा स्वाभावतः रंग-बिरंगे, सुगन्धित एवं सुस्वादु फल-फूल की ओर आकर्षित होता है, जो इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन फल है।

प्रोफेसर इहरिट के अनुसार - ष्फल मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है। मनुष्य किसी समय पहले फल ही खाता था। इसमें सन्देह की आवश्यकता नहीं और शरीर वैज्ञानिकों के अनुसार - यह सिद्ध किया जा चुका है कि आज मनुष्य का शरीर फलों द्वारा पोषण प्राप्त करने में समर्थ है। फलाहार, पूर्णतः स्वस्थए सुन्दर एवं सशक्त रखता है तथा रोग, शोक और कष्टों से भी मुक्त रखता है। यदि किसी को बचपन से ही फल सेवन कराए जाएँ तो वह न कभी बीमार पड़ेगा और न ही शीघ्र बूढ़ा होगा।

फलों के गुण के संदर्भ में चिकित्सकों ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के जीवन निर्वाह के लिए जिन-जिन खाद्य तत्वों की आवश्यकता होती है, वे सभी फलों में प्राकृतिक रूप से उचित मात्रा में विद्यमान होते हैं, जो शरीर को सच्चा स्वास्थ्य प्रदान करते हैं और शरीर के भीतर एकत्र हुए दूषित पदार्थों के विकारों को बाहर निकालते हैं। डॉ. जे. एच. केलाग के अनुसार - फलों के रस में खाद्योज और उत्तम स्वास्थ्य के लिए आवश्यक खनिज लवण-विशेषकर लोहा और चूना प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं।

फलों में जलए शर्करा, खाद्योज, खनिज लवण, अम्ल, क्षार, थोड़ा प्रत्यामिन वसा तथा कुछ अन्य तत्व भी होते हैं जिनके कारण उनमें स्वाद और सुगन्ध पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है।

फलों में 85 से 95 प्रतिशत जल होता है, जो शत-प्रतिशत विशुद्ध होता है। यही कारण है कि फलस्थित जल को शरीर के कोषाणु बहुत शीघ्र ग्रहण करके उनका उपयोग रक्त को तरल बनाने आदि में आसानी से कर लेते हैं। इसलिए जितना ही इन फलों का प्रयोग किया जाएगाए उतना ही उत्तम स्वास्थ्य होगा।

शर्करा फलों का मुख्य ठोस भाग है जो उनमें 5 से 15 प्रतिशत तक पायी जाती है। जिन फलों के छिलके पीतवर्ण के होते हैं, उनमें फल शर्करा अधिक मात्रा में विद्यमान होती है। ऐसे फल सुगन्धित भी बहुत होते हैं। लाल छिलकों वाले फलों में - पीत छिलका वाले फलों से शर्करा कुछ कम मात्रा में होती है और उनमें अच्छी किन्तु हल्की सुगन्ध भी होती है। साधारणतः भूरे रंग वाले फलों में भी अधिक मात्रा में शर्करा पाई जाती है। ऐसे रंग वाले फल उतने सुगन्धित नहीं होतेए जितने अन्य रंगों वाले फल सुगन्धित होते हैं।

फलशर्करा हृदय के लिए सर्वोत्तम खाद्य पदार्थ हैं और इसलिए यह हृदय को अधिक शक्तिवान बनाने की असाधारण क्षमता रखते हैं। यह शरीर के भीतर पहुँचकर शरीर द्वारा पूरी-की-पूरी मात्रा में अभिशोषित हो जाती है और तनिक भी मल नहीं छोड़तीए जिससे आँतों को व्यर्थ कष्ट नहीं उठाना पड़ता। फल शर्करा और मिल द्वारा निर्मित चीनी में जमीन आसमान का अन्तर होता है। फलों से जो चीनी हमें मिलती है, वह प्राकृतिक होती है और गुणकारक होती है जबकि मिल द्वारा निर्मित चीनी कृत्रिम होने के कारण उसके प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाते हैं।

फलों में कार्बोज भी होता है किन्तु वह सूर्यरश्मियों के प्रभाव से शर्करा के रूप में बदला हुआ होता है। अतः उत्तम रूप से पके फलों को खाने के बाद उसे शरीर को पचाने की जरूरत नहीं पड़ती, अपितु वह मुँह और पाकस्थली के रस की सहायता के बिना ही हजम हो जाता है। इसीलिए फलों को पका हुआ भोजन कहा जाता है और इसी से उन रोगियों को जिनकी पाचनशक्ति क्षीण हुई रहती है, फल व फल रस का भोजन अनुकूल पड़ता है और लाभकारी सिद्ध होता हैं

फलों में लगभग समस्त प्रकार के खाद्योजों की बहुतायत होती है। इसीलिए एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक को कहना पड़ा कि - ष्फल प्रातःकाल सोना, दोपहर को सोना और रात में भी सोना (स्वर्ण) ही रहता है और सदैव ही ईश्वर का वरदान स्वरूप सिद्ध होता है।

भोजनोपरान्त फल सेवन करने से तृप्ति, ताजगी एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है। मुँह और दाँत साफ और शुद्ध हो जाते हैं तथा उनसे एक प्रकार की सुमधुर सुगन्ध निकलती है। भोजन आसानी से पच जाता है तथा शरीर को विषों एवं विजातीय द्रव्यों से निजात मिल जाती है। यह सब केवल फलों में स्थित विविध प्रकार के खाद्योजों के कारण से ही सम्भव होता है। 'सी' खाद्योज का प्रधान आधार ताजे फल ही हैं। 'बी' खाद्योज मुख्यतया फलों के बीजों में होता है।

फलों में पाए जाने वाले खनिज लवण शरीर धारण करने के लिए बड़े आवश्यक होते हैं। इनसे फलों के पाचक गुणों में और भी वृद्धि होती है। फलों में प्रत्यामिन और खनिज लवण - दोनों मिलकर लगभग 1 प्रतिशत होते हैं। इन प्राकृतिक लवणों की उपस्थिति के कारण ही फलों में स्वाद आता है।

फलों का प्रधान गुण उनका क्षारधर्मी होना है। फलों का क्षार शरीर के रोगों को जो अम्ल विष के परिणाम होते हैं, दूर भगाता है। फलाहार से हमारे शरीर में क्षार का संचय बढ़ जाता है जिनसे रोग होने ही नहीं पाते। यदि कोई रोग पहले से ही मौजूद हुआ तो वह भी शरीर में क्षार की मात्रा में जितनी वृद्धि होती है, फुफ्फुस, गुर्दों और जिगर की मेहनत उतनी ही कम हो जाती है और इन महत्वपूर्ण अंगों को विभिन्न विषों के सम्पर्क में उतना ही कम आना पड़ता है। इससे ये यन्त्र काफी शक्तिशाली बनते हैं। यही कारण है जो दमा पुराना ब्रोंकाइटिस (श्वास प्रणालियों की शोथऋ, प्लूरिसी, पुराना जुकाम तथा यकृत और गुर्दों के अन्यान्य रोगों में फलाहार के सेवन से असाधारण लाभ होता है।

फलों में से कुछ प्रमुख रूप से सेवन किये जाने वाले पौष्टिक फलों के नाम इस प्रकार से हैं – आम, अमरस, खरबूजा, सन्तरे, नारंगी, सेब, अँगूर, गाय के थन जैसे दाख, शहतूत - काले शहतूत, सफेद शहतूत, शरबत शहतूत, नाशपाती, शरीफा या सीताफल, सिंघाड़े- पके सिंघाड़े, कच्चे सिंघाड़े, खिरनी, बेल फल, पका बेल, अनार, खट्टा अनार, कागजी नींबू, बिजौरा नींबू, जम्भीरी नींबू, मीठा नींबू, खजूर, केला, कच्चा केला, नारियल - कच्चा एवं सूखा आदि।

14.4.7 दूध

दूध ही एक ऐसा भोजन है, जिसे आहार शास्त्रियों ने पूर्ण भोजन की संज्ञा दी है। दूध में – प्रोटीन, कार्बोज, दुग्ध शर्करा, खनिज लवण, वसा एवं खाद्योज आदि मनुष्य शरीर पोषणोपयोगी समस्त खाद्य सत्व आवश्यकतानुसार विद्यमान होने के कारण उससे शरीर का निर्माण, संरक्षण और पोषण तीनों ही होते हैं। दूध, मनुष्य का एक सर्वांगपूर्ण एवं पौष्टिक भोजन है जिस पर एक नवजात शिशु सालों साल रहकर विकसित होता है, पनपता और बढ़ता है तथा पुष्ट होता है।

दूध एक ऐसा वसा प्रधान खाद्य है जो शरीर को ताप और शक्ति देता है। दूध के वसा अणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि आसानी से और शीघ्रताशीघ्र शरीर की रक्त प्रदायिनी प्रणालियों में घुसकर उन्हें पोषण देने में सफलीभूत हो जाते हैं। वसा-अणुओं का यह नैसर्गिक गुण, दूध को गरम करने से नष्ट हो जाता है। दूध को गरम करते ही यह अणु पिघलकर और सिमटकर दूध की सतह पर खिंच आते हैं और फिर सिवा स्वाद के और किसी अन्य काम के नहीं रह जाते। इसी वजह से बच्चे को दूध पीने के लिए माँ के स्तनों में दूध की ऐसी व्यवस्था है कि वह बिना आग पर रखे ही बच्चे के मुँह में सीधा चला जाए और वहाँ से पेट में पहुँचकर पूरा-पूरा लाभ पहुँच जाए। दूध में पायी जाने वाली शक्करए लेक्टोज, साधारण चीनी से कुछ कम होती है। यही कारण है कि अधिक दिनों तक दूध पर रहने पर भी दूध से मन नहीं ऊबता। दूध में सोडियम, लोहा, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नेशियम, सल्फर, फॉस्फोरस, क्लोरीन और आयोडीन आदि कई प्रकार के उपयोगी खनिज लवणों की अधिकता होती है जो शरीर रक्षा के लिए बड़े उपयोगी एवं आवश्यक होते हैं। इन्हीं से शरीर में मज्जा की उत्पत्ति होती है, मांसपेशियों का निर्माण होता है, शरीर में बल आता है, मस्तिष्क तथा रक्तवाहिनी नलिकाओं का गठन होता है और शरीर की अस्थियाँ पुष्ट होती हैं। दूध में एक साथ ही 5.5 खाद्योग 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' तथा 'ई' विद्यमान होते हैं। इसके अतिरिक्त दूध में हार्मोन और एंजाइम आदि तत्व तथा डायस्टोस और गेलेक्टोस नाम के दो खमीर भी पाए जाते हैं जिनसे दूध की उपादेयता और अधिक बढ़ जाती है, और वह सचमुच ही इस पृथ्वी का 'अमृत' बन जाता है।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से दूध स्निग्ध, मधुर, स्फूर्तिदायक, और बलकारक आदि गुणों से युक्त होता है। इसके सेवन से शरीर की जीवनीशक्ति सदैव जाग्रत और सशक्त रहती है। दूध में, शरीर में शीघ्र बुढ़ापा न आने देने का भी गुण होता है।

दूध एक पूर्ण भोजन है, यह सही है किन्तु यह शिशुओं के लिए पूर्ण भोजन हैए जवानों और बूढ़ों के लिए नहीं।

दूध जितना शिशुओं के लिए अनुकूल पड़ता है उतना वह न तो बड़ो को मुआफिक आता है और न उससे लाभ ही पहुँचता है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि बच्चे दूध को माता के स्तन से मुँह लगाकर उसे बिना हवा लगे प्राकृतिक रूप से ग्रहण करते हैं किन्तु बड़े तो उसको इस तरह या उस रूप में ग्रहण नहीं कर सकते। दूध अपना अधिकांश गुण वायु के स्पर्श सेए पृथ्वी के स्पर्श से, बाह्य अग्नि के स्पर्श सेए बाह्य आकाश के स्पर्श सेए अपनी माता का न होने से तथा उसका तापमान पीने वाले तथा पिलाने वाली (दोनों) के शरीर के तापमान के बराबर न होने से खो देता है। यदि बड़े भी दूध पीकर अधिक-से-अधिक लाभ उठाना चाहते हैं तो उन्हें दूध को गरम करके नहीं पीना चाहिएए तभी वह अमृत की भाँति गुणकारी होगा।

- दूध को दुहने के बाद पृथ्वी पर नहीं रखना चाहिए।
- दूध को घूँट-घूँट कर मुँह की लार में मिलाकर धीरे-धीरे पीना चाहिए।
- दूध में चीनी आदि मिलाकर नहीं पीना चाहिए और

- दूध जितना पच सकेए उतना ही पीना चाहिए।

14.4.8 शहद

संसार के सभी वैज्ञानिकों एवं आहार शास्त्रियों का मत है कि शुद्ध शहद मनुष्य के लिए एक उपयोगी और उत्कृष्ट खाद्यपदार्थ है। यह शरीर में जाते ही पच जाता है और अधिक-से-अधिक शक्ति उत्पन्न करता है। शहद हल्का रेचक भी होता है जिससे पेट सदैव साफ रहता है। दुर्बलता को दूर करने हेतु शहद के समान संसार में अन्य कोई भी वस्तु गुणकारी नहीं। एक छोटी चाय की चम्मच भर शहद के सेवन से मनुष्य को 100 कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है जो लगभग 250 ग्राम ताजे फलों से प्राप्त शक्ति के बराबर होती है। शहद मोटापा आदि कितने रोगों में लाभप्रद औषधि भी है। हृदय को शक्ति देने वाले खाद्य पदार्थ के रूप में शहद का प्रयोग महान आयुर्वेदज्ञ महर्षि ष्चरक६ के समय से चला आ रहा है।

14.4.9 चीनी और शक्कर

चीनी और गुड़ का छोटी आँत में पाचन होने के बाद रक्त में शोषण होता है। रक्त में घुल जाने के बाद चीनी का 'ग्लाइकोजेन' में रूपान्तर होकर भविष्य के उपयोग के लिए यकृत में संग्रह होता है। इस अभिशोषण की मर्यादा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है। कार्बोहाइड्रेट पदार्थ शरीर की माँसपेशियों को शक्ति प्रदान करते हैं। इसमें चीनी और गुड़ सरलता एवं शीघ्रता से रक्त में शोषित हो जाते हैं। अतः यह काम बहुत अच्छी तरह निष्पन्न करती है। हृदय की मांसपेशियों की दुर्बलता में तात्कालिक शक्तिपूर्ति के लिए मिठास का अधिक महत्व है। कलेजे और पित्ताशय के रोगों में भी चर्बी अपथ्य होने के कारण आहार में कैलोरी बढ़ाने के लिए कार्बोहाइड्रेट पदार्थ देने की आवश्यकता होती है। विकासशील बच्चों में शक्ति का बहुत व्यय होता है। उसकी पूर्ति के लिए वे अज्ञात रूप से मीठी वस्तुओं के प्रति उन्मुख होते हैं। ऐसी दशा में उनको चीनी वाले पदार्थ देने के स्थान पर उनको शहदए सूखे फल और गुड़ देना चाहिए। उनसे मिठास के साथ बच्चे को चर्बीए गर्मीए और शक्ति उचित मात्रा में उपलब्ध हो जाएगी।

चीनी, मधुर, वीर्यवर्धक, नेत्र के लिए हितकारी, पुष्टिदायक, शीतल, वायु तथा पित्तनाशक, स्निग्ध, बलप्रद और वमन को रोकने वाली है। जो चीनी बालू के समान और ज्यादा सफेद होती है उसे ''सिता'' कहते हैं। सिता मधुर, रूचिकारक तथा वायु, पित्त, रक्तविकार जल, मूर्च्छा, कै और ज्वर को दूर करने वाली, अत्यन्त शीतल एवं वीर्यवर्धक है। शक्कर (सफेद) मधुर, शीतल, रक्त तथा पित्त के विकारों को दूर करने वाली और हल्की है। खड़ी शर्करा दस्त उतारने वाली, हल्की, वायु तथा पित्त को दूर करने वाली, शीतल एवं मूर्च्छा, क्षतक्षय, रक्तपित्त, वायु, पित्त, शोष और दाह को नष्ट करने वाली है। 'चरक', 'सुश्रुत' और 'पं. भावमिश्र' आदि आयुर्वेदाचार्यों ने शक्कर को मधुर, पुष्टिकारक, बलप्रद, वीर्यवर्धक, तृषा को शान्त करने वाली और वमन को मिटाने वाली कहा है।

14.4.10 अंकुरित अन्न

अन्न को पानी में भिंगोकर 1 दिन रखने के बाद पानी निकालने से उसमें अंकुर पड़ जाते हैं। इस प्रकार अंकुर निकले हुए अन्न को अंकुरित अन्न कहा जाता है। यह अंकुरित अन्न पोषण की दृष्टि काफी उपयोगी होता है। इसमें पौष्टिकता, प्राण शक्ति की मात्र सूखे अन्न की तुलना में अधिक होती है। अंकुरित अन्न के लिए कई अन्नों को मिलाकर भी अंकुरण के लिए प्रयोग किया जा सकता है। यह कम समय में तैयार होने वाला उपयोगी पोषक तत्व शरीर को प्रदान करता है एवं शरीर को हष्ट-पुष्ट रखता है। लेकिन इसके लिए यह भी जरूरी है कि इसे पचाने हेतु पर्याप्त श्रम किया जाए, क्योंकि

पके हुए अन्न की अपेक्षा कुछ गरिष्ठ होता है। अंकुरित अन्न के लिए प्रयोग किये जाने वाले खाद्य पदार्थ इस प्रकार हैं – मूँग, चना, मेथी, मूँगफली, अजवाइन, सोयाबीन, गेहूँ आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न -निम्न प्रश्नों के उत्तर एक - एक पंक्ति में दीजिये

(क) खाद्य पदार्थो का संबंध पंचमहाभूतों में से कौन से तत्व से है ?

(ख) भक्ति रहस्य के रचियता कौन हैं ?

(ग) किन पौधो कि जडे खाद्य पदार्था के रुप में प्रयोग में लाई जाती हैं उन्हें किस वर्ग में रखा जाता है ?

(घ) पूर्ण भोजन की संज्ञा किसे दी गई है ?

(ड़) मूली का लैटिन नाम क्या हैं ?

14.5 सारांश

उपयुक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि प्राणी मात्र के जीवन में खाद्य पदार्थ का अधिक महत्व है। खाद्य पदार्थ यहॉ एक ओर हमारी भूख को शान्त करते है। स्थूल शरीर को शक्तिशाली बनाते है।वही दूसरी ओर मानसिक व आध्यात्मिक दृष्टि से भी खाद्य पदार्थो का अपना विषेष महत्व है। अतः अच्छे स्वास्थ तथा दीर्घायु की प्राप्ति के लिए हमें शरीर को पोषण एवं ऊर्जा प्रदान करने वाला हल्का, सुपाच्य, सात्विक या हितकर भोजन ग्रहण करना चाहिए। अन्न, दाल, कन्द, फल, दूध, शहर अंकुरित अन्न इत्यादि को हितकर भोजन की श्रेणी में रखा गया है जिसमें हमें पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा मिलती है।

14.6 शब्दावली

खाद्य - खाने योग्य

अनुत्तेजक - उत्तेजजित न करने वाला

वीर्यवर्धक - शक्तिवर्धक

पाण्डु रोग - पीलिया

मलरोधक - मल को रोकने वाला

क्षय रोग - टी.वी.

गरिष्ठ - जिसके पाचन में अपेक्षाकृत अधिक समय लगे।

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) खाद्य पदार्थ का सम्बन्ध पृथ्वी तत्व से है।

(ख) स्वामी विवेकानन्द

(ग) कन्दमूल वर्ग

(घ) दूध

(ड़) रेफेनस सोटाइपस

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चौहान गणेश नारायण (2001) भोजन के द्वारा चिकित्सा, पोपुलर बुक डिपो जयपुर।

2. आत्मानन्द अक्षय (2003) आहार चिकित्सा, सत् साहित्य प्रकाशन दिल्ली।

3. गुप्ता राजकुमारी (2010) आहार चिकित्सा, पोपुलर बुक डिपो जयपुर।

4. शर्मा आचार्य श्रीराम (2001) जीवेम शरद: शतम् (2001) अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा।

5. सिंह रामहर्ष (2001) स्वस्थवृत्त विज्ञान चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली ।

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. हितकर भोजन से आप क्या समझते हैंघ प्रमुख हितकर भोजनों की चर्चा कीजिए।
2. खाद्य पदार्था की आवश्यकता का वर्णन कीजिए ?

इकाई 15 - योग चिकित्सा की अवधारणा क्षेत्र एवं सिद्धान्त

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 योग चिकित्सा की अवधारणा

15.4 यौगिक जीवन शैली की पृष्ठभूमि-यम नियम

15.5 योग चिकित्सा का क्षेत्र

15.6 योग चिकित्सा का सिद्धान्त

15.7 अध्याय सारांश

15.8 शब्दावली

15.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थं

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पाठको आप योग क्या हैं? इसकी विभिन्न परम्पराये कौन सी है? इत्यादि तथ्यो से भली-भाति परिचित हैं पूर्व में आपने जो अध्ययन किया है उससे आप स्पष्टतः इस बात को जान चुके हैं कि अपने मूल रूप मे योग का प्रतिपादन साधानात्मक दृष्टिकोण से किया गया है या तथा योग साधना स्वस्थ व्यक्तियों के लिये भी किन्तु वर्तमान में इसका एक नया रूप उभरकर सामने आ रहा है और वह हैं योग चिकित्सा।

आज जगह - जगह योग चिकित्सा केन्द्र खुल गये हैं आप सभी के मन में एक प्रष्न यह उठ रह होगा कि ये आखिर ये योग चिकित्सा क्या है? यह ऐलोपेथी से किस प्रकार भिन्न है किस प्रकार इस योग के द्धारा विभिन्न रोगों का इलाज किया जाता है योग चिकित्सा किस सिदान्त पर कार्य करती हैं? जिज्ञासु विधार्थियो प्रस्तुत ईकाई में इसी योग चिकित्सा का विस्तृत विवेचन किया गया है आशा है कि इस ईकाई को पडने के बाद आपकी जिज्ञासा का समाधान होगा।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

- योग चिकित्सा के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- योग चिकित्सा के विभिन्न आयामो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- योग चिकित्सा के विभिन्न सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- योग चिकित्सा की व्यावहारिक जीवन मे उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

15.3 योग चिकित्सा की अवधारणा

योग चिकित्सा से प्रायः सभी सुपरिचित हो चले हैं। जन संचार माध्यमों में आज इसकी बढ़-चढ़कर चर्चा होती है। अखबार का पन्ना पलटें या किसी पत्रिका का पृष्ठ पलटें, योग चिकित्सा सम्बन्धी कोई न कोई बात पढ़ने को मिल जाती है। इतना ही नहीं, अपने घर का टी.वी. भी रिमोट के बटन दबाते ही योग की कहानी कहने लगता है। इसके अलग-अलग चैनलों में आसन-प्राणायाम की बहुत विधियाँ बरबस देखने को मिल जाती हैं। अब बात केवल देखने और पढ़ने तक सीमित नहीं रही है। पार्कों में, घर के कोनों में, खुली छत पर यहाँ तक कि चलती ट्रेन की हिचकोले खाती सीटों पर बैठे हुए लोग योग की क्रियाओं को करने से चूकते नहीं हैं। इसे जमाने का चलन कहें या फैशन, आम जन का भारी उत्साह इस ओर बढ़ा है।

प्रिय पाठकों योग शिविरों में ही नहीं, गली-चौबारों में लोग इसके प्रभावों की चर्चा करते हैं। कोई अपने मोटापा कम होने की कहानी कहता है तो कोई बताता है कि उसे जोड़ों के दर्द में कितना आराम मिला। सबके अनुभव अलग-अलग हैं, लेकिन ये ऐसे हैं, जिनसे पता चलता है कि सामान्य जन की योग चिकित्सा में आस्था बढ़ी है। हालाँकि कुछ विपरीत बातें भी सुनने को मिल जाती हैं। कई बार प्राणायाम की सही तकनीक न प्रयोग किए जाने के कारण कई व्याधियाँ भी बढ़ी हैं। आसन के प्रयोग सही न होने के कारण पेशियों में खिंचाव जैसी तकलीफें भी सुनने को मिली हैं। यह सब सही विधि का उपयोग न करने के कारण है, इसमें योग चिकित्सा का कोई दोष नहीं है। दोष उनका है, जिन्होंने इसका सही मार्गदर्शन नहीं दिया और सही प्रयोग करने में असफल रहे।

योग चिकित्सा के जन प्रसार के बावजूद इसमें कहीं कुछ कमी खटकती है। योग चिकित्सा के केन्द्र एवं संस्थान विशेषज्ञों, गुरुओं एवं आचार्यों की भीड़ जुटी, पर अभी तक योग चिकित्सा का वैज्ञानिक मॉडल नहीं निर्धारित किया जा सका। योग चिकित्सा के सही मॉडल के विकास के लिए हम सभी को अनिवार्य वैज्ञानिक सिद्धान्त, रचना एवं प्रयोग विधियों से गुजरना होगा। योग चिकित्सा मॉडल में पहला सच सम्प्रत्यय व सिद्धान्त का है। इसमें संपूर्ण मानवीय अस्तित्व की संरचना का अध्ययन करना जरूरी है। शरीर की वैज्ञानिक एवं यौगिक संरचना, चित्त की संरचना आदि। इसकी क्रिया विधि में प्राण व उसके प्रभाव का विषद ज्ञान करना जरूरी है क्योंकि योग विज्ञान यह मानता है कि प्राण में होने वाली न्यूनताओं एवं विकृतियों के कारण ही संक्रमण एवं विकार जन्म लेते हैं।

निदान पद्धति में भी आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों एवं योग के अंतर्ज्ञान का महत्त्व है, क्योंकि योग विज्ञान यह मानता है कि रोग दो तरह के होते हैं- परिस्थितिजन्य एवं प्रारब्धाजन्य। हालाँकि दोनों ही प्रकार के रोगों में प्राण-प्रवाह अवरुद्ध या बाधित होता है परन्तु इनकी चिकित्सा की विधि में थोड़ा भेद जरूर है। यौगिक चिकित्सकीय विधियों में मुख्यतः यौगिक जीवन-दृष्टि, यौगिक जीवनशैली एवं यौगिक तकनीकों का महत्त्व है क्योंकि ये सभी अपने - अपने ढंग से प्राण को परिशोधित करती हैं।

योग विज्ञान यह प्रमाणित करता है कि हमारे व्यक्तित्व के सभी अवयव एवं आयाम प्राणसूत्र से जुड़े हैं। यह प्राण अपने भिन्न-भिन्न रूपों में हामरे शरीर में प्रवाहित है। इस प्राण को ही आधुनिक विज्ञानी जीवनशक्ति, प्रतिरोधक क्षमता, जैव विद्युत, वैद्युत चुंबकीय ऊर्जा जैसे विविध नामों से पुकारते हैं। वास्तव में यह और कुछ नहीं प्राण के ही विविध रूप हैं। जिन्होंने इस प्राण को थोड़े बहुत अंशों में पहचाना, उन्होंने अपनी पहचान के अनुरूप प्राणिक हीलिंग एवं रेकी जैसी विधियाँ भी विकसित कीं, परन्तु योग में प्राण की पहचान अपेक्षाकृत समग्र रूप में है और यह मान्यता है कि यदि प्राणसूत्र टूट जाए तो हमारा स्थूल एवं सूक्ष्म व्यक्तित्व अलग हो जाएगा। इसी को सांसारिक जीवन में मृत्यु कहा जाता है।

जीवन स्वस्थ एवं दीर्घ हो, इसके लिए इस प्राण संजीवनी का संरक्षण एवं संवर्द्धन जरूरी है। योग का प्रारंभिक जोर भी स्वास्थ्य-संरक्षण पर है। योग विशेषज्ञों का मानना यही है कि बीमारियाँ दरअसल यौगिक जीवनशैली की अवहेलना के कारण होती हैं। यदि यौगिक जीवन शैली नियमित रूप से अपनाई जाती रहे तो परिस्थितिजन्य बीमारियों से पूरी तरह छुटकारा पाया जा सकना संभव है। रही बात प्रारब्धजन्य बीमारियों की तो कारगर यौगिक तकनीकों से यह मुश्किल भी हल हो सकती है। इस तरह से योग प्रत्येक को पूर्णतः नीरोग बना सकने में समर्थ है।

योग चिकित्सा के प्रारूप में पहला स्थान यौगिक जीवन दृष्टि का है। आज प्रायः सभी देशों के विज्ञानवेत्ता इस सच से एकमत हो चुके हैं कि अधिकांशतः शारीरिक बीमारियाँ मानसिक कारणों से होती हैं और मानसिक गतिरोध प्रधानतः जीवन-दृष्टि के अभाव में उठ खड़े होते हैं। सही और संतुलित जीवन - दृष्टि हो और हमारी आस्थाएँ-मान्यताएँ, उद्देश्य एवं लक्ष्य सही हों तो न केवल जीवन की सामर्थ्य का सही नियोजन संभव है, बल्कि मानसिक समस्याओं के कारण जो तनाव, चिन्ता एवं द्वन्द्व पनपते हैं, उनका भी कारगर उपाय है यह। इस वजह से जो प्राण क्षय होता है, उससे भी यौगिक जीवन-दृष्टि से बचा जा सकता है।

यौगिक जीवन शैली की भी यही रीति-नीति है। यौगिक जीवन शैली बाहरी एवं आंतरिक जीवन में सामंजस्य बनाने का कारगर उपाय है। सामंजस्य सही हो तो जीवन में कुशलता, सफलता एवं क्षमता स्वयं ही विकसित हो जाती है। प्राण-प्रवाह भी स्वयं ही अपने संपूर्ण परिपथ में प्रवाहित होता रहता है। यौगिक जीवनशैली को यदि नीरोग जीवन का कारगर सूत्र कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें व्यतिक्रम ही रोगों को आमंत्रण देता है, आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्रा, शोधन क्रियाओं से प्राण में उत्पन्न अवरोध बड़ी आसानी से दूर होते हैं और जीवन नीरोग होता है।

15.4 यौगिक जीवन शैली की पृष्ठभूमि यम नियम

महर्षि पतंजलि के बताये हुए राजयोग के आठ अंग हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इन आठ में प्रारम्भिक दो अंगों का महत्व सबसे अधिक है। इसीलिए उन्हें सबसे प्रथम स्थान दिया गया है। यम

और नियम का पालन करने का अर्थ मनुष्यत्व का सर्वतोमुखी विकास है। योग का आरम्भ मनुष्यत्व की पूर्णता के साथ आरम्भ होता है।

सही यौगिक जीवन शैली को जानने एवं समझने के महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में से प्रथम एवं द्वितीय अंग यम-नियम को गहराई से समझना जरूरी है क्योंकि इनके परिपूर्णतः पालन से यौगिक जीवन शैली की पृष्ठभूमि तैयार होती है।

यमों की संख्या पांच है और इनकी विवेचना इस प्रकार है -

1. अहिंसा - साधारण रीति से अहिंसा का अर्थ है-न मारना, न सताना, दुःख न देना। ऐसे कार्य जिनके द्वारा किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुँचता हो, हिंसा कहलाते हैं। महात्मा गांधी के अनुसार-कुविचार मात्र हिंसा है, उतावलापन हिंसा है, द्वेश, किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जिसकी दुनियां को जरूरत है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है। इसके अतिरिक्त किसी को मारना, कटु वचन बोलना, दिल दुखाना, कष्ट देना तो हिंसा है ही। इन सबसे बचना अहिंसा पालन कहा जाएगा।

लेकिन योगिराज कृष्ण द्वारा अर्जुन को दी गई व्यावहारिक शिक्षानुसार-जब अर्जुन यह देखता है कि युद्ध में इतनी अपार सेना की हत्या होगी, इतने मनुष्य मारे जायेंगे, यह हिंसा है, इससे मुझे भारी पाप लगेगा और वह धनुष-बाण रखकर रथ के पिछले भाग पर जा बैठता है तो कृष्ण भगवान उसे भली प्रकार समझाते हैं कि कष्ट न देने मात्रा को अहिंसा नहीं कहते, दुष्टों को दुराचारियों, अन्यायी, अत्याचारियों को, पापी और पापियों को मार डालना भी अहिंसा है। जिस हिंसा से अहिंसा का जन्म होता है, जिस लड़ाई से शांति की स्थापना होती है, जिस पाप से पुण्य का उदय होता है, उसमें कुछ भी अनुचित या अधर्म नहीं है।

अहिंसा का तात्पर्य है-द्वेश रहित होना। निजी राग-द्वेश से प्रेरित होकर संसार के हित-अनहित का विचार किए बिना जो कार्य किये जाते हैं, वे हिंसा पूर्ण है। यदि लोककल्याण के लिए धर्म की वृद्धि के लिए किसी को मारना पड़े या हिंसा करनी पड़े तो उसमें दोष नहीं है।

एक आप्त वचन है कि विवेकपूर्वक की हुई हिंसा, हिंसा नहीं है। किन्तु निःस्वार्थ भाव से लोककल्याण के लिए तथा उसी प्राणी के उपकार के लिए यदि उसे कष्ट दिया जाए तो वह हिंसा नहीं वरन् अहिंसा ही होगी।

पातंजलि योग दर्शन में कहा है कि 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ बैर त्यागः अर्थात् अहिंसा की साधना से उस योगी के निकट-मन में से बैर भाव निकल जाता है। बैर भाव, द्वेष, प्रतिशोध की दृष्टि से किसी के चित्त को दुखाना या शरीर को कष्ट देना सर्वथा अनुचित है।

अहिंसक को बैर भाव छोड़ना होता है, क्रोध पर काबू करना होता है, निजी हानि-लाभ की अपेक्षा कुछ ऊँचा उठना पड़ता है, उदार, निष्पक्ष और न्यायमूर्ति बनना पड़ता है, तब उस दृष्टिकोण से जो भी निर्णय किया जाए वह अहिंसा ही होगी। परमार्थ के लिए की हुई हिंसा को किसी भी प्रकार अहिंसा से कम नहीं ठहराया जा सकता।

2. सत्य - जिस वचन से दूसरों की भलाई होती हो, सन्मार्ग के लिए प्रोत्साहन मिलता हो, वह सत्य है। किसी व्यक्ति के दोषों को खोल-खोलकर उससे कहा जाय तो वह अपने को निराश, पराजित और पतित अनुभव करता हुआ वैसा ही बन जाता है। ऐसा सत्य असत्य से बढ़कर निन्दनीय है। भाषण सम्बन्धी सत्य की परिभाषा यह है कि जिससे लोक हित हो वह सत्य और जिससे अहित हो वह असत्य है। पवित्र उद्देश्य के साथ निःस्वार्थ भाव से परोपकार के लिए बोला हुआ असत्य भी सत्य है और बुरी नियत से, स्वार्थ के वशीभूत होकर परपीड़ा के लिए बोला गया सत्य भी असत्य है।

वास्तविक और व्यापक सत्य ऊँची वस्तु है। ईश्वर, जीव, प्रकृति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करके अपने को भ्रम बन्धनों से बचाते हुए परमपद प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना मनुष्य जीवन का मुख्य सत्य है। उसी सत्य को प्राप्त करने के लिए हमारा निरन्तर प्रयास होना चाहिए। सत्य को ढूँढ़ना, वास्तविकता का पता लगाना और जो-जो बात सच्ची प्रतीत हो, उस पर प्राण देकर भी दृढ़ रहना, यह सत्य परायणता है। 'यम' की दूसरी सीढ़ी सत्य बोलना नहीं, सत्य परायण होना है।

3. अस्तेय – 'चोरी न करना' अस्तेय का यही संक्षिप्त अर्थ है। मालिक को अपनी हानि का पता न चले और गुप्त या अप्रत्यक्ष रूप से कोई चुपके-चुपके कुछ करता रहे तो भले ही वह प्रकट न होने पावे, पर होगी वह चोरी ही। कर्त्तव्य की चोरी एक बड़ी चोरी है। मजदूरी तय करके जितना समय या जैसा काम करने का ठहराव किया गया है। उसमें कमी करना, आलस्य करना, जी चुराना, बेगार भुगतना, आजकल मामूली बात हो गयी है पर यह ठीक वैसी ही चोरी है। न करने योग्य कार्य के लिए, अनात्म वस्तु के लिए मन ही मन ललचाना चोरी का ही कार्य है, अपना नियत कर्त्तव्य करने के बदले में पुरस्कार माँगना, न करने योग्य कार्य को करने के लिए भेंट लेना, यह दोनों प्रकार की रिश्वतें चोरी ही है। अस्तेय का वास्तविक तात्पर्य है-'अपना वास्तविक हक खाना'। धर्मपूर्वक जो वस्तु जितनी मात्रा में अपने को मिलनी चाहिए उसे उतनी ही मात्रा में लाना। जो आपको मिल रहा है, उसके बारे में विचार कीजिए कि क्या वास्तव में इस वस्तु पर मेरा धर्मपूर्वक हक है किसी दूसरे का भाग तो नहीं खा रहा हूँ जितनी मुझे मिलना चाहिए उससे अधिक तो नहीं ले रहा हूँ? अपने कर्त्तव्य में कमी तो नहीं कर रहा हूँ? जिनको देना चाहिए उनको दिये बिना तो नहीं ले रहा हूँ इन पाँच प्रश्नों की कसौटी पर यदि अपनी प्राप्त वस्तु को कस लिया जाये तो मालूम हो सकता है कि इसमें चोरी तो नहीं है, या चोरी का कितना अंश है।

स्वयं चोरी से बचना तो आवश्यक है ही, साथ ही दूसरों को भी बचना चाहिए, कम से कामचोरी में सहयोग करना तो बन्द कर ही देना चाहिए। रिश्वत देकर यदि कोई काम बनता हो, लाभ होता हो और न देने से हानि हो तो उस हानि को ही सहन करना चाहिए क्योंकि पशु हत्या में जैसे काटने वाले, बेचने वाले, खाने वाले, पकाने वाले सबको पाप लगता है, वैसे ही चोरी के काम में किसी प्रकार मदद करने या चोर की हिम्मत बढ़ने देने से अपने को भी पाप का भागी होना पड़ता है। यदि अपना या किसी दूसरे का हक कोई दुष्ट दुरात्मा बलात्कारपूर्वक अपहरण करता हो तो उसके विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए ताकि विश्व परिवार में से चोरी और अनीति की थोड़ी बहुत मात्रा तो कम हो। स्वयं चोरी न करना और न दूसरों को करने देना यह एक ही अस्तेय धर्म के दो अंग हैं। साइकिल चलाने वाला जैसे दोनों पैरों को समान घुमाता है, वैसे योगमार्ग साधक को दोनों ही पक्षों में ध्यान देना चाहिए।

4. ब्रह्मचर्य- बह्म का अर्थ है-परमात्मा में आचरण करना। जीवन लक्ष्य में तन्मय हो जाना, सत्य की खोज में सब ओर से चित्त हटाकर जुट पड़ना ब्रह्म का आचरण है। इनके साधनों में 'वीर्यपात न करना' भी एक है।

महात्मा गांधी जी के अनुसार-ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की, सत्य की शोध में चर्या अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार। इस मूल अर्थ से सर्वेन्द्रिय संयम का विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेन्द्रिय निरोध को ही ब्रह्मचर्य का पालन माना गया है। लेकिन यह अधूरी और खोटी व्याख्या है। विषय मात्रा का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। कान से विकार की बातें सुनना, आँख से विकार उत्पन्न करने वाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु चखना, हाथ से विकारों को भड़काने वाली चीज को छूना और साथ ही जननेन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करना-यह तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने का प्रयत्न करने के समान हुआ। इसलिए जो जननेन्द्रिय को रोकने का निश्चय करें, उसे पहले से ही प्रत्येक इन्द्रिय को उस इन्द्रिय के विकारों से रोकने का निश्चय कर ही लिया होना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और कर्म से होना चाहिए। गीता के अनुसार-मन को विकारपूर्ण रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकर है। यहां एक भेद है कि मन को विकार वश होने देना एक बात है और मन का अपे आपने अनिच्छा से, बलात् विकार को प्राप्त होना या होते रहना दूसरी बात है। अक्सर यह होता है। कि शरीर तो काबू में रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिए शरीर को तुरन्त ही वश में करके मन को वश में करने की रोज कोशिश करने से हम अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। वीर्य का उपयोग तो शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढ़ाने में है। विषय-भोग में उसका उपयोग करना उसका अति दुरुपयोग है, इसके कारण वह कई रोगों का मूल बन जाता है। जीवनोद्देश्य की पूर्ति में सत्कर्मों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने के प्रयत्न में, ब्रह्म भावना की चर्या में तन्मयता प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों का संयम अत्यन्त आवश्यक है। जिसकी इन्द्रियाँ अपने अपने विषय में दौड़ी फिरती है, उसका चित्त एक स्थान पर ठहर नहीं सकता और न उच्च उद्देश्यों में दिलचस्पी ले सकता है। दीर्घ जीवन, निरोगता, शरीर की पुष्टता, सुडौलता, बल-बुद्धि तेज, बुद्धि की प्रखरता आदि शारीरिक लाभों की नींव इन्द्रिय संयम के ऊपर रखी होती है। शक्तियों का खर्च भोगों में न होगा तो उसके द्वारा शरीर और मस्तिष्क बलवान हो सकेगा अन्यथा जिस प्रकार फूटे हुए दीपक में से तेल निकल जाता है और वह अधिक देर तक प्रकाश के साथ नहीं जल पाता, जिस वृक्ष की जड़ों में कीड़े-दीमक लग रहे हों, वह निर्बल और अल्पजीवी ही होगा यही बात मनुष्य की है। असंयम के कारण इन्द्रिय भोगों में जिसकी शक्ति अधिक मात्रा में खर्च होती रहती है, वह न तो शारीरिक दृष्टि से निरोग, बलवान एवं दीर्घजीवी हो सकता है और न मानसिक दृष्टि से मेधावी, मनस्वी एवं प्रभावशाली हो सकता है। फिर ब्रह्म आचरण में रत होना तो दूर की बात है।

इन्द्रिय संयम का तात्पर्य है-विवेक के साथ मर्यादा के अन्तर्गत इन्द्रियों का उपयोग होना। इन्द्रियों के अधीन अपने को इतना नहीं होना चाहिए कि भोगेच्छा को रोका न जा सके या रोकने में बहुत विरोध या क्लेश सहना पड़े। इस प्रकार संयम की आदत डालनी चाहिए कि इन्द्रियों की इच्छा को जब चाहें तब आसानी से रोक सकें और भोग सामने हो तो भी उसे छोड़ सकें। कहने को पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं पर वास्तव में दो का ही संयम करना है एक है-स्वाद इन्द्रिय, और दूसरी है-कामेन्द्रिय।

साधारणतः स्वादिष्ट, सात्विक एवं सुरुचिपूर्ण भोजन करना शरीर को पुष्ट करता है और मर्यादा के अन्तर्गत, स्वस्थ मन से दोनों ही पक्षों की स्वाभाविक तीव्र उत्तेजना होने पर काम सेवन के मानसिक तत्वों को उत्साहित करता है, अति का निषेध है, कच्ची आयु में वीर्यपात का निषेध है, दिमागी ऐयाशी का निषेध है, इनसे बचना चाहिए, जहाँ तक हो सके, कम अवसर भोग के काम आने देना चाहिए और अधिक अवसर संयम के लिए देना चाहिए। मन को भोगों की ओर से हटा लेना चाहिए अर्थात् अपनी भोग इच्छाओं पर काबू कर लेना चाहिए ताकि वे अपने को विवश न कर सकें, वरन् विवेक की आज्ञानुसार कार्य करें।

ब्रह्म में आचरण करने के लिए, दिव्य तत्व में चेतना को डुबाये रहने के लिए इन्द्रिय संयम की आवश्यकता है, इसीलिए वीर्यपात में संयम रखने को ब्रह्मचर्य कहा गया है, अन्य इन्द्रियों का संयम भी इसी का एक भाग है।

5. अपरिग्रह-महात्मा गांधी के अनुसार-''अपरिग्रह'' का सम्बन्ध अस्तेय से है। जो चीज मूल चोरी की नहीं है, पर अनावश्यक है, उसका संग्रह करने से वह चोरी की चीज के समान हो जाती है। परिग्रह का मतलब संचय या इकट्ठा करना है। यदि हम परमात्मा पर विश्वास रखें तो जानेंगे कि वह हमारी जरूरत की चीजें रोज-रोज देता है और देगा। प्रतिदिन की आवश्कता के अनुसार ही प्रतिदिन पैदा करने के ईश्वरीय नियम को हम जानते नहीं, अथवा जानते हुए भी पालते नहीं। इससे जगत में विषमता और दुःखों का अनुभव करते हैं। यदि सब अपनी आवश्कतानुसार ही संग्रह करें तो किसी को तंगी न हो और सब संतोष से रहें। आज करोड़पति अरबपति होने की कोशिश करता है तो भी उसे संतोष नहीं रहता। कंगाल करोड़पति बनना चाहता है। कंगाल को पेट भर पाने का हक है और समाज का धर्म है कि वह उसे उतना प्राप्त करा दे। हम नित्य अपने परिग्रह की जाँच करते रहें और जैसे बने वैसे उसे घटाते रहें। सच्ची संस्कृति-सुधार और सभ्यता का लक्षण परिग्रह की वृद्धि नहीं, बल्कि विचार और इच्छापूर्वक उसकी कमी है जैसे जैसे परिग्रह करते हैं, वैसे-वैसे सच्चा सुख और सच्चा संतोष बढ़ता है। सेवा क्षमता बढ़ती है। हम बहुतेरा ऐसा संग्रह करते हैं जिसकी आवश्यकता सिद्ध नहीं कर सकते। फलतः ऐसे अनावश्यक परिग्रह से हम पड़ौसी की चोरी करने के लिए ललचाते हैं। पर अभ्यास द्वारा आदमी अपनी आवश्यकताओं को कम कर सकता है। और जैसे-जैसे कम करता जाता है वैसे-वैसे वह सुखी और सब तरह आरोग्यवान बनता है। इसी प्रकार वस्तु की भांति विचार का परिग्रह भी नहीं होना चाहिए। जो मनुष्य अपने दिमाग में निरर्थक ज्ञान ठूँस रखता है, वह परिग्रही है। जो विचार हमें ईश्वर से विमुख रखते हैं या ईश्वर की ओर नहीं ले जाते वे सब परिग्रह में शामिल हैं, वह अज्ञान ही है और इसलिए उससे लाभ के बदले हानि होती है। इससे असंतोष और अनर्थों की वृद्धि ही होती है।

अतः हमारा प्रत्येक क्षण प्रवृत्ति का होना चाहिए। परन्तु वह प्रवृत्ति सात्विक हो, सत्य की ओर ले जाने वाली हो। जिसने सेवा धर्म को स्वीकार किया है, वह एक क्षण भी कर्म हीन नहीं रह सकता।गरीब को अभाव के दुःखों का दुःख, अमीर को चोर और शत्रुओं का भय, चैन दोनों में से एक को भी नहीं मिलता। गरीब भूख के मारे पाप करने को तैयार होता है, अमीर पैसे के लिए अनीति करता है। इन सारी गड़बड़ियों का कारण परिग्रह है। यदि अपनी आवश्यकता भर ही लेने का संग्रह करने का सब लोग ध्यान रखें, तो सहज ही विश्वव्यापी अनीति और अशांति का अन्त हो सकता है।

जिसके पास विपुल धन धान्य है, उसे फालतू पैसे को सत्कर्मों के लिए दान करते रहना चाहिए। कम से कम इतना तो करना ही चाहिए कि पैसे की अधिकता से जो अहंकार उत्पन्न होता है और अनीति की ओर पैर बढ़ता है उसे रोकें। निजी खर्च के लिए शारीरिक परिश्रम द्वारा कुछ कमाना और संचित पूंजी द्वारा होने वाली आमदनी श्रेष्ठ कर्मों में लगाते चलना, यह एक सरल तरीका है, जिस पर चलकर अमीर लोग भी अपरिग्रही बन सकते हैं। मन से हर एक को सदैव अपरिग्रही होना चाहिए। आदर्श यही सामने रहना चाहिए कि सच्ची जरूरतें पूरी करने के लिए ही कमाते हैं, जोड़ने, जमा करने या ऐश उड़ाने के लिए नहीं। यदि गरीब आदमी लखपती बनने के मनसूबे बाँधता है तो वह परिग्रही है।

धन-वैभव के बारे में यही आदर्श निश्चित किया होना चाहिए, कि सच्ची जरूरतों की पूर्ति के लिए कमायेंगें, उतनी ही इच्छा करेंगे, उससे अधिक संग्रह न करेंगे। धन को जीवन का उद्देश्य नही वरन् एक साधन बनाना चाहिए।

आत्मोन्नति और परमार्थ जीवनोद्देश्य तो यही है, जीवन धारण करने योग्य पैसा कमाने के अतिरिक्त शेष समय इन्हीं कार्यों में लगाना चाहिए।

सादगी और गरीबी में सच्चा आनन्द है। मनुष्य उतना ही सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकता है। जितना अपरिग्रही होगा, परिग्रही के सिर पर तो अशान्ति और अनीति ही सवार रहती है इसी मर्म को समझते हुए योगशास्त्र के आचार्यों ने अध्यात्म पथ के पथिक को अपरिग्रही बनाने का कठोर आदेश किया है।

उक्त पाँच यमों के अतिरिक्त नियम पांच नियम भी हैं -

शौच -शौच का अर्थ है पवित्र। शरीर और मन दोनों की पवित्रता से वास्तविक अर्थ पूरा होता है। जब तक भीतरी बाहर गंदगी भरी हुई है, मैल जमा है, तब तक अन्तःचेतना में ऐसी उत्पन्न नहीं हो सकती जिसके द्वारा ब्रह्म विद्या को समझा जा सके, दिलचस्पी ली जा सके या प्रगति की जा सके।

स्वच्छ शरीर में ही स्वच्छ मन का वास हो सकता है, गन्दा शरीर रोगों का घर बना रहता है। इस प्रकार योग साधन की प्रारंभिक योग्यता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम शरीर का और तदुपरांत मन का स्वच्छ बनाना आवश्यक है।

एक आप्त वचन है-''जल से शरीर की और सत्य से मन की शुद्धि होती है। नित्य शरीर को खूब रगड़-रगड़ कर काफी जल से स्नान करना चाहिए। अपने काम, आंख, नाक के छिद्रों को स्वच्छ रखने के साथ मुंह की सफाई के साथ दांतुन या मंजन से दांतों को आगे और पीछे की ओर रगड़-रगड़ कर साफ करना चाहिए, बालों की तेल साबुन से सफाई करनी चाहिए। तात्पर्य यह कि शरीर के हर एक भाग को कम से कम एक बार तो नित्य ही साफ कर डालना चाहिए।

शरीर के बाद वस्त्रों का नम्बर है। कपड़े कम हों, मोटे हों, सस्ते हों, फट जाने पर सी लिए गये हों, तो कुछ हर्ज नहीं, पर यदि मैला, अशुद्ध या गंदा कपड़ा पहना जाए तो यही बड़ी लज्जा की बात है।

निःसन्देह शरीर की सफाई का मन के ऊपर असाधारण असर पड़ता है। गन्दा आदमी गन्दे विचार करेगा, अपनी गन्दगी से शर्मिन्द रहेगा और अपने को नीच कोटि का समझेगा, लोगों से अछूत की तरह बचता रहेगा। अपनी स्वच्छता और सुरुचि के कारण वह उत्साहित, प्रसन्न और संतुष्ट रहेगा। शौच आत्मसम्मान का एक हल्का तेज उसके शरीर और वस्त्रों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

2. संतोष -संतोष का अर्थ-प्रसन्नता, खुशी, आनन्द है। जैसी भी भली बुरी परिस्थिति सामने हो, उसमें प्रसन्न रहना, संतोष का तात्पर्य है। आनन्दित रहना, हर घड़ी प्रसन्न रहना, बुरी दुःखदायी परिस्थिति सामने हो तो भी खिन्न न होना, यही संतोष का सारांश है। हर हालत में प्रसन्न रहना, मुस्कुराते रहना, प्रफुल्लित रहना एक ऐसा उच्च आध्यात्मिक गुण है जो पर्वत के समान विपत्ति को राई सा हलका बना देती है और नसों में उत्साह की बिजली का संचार करता रहता है। कर्म करते समय अधिक की इच्छा करना और फल भोगते समय संतुष्ट रहना यही संतोष की कसौटी है जो भोजन परोस कर सामने आ गया है और उसे बदला नहीं जा सकता तो उचित है कि उसे सिर माथे पर रखकर अमृतमय व्यंजनों की भावना से ग्रहण करें। यदि विवाह हो चुका है और किसी स्त्री को जीवन संगिनी बनाया जा चुका है तो यही उचित है कि जैसी भी कुछ काली कुबड़ी वह है, अप्सरा समझकर स्नेह किया जाय।

जब काम करने का समय हो तब ऊँची और अच्छी स्थिति प्राप्त करने का जी तोड़ उद्योग करना आवश्यक है, पर जबकि काम करने का अवसर समाप्त हो गया और कोई निश्चित परिश्रम सामने आ गया है तो यही उचित है कि झुंझलाना, भाग्य को कोसना छोड़कर संतोष का घूंट पिया जाए क्योंकि यह कुड़ना निरर्थक है, इससे मानसिक विक्षेप बढ़ सकता है और निराशा एवं आत्महीनता की भावनाएं बल पकड़ सकती हैं, इससे लाभ कुछ न होगा, हानि ही अधिक रहेगी। इस हानि से बचने के लिए एक बहुत ही उत्तम ढाल अपने पास है और वह है - संतोष।

संतोषी को प्रसन्न रहना चाहिए। हर घड़ी अपने को आनंदित बनाये रहना चाहिए। घर में, व्यापार में, परदेश में, मित्रों में, शत्रुओं में, निन्दा में, प्रशंसा में, कष्ट में, सम्पदा में, लाभ में, हानि में हर एक परिस्थिति में चेहरे पर प्रसन्नता छाई रहनी चाहिए, हर बात के साथ-साथ मुस्कराहट की किरणें निकलनी चाहिए, आत्मा की महानता और दिव्यता का अनुभव करते हुए सदैव गौरवान्वित रहना चाहिए, यही संतोष का अर्थ है।

3. तप - तप का तात्पर्य 'कष्ट सहन' है। तपाये जाने से जैसे पानी गरम हो जाता है और हरकत करने लगता है। वैसे ही तपने से मनुष्य की शक्तियाँ भी गरम हो जाती है, तेजी से काम करने लगती है।

शरीर और बुद्धि की सुस्ती, मंदता, न्यूनता और त्रुटियों को हटाकर उन्हें तेज, क्रियाशील, उन्नत, विकसित बनाने का 'तप' एक अमोघ उपाय है। प्राचीन काल में कोई कठिन कार्य सामने आता था और उसे पूरा करना साधारणतः कठिन प्रतीत होता था तो उसे तपस्या समझकर किया जाता था जिससे कि वह अधिक योग्य और सक्षम हो जाए। तप का भी यही फल होता है, तपस्या से अयोग्य इतनी तीव्र हो जाती है कि पहले जो कार्य कठिन थे पीछे वे ही बहुत आसान हो जाते हैं। तप करना स्पष्टतः अपनी शक्तियों को तेज करना, गरम करना, तपाना है।

तपस्या कष्ट को अपनाता है, पर विवेकपूर्वक वह देखता है कि यह कष्ट सहन अपने लिए या दूसरों के लिए कुछ लाभप्रद होगा या नहीं। यदि उसमें कुछ तथ्य दिखाई पड़ता है तो कष्ट की परवाह न करके वह उसमें जुट पड़ता है। परमार्थ, सेवा, उपकार में प्रवृत्ति तप का लक्षण है। स्वयं कष्ट सहकर अपने हक की वस्तु दूसरे अधिक जरूरतमंद को दे डालना तपस्वी का काम है। अन्याय और पाप के विरुद्ध संघर्ष खड़ा करना फिर चाहे उसमें हार, हानि, कष्ट, अपमान, कटुवचन आदि कुछ भी क्यों न सहन करना पड़े, तप है। पाप के विरुद्ध जो धर्म का युद्ध खड़ा किया जाता है, वह तप है, अर्जुन को 'परंतप' की उपाधि मिली थी।

आलस्य से बचकर कठोरकामों में दिलचस्पी लेना चाहिए, परिश्रम करने का अवसर मिले तो उसे अपना सौभाग्य समझना चाहिए, नाजुकपन छोड़कर कर्मठ और कष्ट सहिष्णु बनना चाहिए, तपाने से सोना निखरता है और कष्ट में पड़ने से मनुष्य सक्षम बनता है। इन बातों पर ध्यान रखते हुए ऐसे कष्ट कर साहसपूर्ण कामों को अपनाने का सदैव उद्योग करना चाहिए, जिनका परिणाम अपने लिए या दूसरों के लिए हितकर निकलता हो।

ऐसे कार्य जो प्रत्यक्ष में कष्ट कर और पीछे अधिक लाभ करने वाले हैं, उन्हें नियमित रूप से प्रयोग करते रहना चाहिए। कभी अवसर आवे तो अन्य व्यक्तियों की सहायता के लिए तथा दुष्टता को हटाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। यही तप का मार्ग है।

4. स्वाध्याय- स्वाध्याय का अर्थ है-अपने आप पढ़ा, अपने बारे में पढ़ना। शिक्षा प्राप्त करने से मस्तिष्क का विकास होता है और बहुत सी नई बातें मालूम होती है, पढ़े-लिखे कहलाते हैं। और वे सुविधायें मिलने लगती है जो कि पढ़े-लिखें व्यक्तियों को प्राप्त हुआ करती है। यह सब होते हुए भी दूसरे की बताई हुई बातें से आत्मकल्याण नहीं हो सकता। क्योंकि आत्मोन्नति के विषय में किसी दूसरे का, चाहे वह कितना ही महान व्यक्ति क्यों न हो, कुछ भी असर नहीं पड़ सकता जब तक कि वह व्यक्ति स्वयं ही अपने ऊपर प्रभाव ग्रहण करने को तैयार न हो।

महाप्रभु यीशु के प्रधान शिष्य ने उन्हें केवल तीस रुपये के लोभ में पकड़वा कर मरवा दिया। भगवान् राम की धर्म माता ने उन्हें वनवास दिलाया इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि कोई कितना ही प्रभावशाली, तेजस्वी या सच्चा क्यों न हो पर बलपूर्वक अपने निकटस्थ सगे संबंधी को भी श्रेष्ठ मार्ग पर नहीं ला सकता। आत्मोन्नति और आत्मसुधार तो हर व्यक्ति के अपने करने का कार्य है, जो स्वयं अपने को ऊँचा उठाने और पवित्र बनाने का प्रयत्न नहीं करता, उसे दुनियां का दूसरा कोई व्यक्ति सुधार नहीं सकता।

इसलिए आत्मोन्नति के इच्छुकों के लिए योगशास्त्र का उपदेश है कि आप अपने बारे में सोचो, विचारों, खोज करो और ज्ञान प्राप्त करो। हम क्या हैं? इस दशा में क्यों है? क्या उद्देश्य है? क्या कर रहे हैं? क्या करना चाहिए? इन प्रश्नों के संबंध में भले प्रकार विवेचन करना, त्रुटियों का मालूम करना और निकाल बाहर करने के लिए पुरुषार्थ में तत्पर होना यह स्वाध्याय का प्रयोजन है। अपने आप, मनन या चिन्तन द्वारा, अधिकारी लेखकों के सद्ग्रन्थों द्वारा, गुरुजनों के सत्संग या प्रवचन द्वारा जो आत्मशोध की जाती है वह स्वाध्याय है। अपने आपको उसी प्रकार पढ़ना -समझना जैसे किसी पुस्तक को पढ़ते या समझते हैं, स्वाध्याय है। ऊँचे उठने के लिए आगे बढ़ने के लिए इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। बिना इसके प्रगति हो नहीं सकती।

स्वाध्याय नाम से योगशास्त्र की इच्छा स्पष्ट है कि वह चाहता है कि हर व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपने बारे में विचार करे, पुस्तकों या व्यक्तियों से कुछ मदद ली जा सकती है, पर निर्णय खुद ही करना है, जो फैसला अपने आप किया जाता है, वह कारगर होता है, वही टिकाऊ होता है और वह निभता है। ठूंस-ठांस कर सिखाई-पढ़ाई हुई बात से कम से कम सच्ची आत्मोन्नति का द्वार तो खुल नहीं सकता। इसलिए स्वाध्याय की ही महत्ता स्वीकार करनी पड़ती है।

संसार से अपने संबंधों पर विचार करना, जिन परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना है, उनमें परिवर्तन करना, जिन परिस्थितियों के लिए स्वयं को अनुकूल बनाना है उसके लिए अपने को उसी ढाँचें में ढालना, यह सब कार्य स्वाध्याय द्वारा किये हुए निर्णय के आधार पर ही हो सकते हैं।

5. ईश्वर प्रणिधान - प्रणिधान मतलब है-धारण करना, स्थापित करना। ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर को धारण करना, ईश्वर को स्थापित करना। कि वो परमात्मा हमारे हृदय में विराजमान हो। पाँचवाँ नियम-'ईश्वर पूजा' नहीं वरन् 'ईश्वर प्रणिधान' है। परमात्मा की हृदय में स्थापना करना, उसे हर घड़ी अपने साथ देखना, रोम-रोग में उसकी व्यापकत्व अनुभव करना, यह ईश्वर प्रणिधान का चिह्न है। मंदिर में मूर्ति की स्थापना की जाती है, यह ईश्वर प्रणिधान का चिह्न है। मंदिर में मूर्ति की स्थापना की जाती है तो उसकी पूजा के लिए पुजारी को अन्य कार्य करना पड़ता है। पर प्रतिमा के भोग, स्नान, शयन, आरती आदि का ध्यान विशेष सावधानी के साथ रखता है। ईश्वर प्रणिधान में ईश्वर की प्रतिमा हृदय में, अन्तःकरण में स्थापित करनी होती

है और उसे चौबीस घण्टे का साथी बनाना पड़ता है। पुजारी का प्रधान कार्य प्रतिमा की पूजा है, इस प्रकार प्रणिधान को प्रधानतः ईश्वर में निमग्न रहना पड़ता है। ईश्वर को अपने में और अपने को ईश्वर में ओतप्रोत रखना पड़ता है।

15.5 योग चिकित्सा का क्षेत्र

आज जब हम इस सदी में हैं, योग हमें एक बहुमूल्य आध्यात्मिक विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है। यद्यपि योग का मुख्य विषय आध्यात्मिक पक्ष के उच्चतम शिखर पर चढ़ना है। तथापि यौगिक अभ्यासों से उनके आध्यात्मिक उद्देश्यों के अलावा हर किसी को प्रत्यक्ष एवं सुनिश्चित लाभ प्राप्त होता है।

शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा योग की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। सामन्जस्य एवं एकीकरण के सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण ही यह इतनी सशक्त एवं प्रभावकारी विद्या है। दमा, मधुमेह, रक्तचाप, गठिया, जोड़ों के दर्द, पाचन तन्त्र की गड़बड़ी तथा अन्य जीर्ण, स्वाभाविक रोगों की चिकित्सा के लिए योग एक वैकल्पिक प्रणाली के रूप में सफलता प्राप्त कर चुका है। जहाँ आधुनिक चिकित्सा प्रणाली विफल हो चुकी थी। एच.आई.वी. पर योगाभ्यास के प्रभावों पर शोध चल रहा है और सार्थक परिणामों की आशा की जा रही है। चिकित्सा वैज्ञानिकों के अनुसार तन्त्रिका तन्त्र और अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में सन्तुलन स्थापित करने के कारण ही यौगिक चिकित्सा प्रणाली सफल हो सकी है। क्योंकि शरीर के अन्य अंगों और प्रणालियों पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है।

तनाव और कोलाहलपूर्ण सामाजिक जीवन अधिकतर लोगों के लिए योग स्वास्थ्य रक्षा एवं पारिवारिक मंगल का साधन है। कार्यालय में लम्बे समय तक बैठने और मेजों पर झुककर दायित्वों को निभाने से उत्पन्न दिनभर की थकान कम से कम अवकाश के घटते समय की पूर्ति शिथिलीकरण की तकनीकों द्वारा की जाती हैं। रात-दिन व्यावावायिक आपाधापी के बीच योग व्यक्तिगत जीवन में राह पहुँचाता है और कर्म में भी कुशलता प्राप्त करता है।

व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त योग सामाजिक कुरीतियों से जूझने की भी शान्ति प्रदान करता है। ऐसे समय में, जब विश्व पुराने मूल्यों को नये मूल्यों से प्रतिस्थापित किये बिना ही उन्हें अस्वीकार कर चौराहे पर किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा है, योग लोगों को अपने वास्तविक रूप से जुड़कर लोग इस वर्तमान युग सामंजस्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बन सकेंगे और जहाँ करूणा का नामोनिशान भी नहीं बचा है, वहाँ उसका आविर्भाव होगा। निश्चय ही आज मानवीय संवेदना का चारों ओर अभाव ही दिखायी दे रहा है।

इस परिपेक्ष्य में योग साधारण शारीरिक व्यायाम नहीं है, वरन् एक नवीन जीवन-पद्धति को स्थापित करने का प्रभावकारी साधन है। एक ऐसी जीवन शैली है जिसमें जीवन की बाह्य एवं आन्तरिक वास्तविकताओं का सुन्दर संयोग है।

15.6 योग चिकित्सा का सिद्धान्त

योग सम्यक् जीवन का विज्ञान है, अतः इसका समावेश हमारे दैनिक जीवन में एक नियमित दिनचर्या के रूप में होना चाहिए। यह हमारे व्यक्तित्व के शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, भावनात्मक, अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक, सभी पहलुओं को प्रभावित करता है।

योग विज्ञान का प्रभाव व्यक्तित्व के सबसे बाह्य पक्ष- शरीर से प्रारंभ होता है और अधिकतर व्यक्तियों के लिए एक व्यवहारिक और सुपरिचित आरंभिक बिन्दु है। इस स्तर पर असंतुलन का अनुभव होने से अंगों, पेशियों और तन्त्रिकाओं के कार्यकलापों में सामंजस्य नहीं रह जाता, वे एक-दूसरे के प्रतिकूल कार्य करने लग जाते हैं। उदाहरणार्थ - अन्तःस्रावी प्रणाली के अनियमित होने से तन्त्रिका तन्त्र की कार्यकुशलता इतनी कम हो सकती है कि रोग होने की सम्भावना हो जाती है। योग का लक्ष्य शरीर के विविध कार्यकलापों के बीच पूर्ण सामंजस्य स्थापित करना है ताकि वे सम्पूर्ण शरीर के हित में कार्य करें।

स्थूल शरीर से प्रारम्भ कर योग मानसिक और भावनात्मक स्तर की ओर अग्रसर होता है। अनेक लोग दैनिक जीवन में दबाओं और आपसी व्यवहारों से उत्पन्न भय और मानसिक रोगों से पीड़ित होते हैं। योग समस्त व्याधियों को निर्मूल तो नहीं कर सकता, परन्तु उनसे जूझने की प्रमाणिक विधि प्रदान कर सकता है।

योग की कई शाखायें हैं – राजयोग, हठयोग, ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, कुण्डलिनी योग आदि। हर प्रकार के योग का अपना महत्व, क्षेत्र एवं सीमाएँ हैं और व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरुप उपयुक्त योग का आश्रय लेकर इनके उचित प्रयोग विधि द्वारा शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व आध्यात्मिक रोगों की चिकित्सा संभव है।

अभ्यास प्रश्न- एक पंक्ति में उत्तर दीजिए।

(क) राज योग के आठ अंगों के नाम लिखियें।

(ख) राजयोग का प्रतिपादन किसके द्धारा किया गया ।

(ग) महर्षि पतंजलि यम नियम की संख्या कितनी -कितनी बतायी है।

(घ) ईश्वर प्रणिधान से आप क्या समझते हैं

(ड़) योग की विभिन्न शाखाओ के नाम लिखियें

15.7 सारांश

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में योग चिकित्सा का प्रचार और प्रभाव निरन्तर बढता ही जा रहा है योग न केवल हमारे शरीर को स्वस्थ बनाता है वरन प्राण एंव मन की अशुद्धियो के भी दूर करता है दूषित प्राण की शुद्धि अवरूद्ध प्राण उर्जा को प्रवाह तथा प्राण शक्ति का सवर्द्धन ही योग चिकित्सा का मुख्य आधार है जिससे व्यक्ति का चहुमुखी नियोजित विकास होता है।

15.8 शब्दावली

अस्तेय -चोरी न करना

अपरिग्रह-आवश्यकता से अधिक वस्तुओं धन इत्यादि का सग्रह न करना।

विपुल -अत्यधिक

किंकर्तव्यूविमूढ-द्वन्द की स्थिति क्या करना है और क्या नही करना है असका निर्णय न कर पाना।

शिथिलीकरण-शरीर एंव मन को आराम देना ।

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क)**-** राजयोग के आठ अंग – यम, निम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि

(ख) राजयोग का प्रतिपादन महर्षि पतंजलि ने दिया।

(ग) महर्षि पतंजलि के अनुसार **5** यम और **5** नियम बतायें हैं।

(घ) ईश्वर को अपने हृदय में स्थापित करना**,** भगवान के प्रति शरणागति**,** सर्वत्र ईश्वर बोध

(ड़) योग की विभिन्न शाखाये हैं हठयोग राजयोग ज्ञानयोग कर्मयोग शक्तियोग मन्त्रयोग

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिंह रामहर्ष **2007** स्वास्थवृत्त विज्ञान चौखभा सस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली

2. पण्डया प्रणय **2006** अन्तर्गत की मात्रा का ज्ञान विज्ञानि वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुन्ज हरिद्धार उत्तरांचल

3. सरस्वती विज्ञानानंद **2007** योग विज्ञान योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती ऋषिकेश उत्तराचल।

4. दशोरा नन्दलाल **2006** पातंजल योगसूत्र योग सूत्र रणधीर प्रकाशन हरिद्धार।

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. योग चिकित्सा की अवधारणा को स्पस्ट करते हुये -सामाजिक समायोजन की दृष्टि से यम -नियम के महत्व को स्पष्ट कीजिये।

2. योग चिकित्सा के क्षेत्र एंव सिद्धान्तो का विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई 16 - षट्कर्म, आसन एवं प्राणायाम का चिकित्सीय पक्ष तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य मे योग की भूमिका

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 योग के चिकित्सकीय पक्ष की अवधारणा

16.4 षट्कर्म का चिकित्सकीय पक्ष

16.5 आसनों का चिकित्सकीय पक्ष

16.6 प्राणायाम का चिकित्सकीय पक्ष

16.7 शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ में योग की भूमिका

16.8 अध्याय सारांश

16.9 शब्दावली

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पाठकों इससे पूर्व की ईकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि योग चिकित्सा क्या हैं? योग चिकित्सा के मूल सिद्धान्त क्या हैं ? योग चिकित्सा के कौन-कौन से आयाम है? अर्थात इसका विस्तार जीचन के किन -किन पक्षों तक है। प्रस्तुत इकाई उन तकनीको के प्रयोग की विधि बताती है जिनके माध्यम से हम योग चिकित्सा का उपयोग विभिन्न शारीरिक मानसिक एवं भावनात्मक समस्याओ को दूर करने में कर सकते हैं। इस यौगिक तकनीको में षटकर्म धौति. वस्ति नेति नौलि त्राटक एवं कपालभाति, आसन एव प्राणायाम प्रमुख हैं। इनका सैद्वान्तिक ज्ञान आप हठयोग के सन्दर्भ में कर ही चुके है। प्रस्तुत इकाई में आप इन अभ्यासों के चिकित्सीय प्रभावो को जान सकगें षट्कर्म एवं आसन से किस प्रकार हमारे

शरीर कि अंगो की कार्य क्षमता में वृद्धि होती हैं प्राणायाम से कैसे मन के विकार दूर होते हैं इससे अन्तःस्रावी संस्थान एवं मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है, इत्यादि प्रश्नों के उत्तर आप इस इकाई का अध्ययन करने बाद देने में सक्षम हो जायेगें।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

- आप योग के चिकित्सीय पक्ष को स्पष्ट कर सकेंगे।
- षटकमों की चिकित्सा की दृष्टि से उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- शारीरिक एवं मानसिक उत्कर्ष में प्राणायाम की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मानव के समग्र विकास में योग के महत्व का अध्ययन कर सकेंगे

16.3 योग के चिकित्सीय पक्ष की अवधारणा

पाठको आप इस तथ्य से भलीभाति परिचित हैं कि अपने मूल रूप मे योग स्वस्थ व्यक्तियो के लिये हैं रोगियो के लिये नही तथा साधनात्मक दृष्टि से योग का चरम लक्ष्य

अपने यथार्थ स्वरूप को जानना हैं किन्तु वर्तमान समय मे योग का एक नया स्वरूप भी उभर कर हमारे सामने आ रहा है और वह हैं योग चिकित्सा (योग थेरेंपी)। अब प्रश्न यह उठता है कि यह योग चिकित्सा है क्या अर्थात योग के चिकित्सीय पक्ष से क्या अभिप्राय है। वस्तुतः योग चिकित्सा का अर्थ हैं कि विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगो जैसे कि मधुमेह .गठिया अस्थमा माइग्रेन टीबी इत्यादि मानसिक रोगो जैसे चितां अवसाद उन्माद इत्यादि तथा भावनात्मक समस्याओ के निदान एवं उपचार के लिये यौगिक तकनीको तथा षटकर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्धों आदि का किस प्रकार से उपयोग किया जा सकता है जिस प्रकार ऐलोपैथिक दवाईया लेने से रोग कुछ समय के लिये दब जाता है उसी प्रकार क्या योग में भी ऐसी विधियॉ या उपाय हैं जिनके माध्यम से हम रोगो का स्थायी समाधान कर सकते है वर्तमान यात्रिक युग मे प्रत्येक आयु वर्ग का व्यक्ति किसी ना किसी समस्या से ग्रस्त है तथा ऐलोपेथिक इन समस्याओ को दूर करने मे कारगर सिद्ध नही हो रही है अतः रोगो के स्थायी समाधान के लिये सभी चिकित्सा वैज्ञानिकों तथा आम जनता की नजरे योग चिकित्सा पर जा टिकी हैं।

16.4 षटकर्म का चिकित्सीय पक्ष

प्राचीन हठयोग के ग्रन्थों में षट्कर्मों का वर्णन किया गया है। यह एक सुव्यवस्थित एवं यथार्थ विज्ञान है। षट्कर्मों में शुद्धिकरण के छः अभ्यास समूह आते है। हठयोग का और साथ-ही-साथ षट्कर्मों का उद्देश्य है - दो मुख्य प्राण प्रवाहों इड़ा एवं पिंगला के बीच सामंजस्य स्थापित कर इनके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक शुद्धिकरण एवं सन्तुलन प्राप्त करना।

षट्कर्मों का उपयोग शरीर में त्रिदोषों वात, पित्त और कफ को संतुलित करने के लिए भी किया जाता है। आयुर्वेद एवं हठयोग, दोनों के अनुसार इन त्रिदोषों के बीच असन्तुलन होने से रोग उत्पन्न होता है। शरीर को विषाक्त तत्वों से मुक्त करने एवं अध्यात्म मार्ग पर सुरक्षित रूप से सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए भी प्राणायाम एवं उच्च योगाभ्यास के पूर्व इन अभ्यासों का उपयोग किया जाता है।

षट्कर्म में नेति, धौति, वस्ति, नेति, त्राटक तथा कपालभांति आते हैं। षट्कर्मों द्वारा शारीरिक मल का निष्कासन तथा शरीर के अंगों की सफाई की जाती है।

षट्कर्म शरीर शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से शरीर का शोधन किया जाता है। हमारे खान-पान में प्रदूषण फैलने से कई अनुपयोगी पदार्थ शरीर में चले जाते हैं जिससे बीमारियाँ होने लगती हैं। ये दूषित पदार्थ हमारी संधियों में इकट्ठे होते हैं। यदि समय पर इन्हें न हटाया जाए तो ये भविष्य में वात रोग उत्पन्न करते हैं। षट्कर्म की एक क्रिया शंख प्रक्षालन द्वारा पाचन संस्थान की पूरी सफाई होती है तथा अंदर के विजातीय पदार्थ बाहर निकलते हैं जिससे किडनी को आराम मिलता है और इसकी कार्य क्षमता बढ़ती है। अतः यह हमारी संधियों में जहरीले पदार्थ को खींचकर शरीर से बाहर करती है तथा वहाँ का रक्त का संचार बढ़ता है। जिसके फलस्वरूप संधियों में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। संधियों से ही हमारी हड्डियाँ गति करती हैं। यदि संधियों को सही पोषण नहीं मिलता है तो हड्डियाँ स्वयं के पोषण के लिए कार्टिलेज का भक्षण करती हैं। यही वात रोगों का कारण है। इस तरह शंख प्रक्षालन से वात रोगों से बचा जा सकता है। इसी प्रकार जल नेति से नाक की संधियों को लाभ होता है। रबर नेति से कार्टिलेज नियंत्रित होता है तथा सायनस की समस्या दूर होती है।

षट्कर्म के माध्यम से शरीर में विद्यमान दूषित पदार्थों को शरीर से हटाया जाता है। इस प्रकार मांसपेशियों में रूके हुए पदार्थ दूर होते हैं और रक्त प्रवाह तेज होता है जिससे मांसपेशियों की कार्य क्षमता बढ़ती है और उनका कड़ापन दूर होता है। षट्कर्म से सभी आन्तरिक अंग-अवयवों की मांसपेशियां मजबूती होती हैं तथा उनकी क्रियाशीलता बढ़ती है और इनसे संबंधित अंगों की क्रियाशीलता नियंत्रित होती है।

अग्निसार और नौलि क्रिया से जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है। लघुशंख प्रक्षालन से पूरे आहारनाल की सफाई हो जाती है और पाचन संस्थान के सभी अंगों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। वमन क्रिया, वस्त्र धौति तथा दंड धौति से आमाशय तक की सफाई हो जाती है जिससे अम्लपित्त, गैस, खट्टी डकार, कफ आदि विकार दूर होते हैं। नेति क्रिया से मानसिक तनाव दूर होता है जिससे पाचन क्रिया सही ढंग से होती है। मानसिक तनाव के कारण पाचन संस्थान संकुचित हो जाता है और नाना प्रकार के पाचन सम्बन्धी विकार उत्पन्न होते हैं।

कुछ षट्कर्म जैसे-अग्निसार क्रिया, शंख प्रक्षालन, मूलशोधन, वस्ति, नौलि आदि के द्वारा बड़ी आँत की अच्छी सफाई हो जाती है। इसके अतिरिक्त जलनेति तथा सूत्रनेति के अभ्यास से नासिका मार्ग की सफाई होती है तथा श्वसन क्रिया

स्वस्थ बनी रहती है। कुंजल क्रिया करने से श्वसन नलिकाएँ तथा ग्रसनी की सफाई होती है। इसमें जमे हुए कफ एवं श्लेष्मा आदि वमन के द्वारा बाहर आ जाता है।

16.5 आसनो का चिकित्सीय पक्ष

मन और शरीर दो अलग तत्व नहीं हैं, हालाँकि सामान्य रूप से ऐसा व्यवहार करते और सोचते हैं मानो ये अलग-अलग हैं। मन का स्थूल रूप शरीर है और शरीर का सूक्ष्म रूप मन है। आसन का अभ्यास इन दोनों के बीच समन्वय तथा सामंजस्य स्थापित करता है। शरीर और मन दोनों के भीतर तनाव या गाँठें उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक मानसिक गांठ के संगत एक शारीरिक पेशीय गांठ भी पैदा होती है। इसी प्रकार प्रत्येक शारीरिक गांठ के समतुल्य मानसिक गांठ या ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है।आसनों का उद्देश्य इन ग्रंथियों को खोलना है। शारीरिक स्तर पर कार्य कर आसन मानसिक तनावों को दूर करता है। पाठकों भावनात्मक तनाव और दमन से फेफड़ों, मध्यपट और श्वांस नलिका के सहज कार्यकलाप में अवरोध उत्पन्न हो जाता है, जिसके फलस्वरूप एक दुर्बलकारी रोग दमा हो सकता है। पेशीय गांठें शरीर के किसी भी भाग में उत्पन्न हो सकती हैं - गर्दन का कड़ापन जैसे सर्वाइकल क्षेत्र की समस्या, चेहरे का कड़ापन जैसे तन्त्रिकाशूल आदि। प्राणायाम,षट्कर्म, कुछ चुने हुए आसनों का अभ्यास शारीरिक तथा मानसिक दोनों स्तर से इन गांठों को दूर करने के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली होता है। परिणामस्वरूप सुप्त उर्जा मुक्त होती है। शरीर की प्राण शक्ति जाग्रत होती है, शरीर संस्थान सुदृढ़ होता है, मन हल्का, रचनात्मक, उल्लासपूर्ण और संतुलित हो जाता है।आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर पूर्ण स्वस्थ बना रहता है और अस्वस्थ शरीर में भी स्वास्थ्य के लक्षण प्रकट होने लग जाते हैं। आसनों के अभ्यास से प्रसुप्त शक्ति जाग्रत हो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आधिकाधिक आत्मविश्वास की अनुभूति प्रदान करते हैं।

आसनों से हड्डियों एवं संधियों पर प्रभाव पड़ता है जबकि मांपेशियाँ लचीली बनती हैं। धनुरासन से मेरूदण्ड लचीला बना रहता है तथा आगे-पीछे मुड़ने में सहायता मिलती है। आसनों में हम सामान्य से कुछ ज्यादा मुड़ने का प्रयास करते हैं जिससे मांसपेशियों की क्षमता बढ़ती है और संधियाँ मजबूत बनती हैं। संधियों को पर्याप्त पोषण मिलता है एवं विजातीय द्रव्य एकत्र नहीं होने पाते।पवन मुक्तासन श्रृंखला के सभी आसन जो शरीर के समस्त जोड़ों को जितना हो सके सक्रिय बनाकर उसकी भली-भाँति मालिश करता है तथा कड़ापन एवं तनाव दूर कर उन्हें सक्रिय बनाता है। जैसे-जैसे जोड़ों का लचीलापन बढ़ता जाए, अन्य आसनों को अभ्यास में जोड़ते जाना चाहिए। जैसे- शशांकासन, मार्जरी आसन, शशांक भुजंगासन, आकर्ण धनुरासन, सूर्य नमस्कार आदि। इन आसनों से स्नायुओं में नवीन उर्जा प्रवाहित होती है और वे पुनः व्यवस्थित होते हैं तथा मांसपेशियों की कार्यक्षमता बढ़ती है। कुछ आसन जैसे -उदर संचालन समूह के अभ्यास, हलासन, पश्चिमोत्तानासन, ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, भुजंगासन, उदराकर्षण, मत्स्येंद्रासन, मयूरासन आदि से आमाशय, छोटी आँत, बड़ी आँत, यकृत, अग्न्याशय आदि का मसाज होता है और इन अंगों से पाचन रसों का स्राव सक्रिय बना रहता है और भोजन का पाचन अच्छे ढंग से हो पाता है। साथ ही भोजन का अवशोषण और उत्सर्जन भी ठीक ढंग से हो पाता है।यौगिक क्रियाओं के द्वारा हृदय, वृक्क, यकृत, मस्तिष्क आदि अंगों की ओर रक्त का प्रवाह अधिक हो जाता है जिससे इन अंगों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। वृक्क निस्यंदन की क्रिया के फलस्वरूप रक्त को शुद्ध करता है। यकृत पित्त रस के रूप में अनेक उत्सर्जी पदार्थों को आँतों तक पहुँचाता है जो मल और मूत्र द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि आसनों का पूरे शरीर पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

16.6 प्राणायाम का चिकित्सीय पक्ष

श्वांस शरीर की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह प्रत्येक कोशिका के कार्यकलाप को प्रभावित करती है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह मस्तिष्क के कार्य से भी घनिष्टतापूर्ण रूप से जुड़ी हुई है। मानव प्रति मिनट 16 बार, प्रतिदिन 21600 श्वांस लेता है जिससे प्रत्येक पेशीय संकुचन, ग्रंथि-स्राव और मानसिक क्रिया के संचालन हेतु ऊर्जा का उत्पादन होता है। श्वांस का मानवीय अनुभूति के सभी पक्षों से घनिष्ट सम्बन्ध है।

अधिकतर लोग अपने फेफड़े की क्षमता के थोड़े ही भाग का उपयोग कर गलत ढंग से श्वसन करते हैं। उस स्थिति में सामान्य रूप से श्वसन उथला होता है और इस कारण शरीर अपने उत्तम स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य ऑक्सीजन और प्राण से वंचित रह जाता है। जब श्वांस प्रक्रिया के प्रति संवेदनशीलता विकसित कर लेते हैं। फेफड़े गुहा की पेशियों को पुनः प्रशिक्षित कर उनकी प्राण क्षमता बढ़ाकर उन्हें प्राणायाम के लिए तैयार कर लेते हैं।

लयपूर्ण, गहरा और धीमा श्वसन मन की शान्त, संतोषपूर्ण अवस्था को प्रेरित करता है और स्वयं भी इनसे प्रेरित होता है। अनियमित श्वसन मस्तिष्क के सामंजसय को भंग करता है जिससे शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक विकास में अवरोध उत्पन्न होते हैं। इसके परिणामस्वरूप आन्तरिक द्वन्द्व, असंतुलित व्यक्तित्व, अव्यवस्थित जीवन शैली और व्याधि की अवस्था पैदा होती है। प्राणायाम इस प्रक्रिया को उलट देता है और इस नकारात्मक चक्र को भंग कर नियमित श्वसन की आदत डालता है। श्वांस पर नियंत्रण और शरीर तथा मन की स्वाभाविक, शान्त लय को पुनः स्थापित कर प्राणायाम इस कार्य को सम्पादित करता है।यद्यपि श्वसन मुख्यतः एक अचेतन प्रक्रिया है, परन्तु किसी भी समय इस पर सचेतन नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। परिणाम स्वरूप यह मन के चेतन और अचेतन क्षेत्रों के बीच सेतु का निर्माण करता है। विक्षिप्त, अचेतन मन में अवरूद्ध ऊर्जा को प्राणायाम के अभ्यास द्वारा अधिक रचनात्मक और आनन्ददायक कार्यों में उपयोग के लिए मुक्त किया जा सकता है।प्राणायाम करने से हमारे शरीर को उर्जा मिलती है, शरीर में रक्त का संचार बढ़ता, शरीर का पोषण होता है तथा पंचतत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। विभिन्न प्रकार के प्राणायाम के माध्यम से अस्थि तंत्र प्राणवान (ताकतवर) बनता है जिससे हड्डियों के टूटने का डर कम रहता है, साथ ही विभिन्न प्रकार के अस्थि तंत्र से संबंधित रोगों से मुक्ति में भी सहायता मिलती है।प्राणायाम के माध्यम से शरीर में प्राणिक प्रवाह बेहतर होता है तथा कहीं पर भी यदि Pranic Blockage हो तो वह इससे दूर होता है। शरीर के पंचतत्वों में साम्यता आती है जिससे रोगों को दूर करने में सहायता प्राप्त होती है। प्राणायाम के माध्यम से ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा मिलने से मांसपेशियाँ थकती नहीं तथा मनुष्य को कमजोरी (थकान) महसूस नहीं होती साथ ही मांसपेशियों से संबंधित रोग दूर हो जाते हैं।शरीर की समस्त गतिविधियों के संचालन हेतु प्राण उर्जा की आवश्यकता होती है। प्राणायाम का अभ्यास शरीर को विशेष प्राण उर्जा से भर देता है। भस्त्रिका तथा सूर्यभेदी प्राणायाम के अभ्यास से जठराग्नि तीव्र होती है, पाचक रसों का स्राव बढ़ जाता है और पाचन क्रिया सही हो जाती है। नाड़ीशोधन, भ्रामरी, अनुलोम-विलोम प्राणायाम से मानसिक तनाव दूर होता है और पाचन क्रिया ठीक ढंग से होने लगती है।

प्राणायाम के निम्नांकित प्रभाव भी होते हैं –

- प्राणायाम के नियमित अभ्यास से फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ती है।
- श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया में उत्तरोत्तर सुधार होता है।

- श्वांस की गहराई बढ़ती है तथा श्वसन दर अपेक्षाकृत कम होने लगती है।
- गैसों का आदान-प्रदान बेहतर होता है।
- ऑक्सीजन ज्यादा मात्रा में लेते हैं जिससे शरीर में इसकी पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति होती है।
- कपालभांति तथा भस्त्रिका प्राणायाम द्वारा कार्बन डाई आक्साइड का निष्कासन बेहतर होता है।
- श्वसन का अंतराल बढ़ जाता है।
- ब्रोंकाइटिस तथा अस्थमा जैसे रोग दूर होते हैं।
- फेफड़े की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं।

16.7 शारीरिक तथा मानसिक स्वस्थ्य मे योग की भूमिका

योग एक समग्र स्वास्थ्य की पद्धति है। यौगिक अभ्यास के नियमित पालन करने से मनुष्य पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाने में सक्षम हो पाता है। इस प्रकार मनुष्य पर्यावरणजन्य विकारों से बचता है, क्योंकि आधुनिक समय में अधिकांश रोग मनुष्य तथा उसके पर्यावरण के बीच सामंजस्य ठीक प्रकार न बन पाने के कारण उत्पन्न होते हैं। योगाभ्यास मनुष्य के मनोदैहिक व्यवस्था में समायोजन की क्षमता प्रदान करने में सहायक होता है।

यौगिक अभ्यास के द्वारा रोगों का शमन एवं स्वास्थ्य संवर्द्धन दोनों संभव है। आज समाज में योग के कुछ स्थूल पक्ष जैसे आसन, प्राणायाम आदि काफी प्रचलित हो रहे हैं। योगासनों के द्वारा शरीर क्रिया पर भी प्रभाव पड़ता है। योगासनों का प्रभाव शरीर के लगभग सभी तंत्रों जैसे- कंकाल तंत्र, पेशी तंत्र, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, स्नायु तंत्र, अंतःस्रावी तंत्र पर भी प्रभावी ढंग से पड़ता है। योगासनों का शरीर तंत्र पर पड़ने वाले स्थूल प्रभाव को इस प्रकार देखा जा सकता है –

- अलग-अलग प्रकार के आसनों से शरीर में विभिन्न पेशियों में उचित खिंचाव एवं तनाव उत्पन्न होतो है जिससे पेशी तंतुओं में रक्त संचार ठीक प्रकार से हो पाता है। रक्त संचार के बढ़ने से ऑक्सीजन एवं पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ जाती है जिससे पेशी तंतु स्वस्थ एवं सबल बना रहता है।
- योगासनों से शरीर की पेशियों में लचीलापन बढ़ता है जिससे पेशी खिंचाव एवं अन्य पेशी विकार से बचाव होता है।
- शरीर के विभिन्न अंगों में रक्त संचार बढ़ता है जिससे उत्सर्जी पदार्थों का निष्कासन कर दिया जाता है।
- अस्थि संधियों की ठीक प्रकार मालिश होने से इसकी कार्य क्षमता बढ़ती है।
- स्नायु तंत्र एवं अंतःस्रावी ग्रंथि भी योगासन के प्रभाव से सक्रिय रूप से कार्य करने लगती है।

मानसिक स्वास्थ्य के वर्तमान युग संकट में यौगिक उपचार की उपयोगिता विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है। बिना इसके मात्रा मनोवैज्ञानिक स्तर पर चल रहे उपचार जड़ को सींचने की जगह मात्रा फूल-पत्तियों को पानी देने के उपक्रम सिद्ध होंगे व हो रहे हैं। वर्तमान संकट का प्रथम उपचार जीवन की दिशा को निरंकुश भोगवादी से मोड़कर उच्चतर दिशा की ओर

प्रेरित करना है। उपचार का दूसरा कार्य व्यक्ति के आचार-व्यवहार को नैतिक अनुशासन में ढालते हुए उसे आध्यात्मिक दिशा देने का है यह कार्य योग के द्वारा समग्र रूप से पूरा किया जा सकता है।

अभ्यार्थ प्रश्न –

एक-एक पक्ति मे उत्तर दीजिये

(क) षट्कमो के नाम लिखिये ?

(ख) षटकर्म किस उद्देश्य से किये जाते हैं ?

(ग) मनुष्य एक मिनट में कितनी बार श्वांस लेता है ?

(घ) मनुष्य प्रतिदिन मे कितली बार श्वास लेता है ?

(ड़) आसन मुख्यतः शरीर के कौन से संस्थान से सम्बद्ध हैं?

16.8 अध्याय सारांश

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वर्तमान समय मे योग चिकित्सा का दौर अत्यन्त व्यापक होता जा रहा है । समाज का प्रत्येक वर्ग चाहे वह बच्चा जवान . या वृद्ध हो हर एक योगाभ्यासो के प्रभाव एवं महत्व से भली भॉति परिचित हो रहा है यदि हम समग्र रूप से स्वस्थ होना चाहते है तो हमे योग की शरण मे जाना ही होगा। योग की विभिन्न तकनीको के हमारे शरीर एवं मन दूषित प्राण को बाहर निकालकर शुद्ध प्राण का संचार एवं स्थिरीकरण करती हैं किन्तु योगाभ्यास करते समय कतिपय सावधानियो का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि गलत ढंग से तथा पूर्ण जानकारी के अभाव मे किये गये अभ्यास से हमे विभिन्न प्रकार की समस्याओ का सामना भी करना पड सकता है अतः अच्छा हो कि किसी कुशल मार्गदर्शन मे ही इन अभ्यासों को किया जाये।

16.9 शब्दावली

षट्कर्म -शुद्धि की छः प्रकियायें धौति, वस्ति, नेति, नौलि, कपालभाति एवं त्राटक

भक्षण – खाना

निष्कासन- बाहर निकलना

स्नायु तंत्र- तत्रिका तंत्र

प्रक्षालन – सफाई करना

शशाक – खरगोज

मार्जारी – बिल्ली

भुजंग – सॉप

प्रश्वास – श्वास निकालना, छोड़ना

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) षटकर्म छः हैं धौति, वस्ति, नेति, नोलि, त्राटक तथा कपालभाति।

(ख) षटकर्म शरीर की शुद्धि के लिये किये जाते हैं।

(ग) मनुष्य एक मिनट मे 16 बार श्वास लेता है।

(घ) मनुष्य प्रतिदिन 21600 श्वास लेता है।

(ड़) आसन मुख्यतः शरीर के मांशपेशीय संस्थान से सम्बद्ध हैं।

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 - सरस्वती निरंजनानंद 1997 घेरण्ड सहिता-योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार।

2 - सिंह रामहर्ष 2006 - योग एवं योगिक चिकित्सा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।

3 -सिंह रामहर्ष 2007 स्वस्थवृत्त विज्ञान चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

1- योग के चिकित्सीय पक्ष से आप क्या समझते हैं ? षटकर्मो के चिकित्सकीय प्रभावों पर प्रकाश डालिये।

2 शारीरिक एंव मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से योग चिकित्सा के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

3-आसनो का हमारे शरीर पर किस प्रकार से प्रभाव पडता है विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

4. प्राणायाम के चिकित्सकीय लाभों की विस्तार से चर्चा कीजिए।